क.ब.चौ.उ.महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव से संलग्न एवं खान्देश शिक्षण मंडल,
अमलनेर के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर द्वारा आयोजित..

राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्षकेन्द्री हिंदी साहित्य

Identity Based & Discorative Hindi Literature of Constitutional India

(Volume- Part-1)

मुख्य संपादक एवं संयोजक, राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी
प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'
अध्यक्ष,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

कार्यकारी संपादक
प्रो.डॉ.हर्षवर्धन जाधव
प्र.प्राचार्य,प्रताप स्वशासी महाविद्यालय

सहसंपादक
प्रो.डॉ.कल्पना पाटील
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology

ISSN 2582-7359 | Peer Reviewed Journal | Impact Factor 6.325

प्रताप स्वशासी महाविद्यालय, अमलनेर(महाराष्ट्र) द्वारा आयोजित

राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी-2026

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्षकेन्द्री हिंदी साहित्य

Identity Based & Discorative Hindi Literature of Constitutional India

मुख्य संपादक एवं संयोजक, राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी
प्रो. डॉ. शशिकांत सावन

कार्यकारी संपादक एवं प्र. प्राचार्य
प्रो. डॉ. हर्षवर्धन जाधव

सहसंपादक
प्रो. डॉ. कल्पना पाटील

Special Issue -I (January 2026)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359 | Peer Reviewed Journal | Impact Factor 6.325

Taran Publication
New Delhi

JOURNAL DETAILS

Name of Journal	**International Journal of Multidisciplinary Research and Technology**
e-ISSN	**2582-7359**
Subject	**Multidisciplinary**
Publisher	**Taran Publication**
Impact Factor	**6.325**
Website	**www.ijmrtjournal.com**
Contact Number	**8950448770, 9996906285**
Country of Publication	**India**
Editor-in-Chief	**Dr. Mandeep Kaur**

शुभ संदेश

“महाराष्ट्र ही नहीं अपितु देश के प्रतिष्ठित प्रताप महाविद्यालय में आयोजित राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी को मैं हार्दिक शुभ कामनाएँ देता हूँ। ‘संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक - विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य’ विषयपर आधारित इस राष्ट्रीय आयोजन में निश्चित ही राष्ट्रोपयोगी विचार होगा। संवैधानिक मूल्यों को अधोरेखित कर, हिंदी शिक्षा एवं साहित्य जगत में उनकी प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन होगा इस मनोकामना के साथ..... ।”

प्रो डॉ. मधुकर खराटे
पूर्व अधिष्ठाता, कला एवं ललित कला संकाय
क. ब. चौ. उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय जलगाँव.
संस्थापक अध्यक्ष, उत्तर महाराष्ट्र हिंदी प्राध्यापक परिषद

शुभकामनाए

मुझे इस बात की बडी ख़ुशी हैं की हमारे प्रताप महाविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा राष्ट्रीय हिंदी संगोष्टी होने जा रही हैं 1

इस वर्ष संगोष्टी के लिए चुना गया विषय ‘संवैधानिक भारत का अस्मिता मूलक- विमर्ष केंद्री हिंदी साहित्य’ भी खास हैं, इस माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र से आनेवाले विदवतजन, प्रोफेसर, शोधार्थी छात्र इस आयोजन से लाभान्वित होंगे, ऐसी आशा करता हूँ एवं इस आयोजन की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाए अर्पित करता हूँ 1

CA नीरज दीपचंद अग्रवाल
कार्याध्यक्ष, खान्देश शिक्षण मंडल
अमलनेर (महा)

शुभ संदेश

खान्देश शिक्षण मंडल,अमलनेर द्वारा संचलित प्रताप महाविद्यालय (स्वशासी), अमलनेर के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग द्वारा आयोजित और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान(रुसा) द्वारा वित्त पोषित राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी के लिए मेरी ओर से अनंत शुभकामनाएं । इस एकदिवसीय संगोष्ठी का विषय- संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य पर आधारित है । इस विषय के सभी पहलुओं पर सभी मान्यवर एवं प्राध्यापक संगोष्ठी के अंतर्गत विचार मंथन कर जो सार ग्रहण करेंगे वह निश्चित रूप से साहित्य की गरिमा को बढ़ाने में सहायक होगा ऐसी आशा करता हूं ।

प्रो. डॉ. हर्षवर्धन दामोदर जाधव
प्रभारी प्राचार्य,खान्देश शिक्षण मंडल

संपादकीय

"26 जनवरी 1950 से भारत में देश का संविधान लागू हुआ और उसी समय से आधुनिक भारत की एक नई प्रतिमा राष्ट्र और विश्व के सामने उभर कर आने लगी । आज इसी संवैधानिक भारत के हम 75 वर्ष मना रहे हैं ।यह भारतीय संविधान का और संवैधानिक भारत का अमृत महोत्सव भी वर्ष है ।इसी के सम्मान में हिंदी विभाग ,प्रताप स्वशासी महाविद्यालय ,अमलनेर यह राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित कर रहा है ।भारतीय संविधान की बुनियाद, उसकी गरिमा और उसके मानवीय मूल्यों को मुख्य रूप में अधोरेखित करने के लिए यह राष्ट्रीय आयोजन है। इसलिए संगोष्ठी का शीर्षक संवैधानिक भारत का अस्मिता मूलक विमर्शकेन्द्री हिंदी साहित्य' निर्धारित किया गया। अस्मिता एक ऐसी बुनियाद है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को अपना स्वतंत्र अस्तित्व ,स्वतंत्र पहचान और स्वतंत्र महत्व प्रदान करती है। भारतीय और हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक साहित्य की यात्रा निश्चित ही संविधान के लागू होने के कारण ही हुई है, क्योंकि संविधान देश के उन तमाम समुदायों का शोषित पीड़ित अपेक्षित प्रताड़ित और सदियों से दमित संवर्गों का आईना है, जो सदियों से मूक बने हुए थे ।संविधान शिल्पी डॉ बाबासाहेब अंबेडकर ने बहिष्कृत भारतीयों की अस्मिता उन्हें पुनः लौटने का काम ,उनको मनुष्य के रूप में पुनः स्थापित करने का कार्य और सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन में उन्हें समता, बंधुता ,न्याय और नैतिकता के समवेत स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार भारतीय संविधान में प्रदान किया। इसलिए हिंदी ही नहीं बल्कि समग्र भारतीय साहित्य में यह एक क्रांतिकारी कदम है सदियों के मूकनायक और युगों युगों के बहिष्कृत भारतीय संवैधानिक अधिकारों के कारण लिखने लगे, बोलने लगे, अभिव्यक्त होने लगे। हिंदी का अस्मितामूलक विमर्शकेन्द्री साहित्य इसी को स्पष्टता से अधोरेखित करता है ।अस्मितामुलक साहित्य में विशेषतः स्त्री विमर्श ,आदिवासी विमर्श अंबेडकरवादी अर्थात दलित विमर्ष, किन्नर ,वृद्ध, विकलांग ,अल्पसंख्यक, कृषक,घुमंतू, पर्यावरण जैसे अनेक साहित्य-प्रवाह है। ये सभी अस्मितार्केंद्री विमर्श हिंदी साहित्य में जनआंदोलन के रूप में साहित्यिक धारा में स्थापित होने लगे, यह हिंदी साहित्य के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। भारतीय समाजसुधारको इसे प्रेरणा दी। विशेषतः संत कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले ,संत गाडगे महाराज ,संत तुकडोजी महाराज, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय, संविधान शिल्पी डॉ बाबासाहेब अंबेडकर जैसे युग प्रवर्तको ने भारतीय बहिष्कृतों में वह नवचेतना, नवोन्मेष और नवक्षमता जाग्रत की, जिससे स्वतंत्र साहित्य सृजन में नई प्रतिभाएं उभरकर आई। हिंदी साहित्य में

विशेषत: नारी विमर्श की बुनियाद भारतीय शिक्षा की अधिष्ठात्री माता माता सावित्रीबाई फुले है, जिन्होंने देश की बेटियों और स्त्रियों को सबसे पहले शिक्षा देने का कालजयी कार्य किया है। हिंदी साहित्य के अस्मिता मूलक रचनाकारों में विशेष उल्लेखनीय है ,ओम प्रकाश वाल्मीकि , तुलसीराम, वॉटर भेंगरा तरुण, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल ,हरिराम मीना,अनामिका, सुशीला टाकभौरे, कृष्णा सोबती, बेबी हालदार ,अनुज लुगुन, पार्वती तिर्की, वंदना टेटे, मधु कांकरिया जैसे अनेक रचनाकारों ने अस्मितामूलक संवेदनों को उपन्यास, कहानी ,नाटक, कविता आदि के माध्यम से अत्यंत स्पष्ट से अधोरेखित करने का कार्य किया है ।उनके उल्लेखनीय कृतियों में, जूठन, पिंजरे अपने-अपने, मुर्दहिया, मोर्चा ,जंगल पहाड़ के गीत, अल्मा कबूतरी, शिकंजे का दर्द, दोहरा अभिशाप, टोकरी में दिगंत, हमारे हिस्से का सूरज, ढलती शाम का सूरज, आलो अंधारी , मैं हिजड़ा, एक भंगी कुलपति की आत्मकथा, आज बाजार बंद है, छप्पर जैसी अनेक रचनाएं हिंदी साहित्य में जीवन के भीषन यथार्थ को, सदियों से अव्यक्त संवेदनों को अत्यंत ताकत के साथ उजागर करती है।

मैं इस राष्ट्रीय आयोजन के प्रति खानदेश शिक्षण मंडल के सभी सम्माननीय सदस्यों, प्रताप महाविद्यालय के प्र.प्राचार्य, हिंदी विभाग के मेरे सभी सहयोगी प्राध्यापको,देश से उपस्थित हिंदी सेवी प्राध्यापकों,शोधार्थियों और उच्चतर राष्ट्रीय शिक्षा अभियान को हार्दिकधन्यवाद देकर अपने संपादकीय का समापन करता हूं। निश्चित ही अस्मितामूलक विमर्शकेंद्री हिंदी साहित्य कि यह राष्ट्रीय संगोष्ठी और इसमें प्रस्तुत किए गए शोधपरक आलेख, वैचारिक चिंतन, समीक्षाएं हिंदी साहित्य को एक नई सक्षम पहचान देने में सहायक सिद्ध होंगे इस दृढ़ विश्वास के साथ... !"

प्रोफेसर डॉ. शशिकांत 'सावन' (डी.लिट.)
मुख्य संपादक एवं संयोजक राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी 2026
हिंदी विभागाध्यक्ष,
प्रताप स्वशासी महाविद्यालय,अमलनेर(महाराष्ट्र)

INDEX

Sr. No.	Title/Author	Page No.
1.	नाट्यकृति 'कोर्ट मार्शल' में चित्रित संवैधानिक भारत की विसंगतियोंपूर्ण रक्षा व्यवस्था *प्रा.डॉ.सारिकाबेन देवाजी पाटील*	1
2.	निर्मला पूतुल के साहित्य में आदिवासी अस्मिता का यथार्थ चित्रण *प्रा. डॉ.मनोहर हिलाल पाटील*	7
3.	इक्कीसवीं सदी का "अस्मितामूलक हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अंबेडकरवादी विमर्श: एक अध्ययन" *श्री. प्रवीण रामलाल पवार 'प्रियदर्शन'*	10
4.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में 'मानवता का प्रतिबिंब' *डॉ. चंद्रभान लक्ष्मण सुरवाडे*	21
5.	हिंदी आत्मकथनों में अभिव्यक्त संवैधानिक चेतना एवं जीवन संघर्ष *सहा. प्रा. किशोर भबूत सोनवणे*	27
6.	राहत इन्दौरी की शायरी में आज़ाद भारत ('धूप बहुत है' के विशेष संदर्भ में) *-डॉ. इबरार खान*	36
7.	व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करनेवाली कहानी 'दीक्षा' *डॉ. क्रांति वासुदेव सोनवणे*	41
8.	रेनू यादव की 'काला सोना' कहानी में स्त्री का जीवन संघर्ष *डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव*	46
9.	महादेवी वर्मा के निबंध साहित्य में नारी चेतना : उपेक्षित चरित्रों के परिप्रेक्ष्य में *स.प्रा.कैलाश बागुल*	50
10.	संवैधानिक अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श *प्रा. किशोर रमेश गायकवाड*	53
11.	अस्मिता मूलक आदिवासी कथा साहित्य में आदिवासियत *डॉ. जयंतिलाल. बी. बारीस*	59

12.	**सुशीला टाकभौरे के काव्य में नारी विमर्श** *डॉ. अनिता रोहिदास राजबंशी*	70
13.	**कमलेश की कहानियों में चित्रित संवैधानिक भारत के व्यसनाधीन परिवार** *डॉ. निंबा लोटन वाल्हे*	75
14.	**हिंदी साहित्य निर्माण में महिला साहित्यकारों का योगदान** *प्रा. भाग्यश्री रमेश चव्हाण*	78
15.	**समाज एवं संस्कृति के बदलते मूल्य** *डॉ. विमुख उत्तमभाई पटेल*	84
16.	**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आंबेडकरी साहित्य (दलित साहित्य) और भारतीय संविधान** *आयु. महेंद्र अर्जुन आखाड़े, डॉ. महेंद्रकुमार आर. वाढे*	89
17.	**इक्कीसवी शती का विमर्शमूलक हिंदी साहित्य : बदलते परिप्रेक्ष्य में 'किन्नर विमर्श' (तिसरी ताली के संदर्भ में)** *डॉ. भारती वळवी (वाघ)*	95
18.	**२१ वीं सदी की लेखिका शरद सिंह कृत 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास में नारी विद्रोह** *प्रा. डॉ. नटवर संपत तडवी*	100
19.	**'तुम्हारी क्षय' कृति में चित्रित संवैधानिक मूल्य और सामाजिक–आर्थिक विसंगतियाँ'** *प्रो. डॉ. हर्षवर्धन दामोदर जाधव, प्रा.सुनील रमेश सपकाळे*	105
20.	**हिंदी कथा साहित्य में चित्रित वृध्द विमर्श** *सरिता संतोष माली, प्रो. डॉ. योगेश गोकुल पाटील*	112
21.	**हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान** *डॉ. नाना गायकवाड*	116
22.	**जब जंगल बोलता है : आदिवासी हिंदी कथा साहित्य में पर्यावरण विमर्श** *प्रा. डॉ. सतीश दत्तात्रय पाटील*	121
23.	**हिंदी के लघुकथा साहित्य में महिला लेखिकाओं की सृजनात्मकता** *प्रोफेसर कल्पना राजेंद्र पाटिल*	125
24.	**संवैधानिक मूल्य और हिंदी अम्बेडकवादी(दलित)कविता : एक समालोचनात्मक अध्ययन** *प्रोफेसर(डॉ) महेंद्रकुमार रामचंद्र वाढे*	131

25.	**विवेकी राय के उपन्यासों में प्रताड़ित स्त्री: दलित-स्त्री का दोहरा शोषण** *स्नेहा नाना गायकवाड*	**141**
26.	**संवैधानिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक विमर्श को चित्रित करता हिंदी सिनेमा** *श्री.बापू शिवाजी पाटील , प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन'*	**146**
27.	**प्रसाद साहित्य में नारी : परंपरा और आधुनिकता के संदर्भ में** *डॉ. प्रीति एस.सोनी*	**149**
28.	**किन्नर समुदाय की नारकीय स्थिति दर्शाता उपन्यास : जिंदगी ५०-५०** *डॉ. पंढरीनाथ शिवदास पाटिल*	**155**
29.	**चिंतन के परिप्रेक्ष्य में अस्मितामूलक हिंदी साहित्य** *डॉ.जयश्री गावित*	**161**
30.	**'चीफ की दावत' कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श** *प्रा.डॉ.भारती मधुकर पाटील*	**164**

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

" नाट्यकृति 'कोर्ट मार्शल' में चित्रित संवैधानिक भारत की विसंगतियोंपूर्ण रक्षा व्यवस्था "

प्रा.डॉ.सारिकाबेन देवाजी पाटील

रूख्मिणीताई कला व वाणिज्य महिला महाविद्यालय
अमलनेर,जलगाँव, महाराष्ट्र

सारांश :-

स्वदेश दीपक द्वारा रचित 'कोर्ट मार्शल' आधुनिक भारतीय नाटक साहित्य की एक कालजयी कृति है। यह नाटक केवल सैन्य जीवन की आंतरिक परतों को नहीं उघाड़ता, बल्कि भारतीय लोकतंत्र, संविधान और रक्षा व्यवस्था के अंतर्विरोधों पर एक गंभीर 'संवैधानिक विमर्श' खड़ा करता है।यह नाटक न्याय, जातिवाद और संवैधानिक मूल्यों के बीच के संघर्ष को दर्शाता है। भारतीय संविधान अपनी प्रस्तावना में ही 'न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व' का संकल्प लेता है। सेना को इस संविधान का रक्षक माना जाता है। स्वदेश दीपक का नाटक 'कोर्ट मार्शल' इसी रक्षक संस्था के भीतर छिपे भक्षक तत्वों—जातिवाद, क्षेत्रीयता और सामंती मानसिकता—को उजागर करता है।यह केवल एक नाटक नहीं है, बल्कि भारतीय सैन्य व्यवस्था और समाज के अंतर्विरोधों पर एक तीखा प्रहार है। यह नाटक न्याय, जातिवाद और संवैधानिक मूल्यों के बीच के संघर्ष को दर्शाता है। यह नाटक यह प्रश्न उठाता है कि क्या संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार बैरक की सीमाओं पर समाप्त हो जाते हैं? स्वदेश दीपक का नाटक 'कोर्ट मार्शल' सैन्य जीवन की पृष्ठभूमि पर आधारित है, लेकिन इसका फलक व्यापक है।

प्रस्तावना :-

भारतीय संविधान समानता और गरिमा का अधिकार देता है, परंतु स्वदेश दीपक का 'कोर्ट मार्शल' नाटक यह दिखाता है कि कैसे 'अनुशासन' की आड़ में मानवीय गरिमा और संवैधानिक अधिकारों का हनन होता है। यह नाटक मात्र एक सैन्य कानूनी कार्यवाही की कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के उस कड़वे सच का आईना है जो वर्दी के पीछे छिपा है।भारतीय संविधान समानता (अनुच्छेद 14-15) का अधिकार देता है, लेकिन यह नाटक दर्शाता है कि रक्षा व्यवस्था के भीतर'अनुशासन' के नाम पर किस प्रकार सामाजिक पूर्वाग्रह और जातिवाद सक्रिय रहते है।भारतीय सैन्य व्यवस्था के भीतर छिपी जातिगत विसंगतियों, न्याय प्रणाली की सीमाओं और संवैधानिक आदर्शों व यथार्थ के बीच के संघर्ष को बड़ी निर्भीकता से उजागर करता है। भारतीय संविधान समानता और गरिमा का अधिकार देता है,परंतु नाटक यह दिखाता है कि कैसे 'अनुशासन' की आड़ में मानवीय गरिमा और संवैधानिक अधिकारों का हनन होता है।स्वदेश दीपक का नाटक 'कोर्ट मार्शल' मात्र एक सैन्य कानूनी कार्यवाही की कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के उस कड़वे सच का आईना है जो वर्दी के पीछे छिपा है।

कथानक की पृष्ठभूमि और संवैधानिक संकट :-

नाटक की कहानी रामचंदर नामक एक सिपाही के इर्द-गिर्द घूमती है, जिस पर अपने ही वरिष्ठ अधिकारियों पर गोली चलाने का आरोप है।कोर्ट मार्शल की कार्यवाही के दौरान यह परतें खुलती हैं कि रामचंदर अपराधी नहीं,बल्कि उस जातिवादी मानसिकता का शिकार है जो सेना जैसी अनुशासित संस्था में भी गहराई तक पैठी हुई है।नाटक की पूरी कार्यवाही एक बंद कमरे में 'कोर्ट मार्शल' के रूप में चलती है।अभियुक्त है सिपाही रामचंदर, जिसने अपने दो वरिष्ठ अधिकारियों—कैप्टन वर्मा और कैप्टन कपूर—पर गोली चलाई। प्रथम दृष्टया यह अनुशासनहीनता का मामला है, लेकिन जैसे-जैसे बचाव पक्ष के वकील कैप्टन विकास रॉय गवाहों से जिरह करते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अपराध 'व्यक्तिगत' नहीं बल्कि 'सामाजिक और व्यवस्थागत' है।

अनुशासन बनाम मानवीय गरिमा (अनुच्छेद 21) :-

संविधान का अनुच्छेद 21 'गरिमापूर्ण जीवन' का अधिकार देता है। रक्षा व्यवस्था में 'अनुशासन' (Discipline) को सर्वोच्च माना जाता है, लेकिन नाटक दिखाता है कि कैसे वरिष्ठ अधिकारी इस शब्द का उपयोग कनिष्ठ सैनिकों को अपमानित करने के लिए करते हैं। रामचंदर को 'साहब' की सेवा न करने या उनके अहंकार की तुष्टि न करने पर शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना दी जाती है। यहाँ अनुशासन, उत्पीड़न का पर्याय बन जाता है।

सेना में अदृश्य जातिवाद (अनुच्छेद 17 और 15) :-

संविधान अस्पृश्यता का अंत करता है, परंतु नाटक के पात्र कैप्टन कपूर की मानसिकता अत्यंत संकीर्ण है। वह रामचंदर की योग्यता और उसके सटीक निशाने (जो देश के लिए गर्व की बात होनी चाहिए) को इसलिए सहन नहीं कर पाता क्योंकि रामचंदर एक दलित (चमार) परिवार से आता है। वह उसे "गंदी नाली का कीड़ा" कहकर संबोधित करता है। यह विसंगति है कि जिस सैनिक को राष्ट्र की एकता का प्रतीक होना चाहिए, वह स्वयं जातिवाद के विष से ग्रसित है।

कैप्टन कपूर को अपनी 'उच्च जाति' और सैन्य पृष्ठभूमि (उसके पिता कर्नल थे) पर अहंकार है। वह मानता है कि युद्ध जीतना और नेतृत्व करना केवल 'ऊँची जातियों' का जन्मसिद्ध अधिकार है। यह सोच भारतीय संविधान के 'अवसर की समानता' के सिद्धांत पर सीधा प्रहार है। न्याय प्रणाली का द्वंद्व: सत्य बनाम साक्ष्य नाटक की रक्षा व्यवस्था में न्याय प्रक्रिया की एक बड़ी विसंगति उभरती है। कोर्ट मार्शल में केवल यह देखा जाता है कि "क्या गोली चली?"। विकास रॉय यह तर्क देते हैं कि न्याय के लिए यह जानना भी जरूरी है कि "गोली क्यों चली?"।विसंगति: सैन्य कानून अक्सर कठोर और तकनीकी होते हैं, जो मानवीय संवेदनाओं और उस 'उकसावे' (Provocation) को नजरअंदाज कर देते हैं जो एक सैनिक को अपराधी बनाने पर मजबूर करता। संवैधानिक मूल्य बनाम सैन्य यथार्थ - भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) और अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता का अंत) इस नाटक के मुख्य बिंदु हैं।जातिगत भेदभाव: सेना में योग्यता (Merit) को सर्वोपरि माना जाता है, लेकिन कैप्टन कपूर जैसे पात्र रामचंदर की योग्यता को उसकी जाति के कारण नकारते

हैं। मानसिक प्रताड़ना: अनुशासन के नाम पर 'थर्ड डिग्री' अपमानजनक व्यवहार संवैधानिक स्वतंत्रता के विरुद्ध है।

रक्षा व्यवस्था की प्रमुख विसंगतियाँ :-

अंध-अनुशासन की आड़: नाटक यह सवाल उठाता है कि क्या अनुशासन का अर्थ वरिष्ठों के निजी अहंकार की संतुष्टि है? रामचंदर का 'अपराध' एक प्रतिक्रिया है, जो लंबे समय से दबे हुए आक्रोश का परिणाम है।न्याय प्रक्रिया की सीमाएं: कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया में बचाव पक्ष के वकील विकास रॉय जब सच्चाई उजागर करते हैं, तो व्यवस्था की जड़ता सामने आती है। न्याय केवल साक्ष्यों पर नहीं, बल्कि पूर्वग्रहों पर आधारित दिखता है।सैनिक का मनोविज्ञान: एक सैनिक को 'मशीन' मान लिया जाता है, जबकि वह एक सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिक पहचान (जाति) उसे मोर्चे पर भी नहीं छोड़ती।विकास रॉय का पात्र उस संवैधानिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है जो व्यवस्था के भीतर रहकर व्यवस्था की कमियों को उजागर करता है।वह साबित करता है कि वर्दी के नीचे छिपा हुआ इंसान अपनी सामाजि कैप्टन विकास रॉय: न्याय का संवैधानिक स्वर कुंठाओं से मुक्त नहीं हुआ है। सामाजिक विसंगति का प्रतिबिंब-नाटक यह स्पष्ट करता है कि रक्षा व्यवस्था समाज से अलग नहीं है। यदि समाज में जातिवाद है, तो वह सेना में भी प्रवेश करेगा। यह संविधान की उस विफलता की ओर संकेत करता है जहाँ कानून तो बन गए हैं, लेकिन मानसिकता नहीं बदली।भ्रष्टाचार और पक्षपात: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के उच्च अधिकारी अपने पद और शक्ति का दुरुपयोग करते हैं और अपने फायदे के लिए नियमों को तोड़ते हैं। मानवाधिकारों का उल्लंघन: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के जवानों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है और उनके अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है। न्याय व्यवस्था की कमी: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के भीतर न्याय व्यवस्था कमजोर है और अपराधियों को सजा नहीं मिलती है।संविधान के मूल्यों का उल्लंघन: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के अधिकारी संविधान के मूल्यों का उल्लंघन करते हैं और अपने पद का दुरुपयोग करते हैं।अधिकारों का उल्लंघन: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के जवानों के अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है और उन्हें न्याय नहीं मिलता है। न्याय व्यवस्था की कमी: नाटक में दिखाया गया है कि सेना के भीतर न्याय व्यवस्था कमजोर है और अपराधियों को सजा नहीं मिलती है।

महत्वपूर्ण पात्रों का वैचारिक विश्लेषण :-

पात्रों के माध्यम से रक्षा व्यवस्था और संवैधानिक विसंगतियों का विश्लेषण 'कोर्ट मार्शल' के पात्र केवल व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे समाज और सेना की विभिन्न सोच और प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। इनके माध्यम से स्वदेश दीपक ने व्यवस्था की दरारों को स्पष्ट किया है कैप्टन विकास रॉय: वह संवैधानिक चेतना का प्रतीक है। वह व्यवस्था के भीतर रहकर व्यवस्था के पाखंड को चुनौती देता है। उसका कथन, "वर्दी के नीचे का इंसान कभी नहीं बदलता", भारतीय समाज की कड़वी सच्चाई को दर्शाता है।सबेदार मेजर बलवान सिंह: वह उस पुराने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो व्यवस्था की खामियों को जानते हुए भी 'वफादारी' और 'चुप रहने' को ही धर्म मानते हैं।उनकी चुप्पी व्यवस्था की विसंगतियों को और गहरा करती है। सिपाही रामचंदर: व्यवस्था का

'पीड़ित' पक्ष रामचंदर उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे संविधान ने कागजों पर तो 'समान' बना दिया, लेकिन व्यावहारिक रूप से वह आज भी हाशिए पर है।विसंगति: सेना में उसे 'जवान' कहा जाता है, लेकिन कैप्टन कपूर जैसे अधिकारी उसे उसकी जाति (चमार) से संबोधित करते हैं।उसकी वीरता और निशानेबाजी को सराहना मिलने के बजाय उसके 'नीची जाति' होने के तर्कों से दबा दिया जाता है।संवैधानिक उल्लंघन: यह अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत गरिमा का अधिकार) का सीधा उल्लंघन है। रामचंदर का विद्रोह कोई आपराधिक कृत्य नहीं, बल्कि अपनी गरिमा की रक्षा के लिए किया गया अंतिम प्रयास है। कैप्टन कपूर: सामंती और जातिवादी मानसिकता का रक्षक,कैप्टन कपूर रक्षा व्यवस्था में पैठी उस सड़ांध का प्रतीक है जो 'योग्यता' के ऊपर 'कुल' और 'जाति' को रखता है।विसंगति: वह एक शिक्षित सैन्य अधिकारी है, जिसे संविधान की शपथ दिलाई गई है, परंतु उसका व्यवहार मध्यकालीन सामंत जैसा है। वह रामचंदर को मानसिक रूप से इतना प्रताड़ित करता है कि वह हथियार उठाने पर मजबूर हो जाए। यहाँ 'अनुशासन' एक हथियार है जिसका उपयोग कमजोर को कुचलने के लिए किया जा रहा है।

कैप्टन विकास रॉय: संवैधानिक चेतना का स्वर :-

विकास रॉय इस नाटक का सबसे प्रखर पात्र है। वह एक वकील के रूप में सत्य की खोज करता है।

वह कोर्ट में यह सिद्ध करता है कि अपराध केवल 'गोली चलाना' नहीं है, बल्कि वह 'व्यवहार' भी अपराध है जिसने गोली चलाने की स्थिति पैदा की। विकास रॉय का तर्क है कि सेना की वर्दी पहनने से किसी के संस्कार नहीं बदल जाते; यदि भीतर जातिवाद है, तो वह घातक है।वह यह दर्शाता है कि रक्षा व्यवस्था को आत्म-चिंतन की आवश्यकता है।कैप्टन विकास रॉय का पात्र इस नाटक की रीढ़ है। वे केवल एक वकील (Defense Council) नहीं हैं, बल्कि वे उस 'संवैधानिक चेतना' के प्रतीक हैं जो व्यवस्था की सड़ांध को तर्कों के माध्यम से उजागर करती है।

कर्नल सूरत सिंह: व्यवस्था की तटस्थता और विफलता :-

कर्नल सूरत सिंह न्यायाधीश की भूमिका में हैं। वे नियमों से बंधे हैं, लेकिन अंततः वे भी उस सत्य को स्वीकार करने पर विवश हो जाते हैं जो विकास रॉय सामने लाता है। उनकी विवशता यह दर्शाती है कि कानून की प्रक्रिया अक्सर 'सत्य' के करीब तो पहुँचती है, लेकिन 'न्याय' देने में चूक जाती है।

नाटक यह संदेश देता है कि सेना कोई अलग द्वीप नहीं है। वह इसी समाज से बनती है। यदि समाज में जातिवाद, क्षेत्रवाद और भेदभाव मौजूद है, तो वह वर्दी पहनकर सीमा पर भी जाएगा। यह रक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी विसंगति है कि वह बाहरी दुश्मन से तो लड़ सकती है, लेकिन भीतर बैठे 'सामाजिक कैंसर' से निपटने में अक्षम दिखती है।

निष्कर्ष :-

'कोर्ट मार्शल' यह संदेश देता है कि जब तक समाज से जातिवाद और सामंती सोच का अंत नहीं होगा,तब तक संवैधानिक समानता का सपना अधूरा है। रक्षा व्यवस्था में सुधार केवल हथियारों या तकनीक से नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टिकोण और संवैधानिक नैतिकता के पालन से आएगा।'कोर्ट मार्शल' यह सिद्ध करता है कि भारत की रक्षा व्यवस्था को केवल आधुनिक हथियारों की ही नहीं, बल्कि'संवैधानिक नैतिकता'(Constitutional Morality) की भी अनिवार्य आवश्यकता है।जब तक सेना के भीतर एक सैनिक को उसकी जाति या धर्म के आधार पर नहीं बल्कि उसकी योग्यता और मनुष्यता के आधार पर नहीं देखा जाएगा, तब तक न्याय अधूरा है।रामचंदर को सजा मिलना कानून की जीत हो सकती है, लेकिन वह मानवता और संवैधानिक मूल्यों की हार है।स्वदेश दीपक का यह नाटक हमें आत्मचिंतन के लिए विवश करता है कि क्या हम वास्तव में एक 'समान' समाज बना पाए हैं?नाट्यकृति कोर्ट मार्शल भारतीय सेना की विसंगतियोंपूर्ण रक्षा व्यवस्था को उजागर करती है, जो संवैधानिक भारत के मूल्यों और आदर्शों के विरुद्ध है। यह नाटक सेना के भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, और मानवाधिकारों के उल्लंघन को दर्शाता है। हमें सेना की विसंगतियोंपूर्ण रक्षा व्यवस्था को सुधारने के लिए काम करना चाहिए और संवैधानिक भारत के मूल्यों और आदर्शों को बनाए रखना चाहिए। सामाजिक कलंक का स्थानांतरण: समाज में व्याप्त जातिवाद सैन्य बैरकों तक पहुँच चुका है।मानसिक स्वास्थ्य की अनदेखी: व्यवस्था अपराधी के अपराध को देखती है, लेकिन उस अपराध के पीछे के सामाजिक कारणों (Provocation) को नजरअंदाज कर देती है।संवैधानिक विफलता:जहाँ संविधान 'छुआछूत' और 'भेदभाव' का अंत करता है, वहीं रक्षा व्यवस्था के भीतर कुछ अधिकारी इसे मानसिक हथियार के रूप में उपयोग करते हैं।

'कोर्ट मार्शल' नाटक का समापन केवल एक फैसले से नहीं होता, बल्कि समाज के सामने कई अनुत्तरित प्रश्न छोड़ जाता है।संवैधानिक विफलता: नाटक यह सिद्ध करता है कि भारत का संविधान (Constitution) एक महान दस्तावेज है, लेकिन जब तक इसे लागू करने वाली संस्थाओं (जैसे सेना, पुलिस, न्यायपालिका) के व्यक्तियों की मानसिकता नहीं बदलेगी, तब तक 'समानता' एक मृगतृष्णा बनी रहेगी।अनुशासन बनाम मानवाधिकार: रक्षा व्यवस्था में अनुशासन अनिवार्य है, लेकिन यदि अनुशासन का उपयोग किसी की मानवीय गरिमा को ठेस पहुँचाने के लिए किया जाए, तो वह व्यवस्था के पतन का कारण बनता है।अंतिम संदेश: स्वदेश दीपक यह संदेश देते हैं कि देश की सीमाएं तभी सुरक्षित रह सकती हैं जब देश के भीतर के नागरिक (चाहे वे सैनिक हों या सामान्य जन) जाति और वर्ग के भेदभाव से मुक्त हों। रामचंदर को सजा मिलना तय है, लेकिन असली 'कोर्ट मार्शल' उस व्यवस्था का होना चाहिए जिसने एक होनहार सैनिक को अपराधी बना दिया।

अभिप्राय:-

नाट्यकृति कोर्ट मार्शल भारतीय सेना की विसंगतियोंपूर्ण रक्षा व्यवस्था को उजागर करती है, जो संवैधानिक भारत के मूल्यों और आदर्शों के विरुद्ध है। यह नाटक सेना के भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, और मानवाधिकारों के उल्लंघन को दर्शाता है।

उपसंहार:-

'कोर्ट मार्शल' यह संदेश देता है कि जब तक रक्षा व्यवस्था के भीतर सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा को स्थान नहीं मिलेगा, तब तक हमारी सुरक्षा प्रणाली में विसंगतियाँ बनी रहेंगी। यह नाटक व्यवस्था को सुधारने और संवैधानिक मूल्यों को जमीनी स्तर पर लागू करने की पुरजोर वकालत करता है।

संदर्भ ग्रंथ (References) :-

1. दीपक, स्वदेश; 'कोर्ट मार्शल' (राजकमल प्रकाशन)।
2. डॉ बी आर आंबेडकर (online Wikipedia शोध पत्र)भारतीय संविधान: मौलिक अधिकार और रक्षा कानून।
3. समकालीन हिंदी नाटक और सामाजिक सरोकार।(online Wikipedia शोध पत्र)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

निर्मला पूतुल के साहित्य में आदिवासी अस्मिता का यथार्थ चित्रण

प्रा. डॉ. मनोहर हिलाल पाटील

हिन्दी विभाग प्रमुख

महाराज ज.पो. वलवी कला वाणिज्य एवं श्री. व्ही.के. कुलकर्णी विज्ञान महाविद्यालय, धडगाव जि. नंदुरबार

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श का विकास समकालीन सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष है। इस विमर्श को सशक्त स्वर देने वाली रचनाकारों में निर्मला पूतुल का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे संथाल आदिवासी समुदाय से आती हैं और उनकी रचनाएँ आदिवासी जीवन का भीतरी, आत्मानुभूत और यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका साहित्य केवल करुणा या सहानुभूति का साहित्य नहीं, बल्कि अस्मिता, स्वाभिमान और प्रतिरोध का साहित्य है।

निर्मला पूतुल ने अपने काव्य और गद्य के माध्यम से आदिवासी समाज की पीड़ा, संघर्ष, संस्कृति, स्त्री-जीवन और प्रकृति से जुड़ी संवेदना को अत्यंत प्रामाणिक रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके साहित्य में आदिवासी अस्मिता केवल विषय नहीं, बल्कि केंद्रबिंदु है।

'अस्मिता' का अर्थ है - अपनी पहचान, अस्तित्व और आत्मसम्मान के प्रति सजगता। आदिवासी अस्मिता में निम्नलिखित आयाम सम्मिलित हैं -

सांस्कृतिक पहचान (भाषा, लोकगीत, पर्व-त्योहार)

सामाजिक पहचान (सामूहिकता, समानता)

आर्थिक पहचान (जल-जंगल-ज़मीन पर अधिकार)

स्त्री अस्मिता (स्वतंत्रता, श्रम और सम्मान)

राजनीतिक चेतना (शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध)

निर्मला पूतुल के साहित्य में ये सभी आयाम यथार्थ रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

निर्मला पूतुल का जन्म झारखंड के संथाल परगना क्षेत्र में हुआ। उन्होंने आदिवासी जीवन को निकट से देखा-जिया है। यही कारण है कि उनके साहित्य में बाहरी दृष्टि नहीं, बल्कि स्वानुभूति की प्रामाणिकता दिखाई देती है।

उनका प्रमुख काव्य-संग्रह-

"नगाड़े की तरह बजते शब्द"

"अपने घर की तलाश में"

इन रचनाओं में आदिवासी अस्मिता का यथार्थ, विद्रोह और संवेदना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

निर्मला पूतुल की कविताओं में आदिवासी संस्कृति की गहरी जड़ें दिखाई देती हैं। वे लोकगीत, नृत्य, पर्व-त्योहार और सामूहिक जीवन-शैली को गर्व के साथ प्रस्तुत करती हैं।

उनके यहाँ संस्कृति कोई जड़ परंपरा नहीं, बल्कि जीवंत जीवन-पद्धति है। वे बाहरी संस्कृति के अंधानुकरण का विरोध करती हैं और अपनी सांस्कृतिक पहचान की रक्षा का आहवान करती हैं।

आदिवासी जीवन का आधार जल, जंगल और जमीन है। निर्मला पूतुल की रचनाओं में इन पर हो रहे कब्ज़े और शोषण का तीखा विरोध दिखाई देता है।

वे विकास की उस अवधारणा पर प्रश्न उठाती हैं जो आदिवासियों को विस्थापित करती है। उनके शब्दों में जंगल केवल संसाधन नहीं, बल्कि माँ है—जीवनदायिनी।

निर्मला पूतुल की सबसे बड़ी विशेषता आदिवासी स्त्री की सशक्त उपस्थिति है। उनकी स्त्री - मेहनतकश है, स्वाभिमानी है, निर्णय लेने में सक्षम है, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाती है ।

वे आदिवासी स्त्री को दोहरे शोषण - पितृसत्ता और सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न - के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं, लेकिन उसे कमजोर नहीं, बल्कि संघर्षशील दिखाती हैं।

निर्मला पूतुल का साहित्य आदिवासियों पर हो रहे शोषण को उजागर करता है - चाहे वह ठेकेदार हो, साहूकार, प्रशासन या व्यवस्था।

उनकी कविताओं में प्रतिरोध का स्वर मुखर है। वे केवल दर्द नहीं कहतीं, बल्कि संघर्ष की चेतना जगाती हैं। उनका साहित्य आदिवासी समाज को कर्त्ता के रूप में स्थापित करता है।

निर्मला पूतुल शिक्षा को अस्मिता की रक्षा का माध्यम मानती हैं। वे शिक्षा के अभाव को शोषण का कारण मानती हैं, किंतु उस शिक्षा पर भी सवाल उठाती हैं जो आदिवासियों को उनकी जड़ों से काट देती है।

निर्मला पूतुल की रचनाओं में प्रकृति सजीव रूप में उपस्थित है। पहाड़, जंगल, नदियाँ—सब उनके साहित्य में मनुष्य के साथी हैं। यह दृष्टि आदिवासी दर्शन को प्रतिबिंबित करती है, जहाँ मनुष्य और प्रकृति में कोई भेद नहीं।

निर्मला पूतुल की भाषा सरल, संवेदनशील लोकजीवन से जुड़ी प्रतीकात्मक उनकी कविताओं में संथाली जीवन के शब्द, बिंब और प्रतीक प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। शिल्प में - मुक्त छंद, आत्मकथात्मक स्वर, प्रश्नात्मक शैली, प्रतीक और बिंब यथार्थ को प्रभावशाली बनाते हैं।

निर्मला पूतुल ने हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श को नई दिशा दी। उन्होंने-सहानुभूति के स्थान पर स्वाभिमान रखा आदिवासी को वस्तु नहीं, विषय बनाया स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखा ।

उनका साहित्य दलित और स्त्री विमर्श के साथ संवाद करता है, किंतु अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखता है।

कुछ आलोचक मानते हैं कि निर्मला पूतुल का साहित्य भावुकता से भरा है, किंतु यह भावुकता नहीं, बल्कि जीवन का यथार्थ है। उनका साहित्य अनुभव की सच्चाई से उपजा है, इसलिए उसकी संवेदना तीव्र है।

निर्मला पूतुल के साहित्य में आदिवासी अस्मिता का यथार्थ चित्रण अत्यंत सशक्त और प्रामाणिक है। उन्होंने आदिवासी समाज के दर्द, संघर्ष और स्वाभिमान को अपनी रचनाओं में आवाज़ दी है। उनका साहित्य शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध और सांस्कृतिक चेतना का साहित्य है।

अतः कहा जा सकता है कि निर्मला पूतुल का साहित्य हिंदी साहित्य में आदिवासी अस्मिता का मील का पत्थर है, जो न केवल आदिवासी समाज, बल्कि पूरे भारतीय समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची -

1. पूतुल, निर्मला - नगाड़े की तरह बजते शब्द, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. पूतुल, निर्मला - अपने घर की तलाश में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वर्मा, रामनिवास - हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. टेटे, वंदना - आदिवासी साहित्य : परंपरा और विमर्श, आदिवासी अध्ययन केंद्र, रांची।
5. केरकेट्टा, रोज - आदिवासी स्त्री : अस्मिता और संघर्ष, झारखंड साहित्य अकादमी, रांची।
6. टोप्पो, महादेव - आदिवासी साहित्य का यथार्थ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
7. सिंह, नामवर - साहित्य और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. दुबे, शिवकुमार - समकालीन हिंदी कविता में अस्मिता विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. पांडेय, विश्वनाथ प्रसाद - आधुनिक हिंदी कविता : वैचारिक परिप्रेक्ष्य, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
10. झा, गणेश - आदिवासी संस्कृति और साहित्य, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. शर्मा, राजेंद्र - हिंदी साहित्य में हाशिए का विमर्श, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. त्रिपाठी, विजयमोहन - स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. पत्रिका : हंस, तद्भव, आलोचना, समकालीन जनमत - विभिन्न अंक।
14. झारखंड साहित्य अकादमी - आदिवासी साहित्य विशेषांक, रांची।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

इक्कीसवीं सदी का "अस्मितामूलक हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अंबेडकरवादी विमर्श: एक अध्ययन"

श्री. प्रवीण रामलाल पवार 'प्रियदर्शन'

आनंदीबाई बंकट हाईस्कूल, चालीसगाँव, महाराष्ट्र

भूमिका

हिंदी साहित्य का विकास केवल कलात्मक सौंदर्य या भावनात्मक संवेदनाओं का इतिहास नहीं है, अपितु यह समाज में घटित हो रहे परिवर्तनों, संघर्षों तथा चेतनाओं का भी सजीव दस्तावेज़ है। स्वतंत्रता-पूर्व का साहित्य जहाँ राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और सांस्कृतिक गौरव का गान करता है, वहीं स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत का साहित्य समाज में व्याप्त असमानता, विषमता और अन्याय की ओर उन्मुख हुआ। इसी कालखंड में हिंदी साहित्य में एक नवीन वैचारिक धारा का उदय हुआ — अस्मितामूलक साहित्य।

'अस्मिता' शब्द संस्कृत की 'अस्मि' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है — "मैं हूँ" अथवा "मेरा अस्तित्व है।" यह केवल व्यक्ति की पहचान का द्योतक नहीं, अपितु उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय गरिमा-बोध का प्रतीक है। जब समाज के वंचित, शोषित और उपेक्षित समुदायों ने यह उद्घोष किया कि हम भी मनुष्य हैं , तब साहित्य में एक क्रांतिकारी स्वर मुखर हुआ। यही स्वर अस्मितामूलक साहित्य का मूलाधार बना।

इस साहित्य की तीन प्रमुख धाराएँ मानी जाती हैं —

1. अंबेडकरवादी विमर्श
2. आदिवासी विमर्श
3. घुमंतु अथवा विमुक्त जाति विमर्श

इन तीनों धाराओं में अंबेडकरवादी विमर्श सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जिसने साहित्य को सामाजिक न्याय, समानता, आत्मसम्मान और मानवाधिकारों की दिशा में प्रवाहित किया।

अस्मितामूलक साहित्य का स्वरूप एवं उद्देश्य

अस्मितामूलक साहित्य हिंदी साहित्य की वह सशक्त धारा है, जिसने समाज के उन वर्गों को केंद्र में स्थापित किया जिन्हें परंपरागत साहित्य ने दीर्घकाल तक हाशिए पर रखा। यह साहित्य मात्र सौंदर्य या कलात्मक अभिव्यक्ति का साधन नहीं, अपितु जीवन के यथार्थ, अन्याय के प्रतिरोध तथा मानव-गरिमा की पुनर्स्थापना का सशक्त आंदोलन है।

'अस्मिता' शब्द संस्कृत की 'अस्मि' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है — "मैं हूँ" अथवा "मेरा अस्तित्व है।" यह अस्तित्व केवल व्यक्ति के होने की जैविक स्थिति का द्योतक नहीं, बल्कि उसके सामाजिक सम्मान, पहचान, आत्मगौरव तथा सांस्कृतिक गरिमा की स्वीकृति का प्रतीक है। अतः अस्मितामूलक साहित्य का उद्देश्य केवल कलात्मक या सौंदर्यपरक रचना नहीं, बल्कि मानव की आत्म-चेतना को जागृत कर उसके अधिकारों की पुनर्प्राप्ति हेतु स्वर उठाना है।

इस साहित्य की मूल प्रेरणा उस पीड़ा, अन्याय और संघर्ष से उद्भूत होती है जिसे समाज ने शताब्दियों तक अनदेखा किया। दलित, आदिवासी, घुमंतु, स्त्रियाँ तथा अल्पसंख्यक — ये वे वर्ग हैं जिनके जीवनानुभवों को परंपरागत साहित्य ने "अवांछित" या "गैर-साहित्यिक" मानकर उपेक्षित किया; किंतु अस्मितामूलक साहित्य ने इन्हें अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया और इन्हें उनकी वास्तविक गरिमा प्रदान की।

यह साहित्य यह उद्घोष करता है कि मनुष्य की गरिमा उसकी जाति, धर्म या लिंग से नहीं, अपितु उसके श्रम, अनुभव और अस्तित्व की सच्चाई से निर्धारित होती है।

1. साहित्य में नवीन विषय एवं दृष्टिकोण का प्रवेश

अस्मितामूलक साहित्य ने हिंदी साहित्य को भावनात्मक कल्पना की सीमाओं से आगे बढ़ाकर अनुभव, यथार्थ और सामाजिक सत्य के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित किया। यह साहित्य उन वर्गों की सशक्त आवाज़ के रूप में उभरा, जिन्हें युगों से मुख्यधारा से पृथक रखकर मौन किया गया था। जहाँ परंपरागत साहित्य प्रेम, भक्ति, प्रकृति और सौंदर्य के भावलोक में विचरण करता रहा, वहीं अस्मितामूलक साहित्य ने मनुष्य की सामाजिक स्थिति, जातिगत अन्याय, आर्थिक विषमता और अस्तित्व-संघर्ष को अपने केंद्र में स्थापित किया। इसने साहित्य को केवल "सौंदर्य" या "रस" का माध्यम न मानते हुए "सत्य" और "अनुभव" की सशक्त अभिव्यक्ति बना दिया।

यह धारा प्रतिपादित करती है कि साहित्य तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक वह समाज के उपेक्षित एवं हाशिए पर स्थित वर्गों की व्यथा और संवेदना को अभिव्यक्त न करे। अस्मितामूलक लेखन ने यह उद्घाटित किया कि जिन जीवन-स्थितियों को अब तक "गैर-साहित्यिक" या "अवांछित" माना गया — जैसे जूठन खाना, मंदिरों में प्रवेश का निषेध, अथवा अस्पृश्यता — वही इस साहित्य की आत्मा हैं।

उदाहरणार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा *'जूठन'* में उल्लिखित यह पंक्ति — "हमारे हिस्से की ज़िंदगी हमेशा दूसरों की जूठन रही" — केवल व्यक्तिगत वेदना का नहीं, बल्कि एक समूचे समुदाय की सामूहिक चेतना और ऐतिहासिक पीड़ा का उद्घोष है।

अस्मितामूलक साहित्य ने विषय-वस्तु और दृष्टिकोण, दोनों स्तरों पर क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। अब साहित्य का नायक वह बना जो समाज के तिरस्कार, उपेक्षा और शोषण के बावजूद अपनी अस्मिता की रक्षा करता है। इस प्रकार, अस्मितामूलक लेखन ने हिंदी साहित्य को लोकतांत्रिक स्वर और मानवीय विस्तार प्रदान किया, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव को साहित्यिक गरिमा और नैतिक महत्त्व प्राप्त हुआ।

यह प्रवृत्ति न केवल सामाजिक परिवर्तन का दर्पण सिद्ध हुई, अपितु साहित्य को संवेदनशीलता की सीमाओं से आगे बढ़ाकर सामाजिक उत्तरदायित्व और मानव-मुक्ति के उद्देश्य से जोड़ दिया।

2. करुणा से प्रतिरोध तक की यात्रा

अस्मितामूलक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पीड़ा का उद्देश्य केवल करुणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि प्रतिरोध की चेतना जगाना है। पारंपरिक साहित्य में पीड़ित पात्र प्रायः दया या सहानुभूति के पात्र होते हैं; उन्हें उद्धार की प्रतीक्षा में दिखाया जाता है। किंतु अस्मितामूलक साहित्य के पात्र स्वयं अपने उद्धार के कारक हैं — वे अपने संघर्ष के माध्यम से समाज की विषम संरचना को चुनौती देते हैं। यह साहित्य उद्घोष करता है — "हम अब करुणा नहीं, समानता चाहते हैं।"

शरणकुमार लिंबाळे अपनी कृति *'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'* में स्पष्ट रूप से कहते हैं — *"हमारे साहित्य में विलाप नहीं, विद्रोह है; करुणा नहीं, चेतना है।"* यह वाक्य अस्मितामूलक साहित्य के चरित्र का सर्वाधिक सटीक प्रतिपादन करता है। यह साहित्य मनुष्य को केवल पीड़ित नहीं, बल्कि जागृत, संघर्षशील सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें दलित पात्र अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं, समाज की अन्यायपूर्ण संरचना को चुनौती देते हैं और अपनी अस्मिता की उद्घोषणा करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की *'जूठन'*, शरणकुमार लिंबाळे की *'अक्करमाशी'* तथा दया पवार की *'बलुतं'* जैसी आत्मकथाएँ इस प्रतिरोध की यात्रा की सशक्त मिसालें हैं। इन रचनाओं में व्यक्तिगत अनुभव सामूहिक चेतना का प्रतीक बन जाते हैं, जिससे अस्मितामूलक साहित्य सामाजिक इतिहास का जीवंत दस्तावेज़ बन जाता है।

इस साहित्य में पीड़ा के साथ एक क्रांतिकारी आत्मबोध निहित है — वह चेतना जो व्यक्ति को मौन स्वीकृति से सक्रिय प्रतिवाद की ओर अग्रसर करती है। यही कारण है कि अस्मितामूलक साहित्य केवल करुणा का नहीं, बल्कि संघर्ष और परिवर्तन का सशक्त दस्तावेज़ है। इस साहित्य में आँसू विद्रोह में रूपांतरित हो जाते हैं, और अपमान आत्मसम्मान की पुनःस्थापना का माध्यम बन जाता है।

3. सत्य और अनुभव की प्रामाणिकता

अस्मितामूलक साहित्य की तृतीय और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है — *सत्य की प्रामाणिकता।* पारंपरिक साहित्य जहाँ सौंदर्य और कल्पना पर आधारित था, वहीं अस्मितामूलक साहित्य ने यह प्रतिपादित किया कि साहित्य का वास्तविक सौंदर्य "सत्य" में निहित है। यह साहित्य जीवन के उपेक्षित, अनकहे एवं कटु यथार्थ को बिना किसी अलंकरण या कृत्रिमता के उद्घाटित करता है। इसमें लेखक अपने अनुभवों को छिपाता नहीं, अपितु उन्हें समाज के सम्मुख साक्ष्य-दस्तावेज़ के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस साहित्य का सौंदर्यशास्त्र अनुभवजन्य है — यह उद्घोष करता है कि *"सौंदर्य सत्य में है, न कि मिथ्या सुख में।"* अस्मितामूलक लेखकों के लिए सत्य केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का साधन है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती तथा जयप्रकाश कर्दम जैसे साहित्यकारों ने अपने

जीवन के नग्न यथार्थ को उसी रूप में अभिव्यक्त किया जैसा उन्होंने जिया। उदाहरणस्वरूप, *'जूठन'* में वाल्मीकि का यह स्वीकार — *"हमारी जिंदगी का हर दिन जूठन से शुरू होता और जूठन पर समाप्त होता था"* — साहित्यिक सौंदर्य से अधिक एक सामाजिक दस्तावेज़ है, जिसमें जीवन की कठोर सच्चाई अंकित है।

यही सत्यनिष्ठा अस्मितामूलक साहित्य को विशिष्ट बनाती है। यहाँ अलंकार नहीं, अनुभव मुखरित होते हैं; यहाँ कल्पना नहीं, इतिहास के हाशिए पर अंकित यथार्थ स्वर ग्रहण करता है। इस साहित्य ने सिद्ध किया कि भाषा की शक्ति उसके सौंदर्य में नहीं, बल्कि उसकी ईमानदारी में निहित है। यही कारण है कि अस्मितामूलक लेखन आज भारतीय समाज के लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक विमर्श का नैतिक आधार बन चुका है।

4 उद्देश्य : समानता और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना

अस्मितामूलक साहित्य का अंतिम एवं सर्वोच्च उद्देश्य केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही नहीं, अपितु समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना है। यह साहित्य डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित *"समानता, न्याय और बंधुत्व"* के त्रिमूल्य सिद्धांतों को अपने सृजन का केंद्र बनाता है। अंबेडकरवादी विचारधारा के अनुसार, समाज तभी सभ्य कहा जा सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, शिक्षा, सम्मान और अधिकार प्राप्त हों। अस्मितामूलक साहित्य इन्हीं आदर्शों को जनसाहित्य के रूप में मूर्त करता है।

यह साहित्य केवल 'दलित' अथवा 'शोषित' वर्ग की नहीं, बल्कि समस्त समाज की नैतिक पुनर्रचना की आकांक्षा रखता है। यह मनुष्य को जातिगत बंधनों से मुक्त कर मानवता के उच्चतम स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसी भावभूमि से यह प्रश्न उठता है — *"क्या प्रत्येक व्यक्ति को गरिमा के साथ जीवनयापन का अधिकार नहीं है?"* इस प्रश्न का उत्तर खोजने की प्रक्रिया ही इसे क्रांतिकारी बनाती है। जब ये प्रश्न साहित्यिक विमर्श से जन-विमर्श में रूपांतरित होते हैं, तब वे सामाजिक आंदोलन का रूप ग्रहण करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाळे, कंवल भारती तथा सुजाता पाराशर जैसे साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि साहित्य का धर्म केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि मानवाधिकारों की रक्षा भी है। इस दृष्टि से अस्मितामूलक साहित्य भारतीय संविधान के नैतिक दर्शन का साहित्यिक विस्तार है — जहाँ साहित्य केवल कागज़ पर अंकित नहीं रहता, अपितु समाज के जीवन में साकार होता है।

4. भाषा और शैली का यथार्थ

अस्मितामूलक साहित्य की भाषा उसकी आत्मा है — वह भाषा, जो अलंकारिक जटिलता से नहीं, अपितु अनुभवजन्य प्रामाणिकता से निर्मित होती है। यह जनभाषा है — जो खेतों, कारखानों, गलियों तथा झोपड़ियों से होकर प्रवाहित होती है। इसमें उस जीवन की गंध विद्यमान है, जिसे पारंपरिक साहित्य ने प्रायः 'असभ्य' अथवा 'गैर-साहित्यिक' कहकर उपेक्षित किया। किंतु अस्मितामूलक लेखक यह भलीभाँति जानते हैं कि वही भाषा सबसे सच्ची है, जो जीवन के संघर्षों से उपजती है।

यह साहित्य अलंकरण-मुक्त, सीधे संवाद की भाषा में रचित है — जहाँ शब्दों का उद्देश्य प्रभाव उत्पन्न करना नहीं, बल्कि यथार्थ की अभिव्यक्ति करना है। इसकी शैली आत्मकथात्मक, संवादपरक तथा भावनात्मक ईमानदारी से परिपूर्ण होती है। यहाँ लेखक और पात्र के मध्य कोई दूरी नहीं रहती, क्योंकि लेखक स्वयं उसी समाज का प्रतिनिधि होता है जिसकी पीड़ा को वह स्वर देता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की *'जूठन'*, दया पवार की *'बलुतं'* और शरणकुमार लिंबाळे की *'अक्करमाशी'* में यही शैली दृष्टिगत होती है — जहाँ भाषा नहीं, बल्कि जीवन बोलता है। इस भाषा में तीखापन है, क्योंकि यह अन्याय के विरोध में उठी हुई आवाज़ है; साथ ही इसमें करुणा है, क्योंकि यह मानव-गरिमा के पक्ष में दृढ़ता से खड़ी है। यही भाषा इस साहित्य को जनसामान्य के सर्वाधिक निकट लाती है। अस्मितामूलक लेखन ने यह सिद्ध किया कि साहित्य की सर्वाधिक प्रभावी शैली वही है, जो सरलता में सत्य तथा सच्चाई में सौंदर्य का अन्वेषण करती है।

5. सौंदर्यशास्त्र की पुनर्परिभाषा

अस्मितामूलक साहित्य ने भारतीय साहित्य के परंपरागत 'रस-सिद्धांत' एवं 'अलंकार-प्रधान सौंदर्यशास्त्र' को मूल रूप से चुनौती दी। पारंपरिक दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य 'आनंद' अथवा 'रसास्वादन' था, किंतु अस्मितामूलक दृष्टि यह उद्घोष करती है कि वास्तविक सौंदर्य का वास आनंद में नहीं, अपितु सत्य में है। यह साहित्य उस सत्य को सुंदर मानता है, जो अन्याय के प्रतिरोध में स्थिर रहता है और संघर्ष के मध्य भी मानवता को जीवित रखता है।

शरणकुमार लिंबाळे ने अपनी प्रसिद्ध कृति *'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'* में लिखा — *"हमारे साहित्य का सौंदर्य हमारे जख्मों में छिपा है; हमारे साहित्य में करुणा नहीं, चेतना है।"* यह कथन अस्मितामूलक सौंदर्यशास्त्र का घोषणापत्र है। यहाँ सौंदर्य किसी बाह्य रूप, ध्वनि या काव्य-रस में नहीं, बल्कि उस आत्मसम्मान में निहित है, जो अपमान के विरुद्ध उठ खड़ा होता है। यह साहित्य मनुष्य के संघर्ष, श्रम और संवेदना को कलात्मक गरिमा प्रदान करता है।

इस पुनर्परिभाषा ने सौंदर्यशास्त्र को नैतिकता एवं सामाजिक न्याय से अभिन्न रूप में जोड़ा। अब 'सौंदर्य' का आशय केवल भव्यता से नहीं, बल्कि सत्य, संघर्ष और संवेदना की प्रामाणिकता से है। अस्मितामूलक साहित्य ने यह सिद्ध किया कि यदि किसी समाज में अन्याय विद्यमान है, तो साहित्य का सर्वाधिक सुंदर रूप वही है जो उस अन्याय को चुनौती देता है। इस प्रकार यह धारा केवल साहित्यिक परिवर्तन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण का संकेत है — जहाँ शब्द हथियार बन जाते हैं और सौंदर्य, प्रतिरोध की भाषा में परिवर्तित हो जाता है।

अंबेडकरवादी विमर्श : उद्भव, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वैचारिक आधार (संशोधित संस्करण)

भारतीय समाज की संरचना प्राचीन काल से ही जाति-व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसने समाज को ऊँच-नीच, शुद्ध-अशुद्ध और स्पृश्य-अस्पृश्य जैसी विभाजक रेखाओं में बाँट दिया। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था ने

ज्ञान, धर्म और सत्ता के केंद्रों पर एक वर्ग का स्थायी वर्चस्व स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरूप दलित तथा शूद्र वर्ग शिक्षा, संपत्ति और सामाजिक सम्मान से वंचित रहे।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध जो सबसे सशक्त और संगठित स्वर उठा, वह डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का था। उन्होंने स्पष्ट कहा —

"मनुष्य मात्र के लिए समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व ही सच्चे धर्म के आधार हैं।"

डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा को मुक्ति का सर्वोत्तम साधन बताया और कहा —

"शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो।"

उनकी वैचारिक चेतना ने साहित्य को एक नई दृष्टि और दिशा प्रदान की — सामाजिक यथार्थ का निडरता से सामना करने की, तथा अन्याय के विरुद्ध स्वर उठाने की।
इसी चेतना से प्रेरित होकर हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं में अंबेडकरवादी साहित्य आंदोलन का उद्भव हुआ, जिसने साहित्य को दलित जीवन के संघर्ष, अनुभव और आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना दिया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' : आत्मसम्मान की चेतना और अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रतिबिंब अंबेडकरवादी विमर्श की सबसे सशक्त और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा *'जूठन'* में देखने को मिलती है। यह कृति केवल एक व्यक्ति की जीवनगाथा नहीं, बल्कि दलित समाज के सामूहिक अनुभव और ऐतिहासिक पीड़ा का दस्तावेज़ है। वाल्मीकि ने अपनी लेखनी के माध्यम से उस यथार्थ को उद्घाटित किया, जिसे भारतीय समाज की जातिवादी संरचना ने सदियों तक छिपाए रखा था। *'जूठन'* यह प्रतिपादित करती है कि कठोर सामाजिक अपमान और बहिष्कार के बावजूद मनुष्य का आत्मसम्मान अविनाशी रहता है।

इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सत्यनिष्ठ अभिव्यक्ति है। लेखक अपने बचपन के उन मार्मिक प्रसंगों को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत करते हैं — जब उन्हें विद्यालय में झाड़ू लगाने को विवश किया गया या ऊँची जाति के बच्चों की जूठी पत्तलों से भोजन करने के लिए बाध्य किया गया। यह केवल व्यक्तिगत अपमान की कथा नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की भीषण सच्चाई का उद्घाटन है, जो मनुष्य को उसकी जाति के आधार पर अपमानित करती है। वाल्मीकि का यह कथन —

"हमारी ज़िंदगी का हर दिन जूठन से शुरू होता और जूठन पर ही समाप्त होता था।"
केवल आत्मकथन नहीं, बल्कि भारतीय समाज की असमानता का ऐतिहासिक साक्ष्य है।

'जूठन' में वाल्मीकि ने करुणा से आगे बढ़कर प्रतिरोध की चेतना को केंद्र में रखा है। उनकी लेखनी उस अंबेडकरवादी विचारधारा का अनुसरण करती है, जो कहती है — *"शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो।"* उनके लिए शिक्षा केवल ज्ञान का साधन नहीं, बल्कि मुक्ति और आत्मसम्मान की कुंजी है। उन्होंने यह स्थापित

किया कि ज्ञान ही वह शक्ति है जो अन्याय की जंजीरों को तोड़ सकती है। इस दृष्टि से *'जूठन'* सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और आत्मसम्मान की पुनर्प्राप्ति का घोषणापत्र बन जाती है।

इस रचना की भाषा भी उसके भावों की तरह प्रखर और प्रामाणिक है। वाल्मीकि ने भाषा को शिल्प नहीं, बल्कि अनुभव की आवाज़ बनाया। उनकी शैली सीधी, संवादात्मक और आत्मकथात्मक है, जिसमें अलंकरण की जटिलता नहीं, बल्कि यथार्थ की सच्चाई है। यह "अभिजात वर्ग" की भाषा नहीं, बल्कि "जन वर्ग" की संवेदना की भाषा है — वही भाषा जिसमें श्रम, संघर्ष और सम्मान की ध्वनि सुनाई देती है।

शरणकुमार लिंबाळे के शब्दों में, *"दलित साहित्य का सौंदर्य करुणा में नहीं, चेतना में निहित है।"* यही चेतना *'जूठन'* को एक सामान्य आत्मकथा से आगे ले जाकर सामाजिक विमर्श का दस्तावेज़ बनाती है। यहाँ लेखक केवल पीड़ित नहीं, बल्कि जागरूक नायक के रूप में उभरता है — जो अपनी नियति को बदलने का साहस रखता है।

वाल्मीकि का यह कथन —

"दलित होना अपराध नहीं है, परंतु समाज ने इसे अपराध बना दिया।"

इस साहित्य की आत्मा है। यह वाक्य बताता है कि अस्मितामूलक साहित्य केवल वर्णन का माध्यम नहीं, बल्कि विरोध और पुनर्जागरण की सशक्त अभिव्यक्ति है।

अंततः, *'जूठन'* ने हिंदी साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान की — जहाँ साहित्य केवल भावनाओं का संसार नहीं, बल्कि यथार्थ की आग में तपकर निकली संवेदना का साक्ष्य है। इस कृति ने यह सिद्ध किया कि जब तक समाज में अन्याय और भेदभाव विद्यमान हैं, तब तक साहित्य की सर्वोच्च भूमिका सत्य को उद्घाटित करना और आत्मसम्मान की लौ को प्रज्वलित रखना है।

शरणकुमार लिंबाळे और 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'

अंबेडकरवादी साहित्यिक आंदोलन ने भारतीय समाज और साहित्य, दोनों के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। इस आंदोलन के दो प्रमुख स्तंभ हैं — डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक-राजनीतिक दर्शन और शरणकुमार लिंबाळे का साहित्यिक चिंतन। लिंबाळे की प्रसिद्ध कृति *'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'* ने दलित साहित्य को न केवल वैचारिक दिशा प्रदान की, बल्कि उसे एक स्वतंत्र सौंदर्यशास्त्रीय आधार भी दिया। लिंबाळे का मानना है कि पारंपरिक भारतीय साहित्य और उसका सौंदर्यशास्त्र ब्राह्मणवादी मूल्यों पर आधारित रहा है, जहाँ सौंदर्य का अर्थ कोमलता, रस, अलंकार और कल्पना की रम्यता तक सीमित था। इस दृष्टिकोण में दलित जीवन, उनकी पीड़ा और उनके संघर्ष को कोई स्थान नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप साहित्य का सौंदर्य केवल उच्चवर्गीय अनुभवों तक सीमित रह गया।

लिंबाळे इस परंपरा को तोड़ते हुए कहते हैं कि दलित साहित्य का सौंदर्य पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र से सर्वथा भिन्न है। उनका कथन —

"हमारे साहित्य का सौंदर्य हमारे संघर्ष में है, हमारे ज़ख्मों में है, हमारे प्रतिरोध में है।"

दलित साहित्य की आत्मा को प्रकट करता है।

दलित साहित्य में सौंदर्य, पीड़ा और अन्याय के बीच भी मनुष्यत्व को बनाए रखने में निहित है। यह साहित्य किसी कृत्रिम रस या भावनात्मक प्रदर्शन का नहीं, बल्कि जीवंत अनुभवों और सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। लिंबाळे का कहना है कि दलित लेखक वही लिखता है जो उसने जिया है, भोगा है और देखा है। इसलिए यह साहित्य केवल कलात्मक सृजन नहीं, बल्कि जीवन का दस्तावेज़ है।

लिंबाळे का यह भी मत है कि दलित साहित्य केवल दलितों की बात नहीं करता, बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति का साहित्य है। वे इसे "मानवता का साहित्य" कहते हैं, क्योंकि यह समाज में व्याप्त अन्याय, असमानता और अमानवीयता के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। इसका उद्देश्य केवल दलितों की पीड़ा का चित्रण नहीं, बल्कि समूची मानवता को जागरूक और संवेदनशील बनाना है।

ब्राह्मणवादी साहित्य में "रस" और "भावनाएँ" उस सामाजिक संरचना की उपज थीं जो शोषण और असमानता पर आधारित थी। उसमें आनंद और सौंदर्य का अनुभव केवल सवर्ण मानसिकता के लिए संभव था। लिंबाळे ने इन मिथ्या अवधारणाओं को अस्वीकार करते हुए एक नया सौंदर्यशास्त्र प्रतिपादित किया, जिसमें सौंदर्य का मूल तत्व है — सत्य, करुणा और प्रतिरोध। पारंपरिक साहित्य जहाँ "श्रृंगार" या "वीर रस" में आनंद खोजता था, वहीं दलित साहित्य "करुणा" और "संघर्ष" में सौंदर्य देखता है। यह सौंदर्य हृदय को झकझोरता है और चेतना को जागृत करता है।

डॉ. अंबेडकर के विचार — "मनुष्य की असली पहचान उसके अधिकारों की समानता में है" — लिंबाळे के सौंदर्यशास्त्र के केंद्र में हैं। अंबेडकर ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के जो मूल्य दिए, लिंबाळे ने उन्हें साहित्यिक स्तर पर रूपांतरित किया। इस प्रकार *'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'* अंबेडकरवादी विचारधारा का साहित्यिक विस्तार बन जाता है।

अंततः लिंबाळे का सौंदर्यशास्त्र यह सिद्ध करता है कि साहित्य का वास्तविक उद्देश्य समाज में न्याय, करुणा और समानता की चेतना जगाना है। उन्होंने सौंदर्य की परिभाषा को नया अर्थ दिया — अब सौंदर्य केवल फूलों, कल्पनाओं या भावुकता में नहीं, बल्कि ज़ख्मों की सच्चाई, संघर्ष की गरिमा और प्रतिरोध की आवाज़ में निहित है। इस दृष्टि से शरणकुमार लिंबाळे ने न केवल दलित साहित्य को दार्शनिक आधार प्रदान किया, बल्कि भारतीय साहित्य को एक नया, मानवीय और अंबेडकरवादी सौंदर्यबोध भी दिया।

अंततः यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की अस्मिता उसका जन्म नहीं, बल्कि उसका कर्म, संघर्ष और चेतना निर्धारित करती है।

साहित्य में अंबेडकर का प्रभाव

अंबेडकरवादी साहित्य, डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों का साहित्यिक रूप है। उनके प्रसिद्ध संदेश — *"शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो"* — ने असंख्य लेखकों और रचनाकारों को प्रेरित किया। इस साहित्य ने केवल जाति-विरोधी चेतना को विकसित नहीं किया, बल्कि संविधान के मूल्यों — समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व — को जीवन के व्यवहार में उतारने का प्रयास किया।

'जूठन' के ओमप्रकाश वाल्मीकि और 'अक्करमाशी' के शरणकुमार लिंबाळे इसके सशक्त उदाहरण हैं। दोनों रचनाएँ दर्शाती हैं कि अंबेडकरवादी विचार व्यक्ति को सामाजिक अपमान से उठाकर आत्मसम्मान की ऊँचाई तक पहुँचाते हैं।

अंबेडकर के विचारों ने साहित्य को सामाजिक न्याय की नई दिशा दी। अनेक लेखकों ने उनके दर्शन को अपने जीवन और लेखन में मूर्त रूप प्रदान किया। यह प्रभाव केवल दलित साहित्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि पूरे भारतीय साहित्य की संवेदना, चेतना और दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया। अंबेडकरवादी दृष्टिकोण ने साहित्य को एक मिशन का स्वरूप दिया, जिसके परिणामस्वरूप साहित्य में संघर्ष, समानता और मानवाधिकार की आवाज़ और अधिक प्रखर हुई।

भाषा और शैली

अंबेडकरवादी साहित्य की भाषा सजीव, सीधी और मार्मिक है। यह भाषा कृत्रिम अलंकारों से रहित है, क्योंकि यह सीधे जीवन की सच्चाइयों से जन्मी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की भाषा में क्रोध और करुणा का तीखा संतुलन है, जबकि शरणकुमार लिंबाळे की भाषा विवेक, तर्क और विद्रोह का संगम प्रस्तुत करती है।

यह साहित्य शास्त्रीय "रसों" की परंपरा से आगे बढ़कर यथार्थ और प्रतिरोध के रस को अभिव्यक्त करता है। इसकी भाषा में बोली और लोकभाषा की स्वाभाविक गंध है, जो इसे जन-साहित्य का रूप प्रदान करती है। शब्दों में दर्द, विरोध और आत्मगौरव की ज्वाला है। यह भाषा शिल्प की नहीं, बल्कि अनुभव की भाषा है — जो सीधे हृदय को स्पर्श करती है।

इसकी शैली में भावनात्मक तीव्रता के साथ तर्क की दृढ़ता भी निहित है। इसका उद्देश्य केवल करुणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि पाठक के भीतर चिंतन और सामाजिक परिवर्तन की चेतना जगाना है।

अंबेडकरवादी साहित्य और भारतीय संविधान

अंबेडकरवादी साहित्य भारतीय संविधान के समानता, न्याय और बंधुत्व के सिद्धांतों का साहित्यिक विस्तार है। यह साहित्य संविधान को केवल एक कानूनी दस्तावेज़ नहीं, बल्कि *मानव गरिमा का ग्रंथ* मानता है।

'जूठन' में वाल्मीकि का जीवन-संघर्ष और लिंबाळे का वैचारिक विवेचन, दोनों ही संविधानिक मूल्यों — समानता और मानवाधिकार — की स्थापना की दिशा में अग्रसर हैं। यह साहित्य संविधान की आत्मा को लोकभाषा में अभिव्यक्त करता है, ताकि वह समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे।

अंबेडकरवादी साहित्य नागरिक अधिकारों, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा का सशक्त स्वर है। इसके लेखक संविधान के आदर्शों को व्यवहारिक जीवन में उतारने की प्रेरणा देते हैं। इस साहित्य में न्याय और समानता केवल सैद्धांतिक मूल्य नहीं, बल्कि जीवन-संघर्ष की धुरी बन जाते हैं।

इस प्रकार, अंबेडकरवादी साहित्य संविधान को एक *जीवंत दस्तावेज़* बनाकर समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाता है — जहाँ शब्द केवल विचार नहीं, बल्कि परिवर्तन के साधन बन जाते हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में अंबेडकरवादी विमर्श

आज के डिजिटल युग में अंबेडकरवादी विमर्श और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। नई पीढ़ी के लेखक — अनिता भारती, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, राजकुमार, संजीव चंदन आदि — ने दलित विमर्श को समकालीन मुद्दों जैसे शिक्षा, रोजगार, लैंगिक असमानता और पर्यावरण से जोड़ा है।

अब यह विमर्श केवल "दलित प्रश्न" तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समानता के सार्वभौमिक विमर्श के रूप में विकसित हो रहा है। सोशल मीडिया और डिजिटल मंचों ने इस विमर्श को वैश्विक स्तर तक पहुँचाया है।

युवा लेखकों ने इसमें नई संवेदनाएँ और प्रयोगधर्मिता जोड़ी हैं। अब अंबेडकरवादी दृष्टिकोण मानवाधिकार, पर्यावरण और लैंगिक न्याय जैसे मुद्दों से भी गहराई से जुड़ रहा है। यह विमर्श वर्ग, लिंग और जाति से परे समानता के सार्वभौमिक मूल्यों की वकालत करता है और इस प्रकार अंबेडकरवादी साहित्य आज भी सामाजिक परिवर्तन की धड़कन बना हुआ है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

अंबेडकरवादी साहित्य के सामने आज भी कुछ चुनौतियाँ हैं — मुख्यधारा के साहित्यिक संस्थानों द्वारा इसकी उपेक्षा, बाज़ार और प्रकाशन जगत में असमान पहुँच, तथा समीक्षात्मक दृष्टि का अभाव।

फिर भी इसकी सबसे बड़ी शक्ति इसकी *सत्यनिष्ठा* और *यथार्थवाद* है। यह साहित्य सिद्ध करता है कि शब्दों में भी क्रांति की शक्ति होती है। इस दिशा में अधिक अकादमिक और आलोचनात्मक समर्थन की आवश्यकता है।

युवा पीढ़ी को इसके अध्ययन, लेखन और विमर्श में सक्रिय रूप से सम्मिलित होना चाहिए। प्रकाशन और वितरण के स्तर पर समान अवसर प्राप्त होना अभी भी एक चुनौती है, किंतु इसकी लोकप्रियता और प्रभाव निरंतर बढ़ रहे हैं।

यह साहित्य यह सिद्ध करता है कि सच्चा शब्द कभी दबाया नहीं जा सकता — वह परिवर्तन का बीज बनकर समाज में नई चेतना के रूप में अंकुरित होता है।

निष्कर्ष

अंबेडकरवादी साहित्य केवल दलित अनुभवों का लेखन नहीं, बल्कि समूचे समाज के नैतिक, बौद्धिक और मानवीय पुनर्जागरण का सशक्त आंदोलन है। इस साहित्य ने यह सिद्ध किया है कि सच्चा साहित्य वही है, जो अन्याय के विरुद्ध खड़ा हो और मनुष्य को उसकी गरिमा, समानता तथा अधिकारों का बोध कराए। डॉ. भीमराव अंबेडकर के प्रेरणादायी विचार — "शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो" — इस साहित्य की मूल चेतना और आधारशिला हैं।

यह साहित्य करुणा से नहीं, चेतना से उपजा है; पीड़ा से नहीं, प्रतिरोध से निर्मित है। इसमें सौंदर्य का आधार *संघर्ष*, *सत्य* और *मानवता* है, न कि कल्पित आनंद या भावुकता का अनुभव। अंबेडकरवादी लेखक शब्दों के माध्यम से संवैधानिक मूल्यों — समानता, न्याय और बंधुत्व — को लोकजीवन में साकार करते हैं।

समकालीन संदर्भ में भी अंबेडकरवादी साहित्य उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें स्मरण कराता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल राजनीति या सत्ता परिवर्तन से नहीं, बल्कि विचारों, शिक्षित चेतना और शब्दों की क्रांतिकारी शक्ति से संभव है। यही इसकी स्थायी महत्ता और साहित्यिक अमरता का प्रमाण है।

संदर्भ सूची

1. अंबेडकर, डॉ. भीमराव. जाति का विनाश. मुंबई: शिक्षा प्रकाशन, 1944.
2. अंबेडकर, डॉ. भीमराव. बुद्ध और उनका *धम्म*. मुंबई: गौतम बुक्स, 1957.
3. लिंबाळे, शरणकुमार. दलित साहित्य का *सौंदर्यशास्त्र*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1996.
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. *जूठन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997.
5. पवार, दया. बलुतं. मुंबई: पॉप्युलर प्रकाशन, 1978.
6. भगवत, ज्ञानरंजन (सम्पा०). *दलित साहित्य: विमर्श और स्वरूप*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005.
7. चंदन, संजीव. दलित विमर्श और अंबेडकरवादी *दृष्टि*. दिल्ली: भावना प्रकाशन, 2012.
8. भारती, अनिता. स्त्री और दलित विमर्श. दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2018.
9. वाल्दे, शशिकांत. अंबेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र. नागपुर: समता प्रकाशन, 2020.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में 'मानवता का प्रतिबिंब'

डॉ. चंद्रभान लक्ष्मण सुरवाडे

हिंदी विभाग प्रमुख,कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, नवापुर. जि.नंदुरबार (महाराष्ट्र)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाज और साहित्यिक मंचोपर विविध सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों, विमर्शों जिनमें स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श,अल्पसंख्याक विमर्श, किन्नर विमर्श आदि ने समाज में हलचल मचा दी। उसी तरह हिंदी साहित्य में दलित विमर्श, दलित चेतना, दलित आंदोलन, दलित साहित्य और विविध साहित्यिक संघर्षों ने साहित्यकारों, सामाजिक चिंतकों,राजनीतिज्ञों और आलोचकों का ध्यान सबसे ज्यादा आकृष्ट किया है। क्योंकि दलित विमर्शने पुराने साहित्यिक मापदंडों के समस्त समीकरण बदल दिए हैं। जिससे वह हिंदी पारंपरिक साहित्य को, परंपरागत रूढ़ियों को कटघरे में लाकर खड़ा करके मानवता की वकालत करता है। लेखन जगत में जब से दलित साहित्य प्रवेश कर गया; तब से सामाजिक, सांस्कृतिक, परिस्थितियों ने जनमानस को बहुत अधिक प्रभावित किया। जिसमें दलित प्रतिबद्ध लेखन और सशक्त आंदोलन का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। तात्पर्य आधुनिक विचारधाराओं से कोई भी साहित्य बच नहीं सकता। हिंदी साहित्य में जो प्रवाह विद्यमान हैं, उसमें दलित साहित्य यह एक ऐसी विचारधारा है;जो सामाजिक परिवर्तन की भूमिका को स्वीकार करते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से जनमानस को झकझोर कर प्रतिगामी ताकतों को बल प्रदान करते हुए मानवीय मूल्य, नीति तथा राजनीति, संस्कृति, इतिहास और मिथकों को अंतरभूत करके साहित्य को नई दिशा प्रदान करता है। दलित लेखन की मूल प्रेरणा डॉ बाबासाहेब आंबेडकर की विचारधारा से है; जो मानव हित, उनके कल्याण तथा विश्व शांति की हिमायत करताहैं।

हिंदी साहित्य में दलित लेखकोंने उल्लेखनीय कार्य किया है। उनमे से ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी दलित कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। उनकी कहानियां दलित जीवन की संवेदना, संवेदनशीलता और अनुभवों का दस्तावेज है। जो एक ऐसे भारत से साक्षात्कार कराती है; जहां हजारों साल की पीड़ा अंधेरे कोनों में दुबकी पड़ी है, उनमें दलितों के जीवन संघर्षों और बेचैनी का कच्चा कच्चा चिट्ठा है; जिसका एक-एक पन्ना पलटते हुए दलित जीवन की सच्चाई से रूबरू कराता है। दलितों की दर्दनाक पीडा तथा जिजीविषा, छटपटाहट, सरोकार इनकी कहानियों में साफ-साफ दिखाई देता है। उन्होंने अपनी कहनियों में वर्चस्व की सत्ता को चुनौती दी है। वहीं दूसरी ओर दबे-कुचले, शोषित, पीड़ित, जातीय समूहों को मुकरता देकर उनके आसपास फैली हुई विसंगतियों पर भी चोट की है; जो दलित विमर्श को सार्थक और गुणात्मक बनाता है।1

वाल्मीकि खुद दलित है। उनके जीवन की यात्रा दलित, पीड़ित, शोषित बस्ती से निकलकर सवर्णोंके अन्याय अत्याचार ओर छल-छलावे से भरी कठिन डगर है। जख्मों से सबक लेकर वह मुख्यधारा तक रही है। उनमें दलित जीवन की पीड़ा असहनीय और स्वानुभूत है। साहूकार, सामंती, जमीदारों तथा सवर्णों की दर्दनाक पीड़ा को सहते हुए जीवन का अर्थ खोजने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि आजादी के बाद भी दलित होने की पीड़ा को झेलते। अपने और अपनी जाति का क्षोभ, समस्त संताप, अभावों से संघर्ष करके वे उच्च कोटि के दलित

साहित्यकार के रूप में पहचाने जाते हैं। हिंदी में शुद्ध रूप से दलित साहित्य की कथा यात्रा ओमप्रकाश वाल्मीकि से ही आरंभ होती है। 'जंगल की रानी ' उनकी पहली दलित कहानी है; जो 22 नवंबर 1987 में 'जनसत्ता' में प्रकाशित हुई थी।2 उनका पहला कहानी संग्रह ' सलाम' और दूसरा 'घुसपैठिए' प्रकाशितहुआहै। प्रथम कहानी संग्रह में कुल 14 कहानियां प्रकाशित हो चुकी है, जबकि 'घुसपैठिए' इस कहानी संग्रह में कुल 12 कहानियां प्रकाशित हो चुकी है। उनकी कहानियों में दलित चेतना का मूल आधार मानवतावाद है, क्योंकि माननीय सरोकारों के बिना साहित्य की अर्थवत्ताखो जाती है। उनकी कहानियां इस दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि कथ्य की विविधता और कला पक्ष की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है।

'सलाम' कहानी से ओमप्रकाश वाल्मीकि को जाना जाता है। इस कहानी में उन्होंने सदियों से चली आ रही सवर्ण हिंदू की रूढ़िवादी परंपरा का विरोध किया है। कहानी का एक चरित्र कमल उपाध्याय प्रगतिशील ब्राह्मण युवक है। वह अपने एक चुहडभंगी सहपाठी हरीश की बारात में उत्तर प्रदेश के गांव में जाता है। वहां उसे सुबह-सुबह चाय पीने की तलब लगती है। वह गांव में बुद्धूचायवाले की दुकान में जाकर चाय बनाने के लिए कहता है। पहले तो चायवाला उसे चाय देने के लिए 'हां' कहता है; परंतु जब बातों ही बातों में वह जान जाता है, कि वह देहरादून से चूहडो की बारात में आया है, तो शायद यह भी चूहड ही होगा। तब वह कमल को चाय देने से इंकार करता है।

यद्यपि कमल उपाध्याय यह प्रगतिशील ब्राह्मण का संस्कारक्षम युवक है। वह अपने मित्र हरीश, जो दलित की चूहड़जाति की बारात में आया। इसलिए गांव के ठाकुर लोग भी उसे चुहड ही समज लेते हैं। कमल कहता भी है कि, वह ब्राह्मण हैं। परंतु इस पर चाय वाला गांव के ठाकुर रामपाल से कहता है कि चूहडा है फिर भी बामन बता रहा है. जुम्मन चुहडा के बाराती है। तुम लोग ही फैसला करो जो यह 'बामन' है; तो चूहडो की बारात में क्या मुत पीने आया है क्या? जाति छिपाते चाय मांग रहा है। बुद्धू की दुकान पर तो मिलेगी ना चाय चूहड़ो चमारों को। 3

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित की अछूत भावना को उजागर किया। अछूतों के प्रति तीन रूढ़ीवादी मान्यताओं: जिनमें खानपान संबंधी नियम, दूसरा शादी का संबंध और तीसरा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर की बात; उसके छूने या छाया से सवर्ण हिंदू शरीर को अशुद्ध हुआ मानते। मंदिर प्रवेश तथा धार्मिक उत्सवों में अछूत का सहयोग तो दूर,वहां मंदिर में रखी हुई मूर्ति के दर्शन भी नहीं कर सकता। इन रूढ़ीवादी मान्यताओं के प्रति विरोध कर विद्रोह की भावना पैदा की है। इस कहानी में और एक रूढ़िवादी परंपरा को नकारा है। शादी के बाद ससुराल के गांव में सवर्णोंके घरों में सलाम करने जाने की परंपरा है। सलाम करने पर गांव की औरतें और पुरुष उन्हें कुछ रुपैया और घर के पुराने कपड़े भेंट करते थे।

हरीश इस परंपरा का विरोध करता है, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा दलित युवक है। और इस परंपरा को वह अपमानजनक परंपरा मानकर उसका विरोध करता है। हरीश को आत्मविश्वास का पुतला बताया है। जिसमें आत्मभिमान और परंपरा का विरोध होता है। दलितों में शिक्षा का महत्व बाबा साहब ने फैलाया। शिक्षा प्राप्त करके ही दलितों में आत्म सम्मान जागृत होकर ऐसी रूढ़िवादी परंपरा को नकारने की शक्ति पैदा हुई है।

इसमें दलित चेतना का स्वर भरता है और कथा में विद्रोह की चिंगारी सुलग उठती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने जीवन को निकट से देखा। उसकी विसंगतियों, विडंबनाओ,कुरूपताओं को भोगा और सहा।

जीवन के विभिन्न आयामों को अनेक गुणों से देखा, परखा और इन सबकी परिणति स्वरूप गहरी संवेदना, वह संवेदना जो जाति की है, खुद की है। पाठक बनकर निर्माण हुई। और यही कहानीयों में व्यापक सरोकारों, विस्तृत जीवन, जीवनानुभूति से जुड़ गई. साथ ही साथ यथार्थ और प्रगतिशील विचारधारा को छोड़ती नहीं दलितों को अछूत मानकर उन्हें समाज और धर्म से बहिष्कृत किया गया यहां तक कि विद्या, विद्यार्जन पर भी रोक थी धार्मिक संस्कार जैसे उपनयन संस्कार दलितों के लिए नहीं थे मंदिर में पूजा करना, धनोपार्जन प्रतिबंधित थे. गांव के बाहर रहने को बाध्य किया गया था. तमाम अनुष्ठानों से वंचित रखना व्यवस्था का हिस्सा था. इस आधार पर ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सपना' कहानी है| सपना का नायक गौतम नाम का दलित मंदिर निर्माण के लिए ना केवल पूरी निष्ठा और धार्मिक भावना से चंदा इकट्ठा करता है| बल्कि जी तोड़ मेहनत करके काम करता है. लेकिन मंदिर में भगवान की मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के दिन समारोह के पंडाल में गौतम और उसके परिवार का अगली पंक्ति में बैठना सवर्णों को बर्दाश्त नहीं होता क्योंकि गौतम एस. सी. अर्थात दलित है. इसलिए कट्टरपंथी नटराजन उससे कहता है, फर्क पड़ता है पूजा अनुष्ठान में उन्हें आगे नहीं बैठाया जा सकता यह शास्त्रों की मान्यता है"। 4

कट्टरपंथी हिंदुओं के लिए शास्त्रों के नियम सर्वोपरि है। शास्त्रों में मनुष्य अछूत जाति का हीन माना गया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के इस कहानी का चेतना पक्ष यह है, कि जहां मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव किया जाता है। जहां समानता नहीं है। यही आधार को दर्शाने के लिए गौतम पंडाल से बाहर निकल कर कहता है, "ऐसे अनुष्ठानों में बैठ कर क्या होगा; जहां आदमी को आदमी की तरह न समझा जाए। 5 यह कहकर वह उसके मन में धर्म के प्रति परंपरागत विश्वास को तोड़ कर फेंक देता है।

गौतम इस मंदिर को बनवाने के लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करता है। जब मंदिर बनवाने के बाद ऋषि नाम का व्यक्ति मंदिर की अनुष्ठान कार्यक्रम में गौतम को खरी-खोटी सुनाता है तब वह कहता है कि मैभी इस मंदिर के अनुष्ठान में नहीं बैठ सकता। इस टिप्पणी पर डॉ रमनिका गुप्ता लिखती हैं कि, "यह बौखलाए हुए आदमी की कहानियां नहीं है, यह उस सताए हुए समाज की कहानियां है, जो मनुष्यता का दावा करना सीख गया है और बड़े बराबरी का हक मांग रहा है। वे लोग अब दूसरी दुनिया के हाथों को अपनी नियति मानने को तैयार नहीं है। 6

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस कहानी में एक और सामाजिक बदलाव पर जोर दिया है तो दूसरी और आक्रोश एवं गुस्सा नजर आता है। आक्रोष और गुस्सा उस पीड़ा की अभिव्यक्ति है, जो सदियों से उन्हें सहते आना पड़ रहा है।

'बैलकी खाल' उनकी एक संवेदनात्मक कहानी है। इस कहानी में दलितों की आर्थिक बदहाली के कारण दयनीय अवस्था का चित्रण है। पापी पेट को भरने के लिए मरे हुए बैल की खाल उतार कर बाजार में बेचना और पेट पालना यह काम था दलितों का। बैल के मरने पर पंडित बृजमोहन काफी दुखी होता है। परंतु उसे

स्पर्श तक नहीं करता। कल तक अनाज उगाने वाला बैल मरते ही अपवित्र हो गया था। जिसे छूना तो दूर, उसके पास खड़े होना भी पाप से कम नहीं था। उसे उठाने के लिए पंडित बृजमोहन काले और भूरे की तलाश करता है, जो मरे हुए बैल को गांव के बाहर ले जा कर फेंक देता था। एक तरफ ओमप्रकाश वाल्मीकि ने काले और भूरे को विपन्नता के खातिर मरे हुए बैल की खाल उतारना दिखाया है। जबकि दूसरी ओर काले और भूरे के द्वारा ट्रक की दुर्घटना में बछड़े को बचाने की भरकस कोशिश भी करता है। जिससे भूतदया दृष्टिगोचर होती है। तड़पते हुए बछड़े के प्रति वेदना साफ झलकती है। यह मानवीयता और इंसानियतता के दर्शन कराती है।

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई और दलितों की सारी समस्याओं और दुर्दशा की जड़है। जाति का दंश उसको कदम कदम पर सहना पड़ता यहजातिवादी प्रवृत्ति कई रूपों में उसे अपना रंग दिखाती है। शहरों में, गांव में बसे दलितों ने अपनी जाति को छुपा कर अच्छे मोहल्ले में रहना,सवर्णों से संबंध स्थापित करना,यहां तक कि रोटी बेटी का व्यवहार करनाउसने अपनी प्रतिष्ठा मान लिया है। सामाजिक परंपरा के बदलते प्रतिमान ने ओमप्रकाश की 'अंधड़' कहानी है। जिसमें जातिवादी हीन भावना का विशेष चित्रण किया गया है। कहानी का नायक मिस्टर लाल अपनी जाति को छुपाकर उच्च वर्गीय लोगों में अपना घर बनाता है। और सम्मान के साथ जीवन जीता है।

जातीय संस्कार समाज में इतने गहरे हैं कि वह अपने परिजनों को भी स्वीकार नहीं कर पाता। मिस्टर लाल को यह डर है कि, कभी-कभार कोई पूर्व परिचित भूल से भी मिल जाए, तो वह उन्हें हटाने की कोशिश करता। यदि मिलने वाला कोई पूर्व सहकर्मी एस.सी. हुआ; तो मिस्टर लाल ऐसे विषयों पर बात करने से कतराते थे। जिसमें इससे संबंधित कोई चर्चा हो। वह बेहद कटुता पूर्ण शब्दों में कहते थे.. "वे अपनी हालत के जिम्मेदार स्वयम हैं। दोष दूसरे को देते हैं। सरकार ने आरक्षण की बैसाखी देकर उन्हें और भी निकम्मा बना दिया है। हमसे तो कोई भेदभाव नहीं रखता। सब के साथ घुल मिलकर रहते हैं। दस लोग इज्जत भी करते हैं। 7

एक तरफ जहां समाज में दलितों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। तथा उनके शोषण करने की प्रवृत्ति है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दलितों का इस्तेमाल बखूबी किया जाता है। और सबसे उल्लेखनीय बात यह है, कि सामान्य व्यवहार में जिन दलित व्यक्ति के साथ अछूत की भावना बढ़ती जाती है। स्वार्थ सिद्धि के मौके पर अस्पृश्यता को भूला जाता है। दक्षिण महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत के मंदिरों में देवदासी प्रथा के नाम पर पुजारियों द्वारा तथा सामान्य जीवन में अन्य लोगों द्वारा दलित स्त्रियों के साथ किए जाने वाले बलात्कार इसी मानसिकता के ज्वलंत उदाहरण है। इसी आधार पर दूसरा यह पक्ष है कि बहुत सी सवर्ण स्त्रियां अपनी वासना की पूर्ति अथवा संतान प्राप्ति की इच्छा से दलित पुरुषों के साथ स्वेच्छा से सहवास करती है। अगर वे सहजता से यह कार्य करने को तैयार नहीं हो; तो उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन या कभी-कभी दबाव डालकर अपना स्वार्थ पूरा करने को तैयार करती हैं। इस विषय पर ओमप्रकाश वाल्मीकि की'ग्रहण' और ' विरम की बहू ' यह दो कहानियां उल्लेखनीय है।

'ग्रहण' कहानी में बिरम पाल की पत्नी अपने पति की अक्षमता के कारण संतान सुख से वंचित है। वह अपने पर लगे बांझपन के दाग को मिटाना चाहती है। वह बेटा चाहती है। और अपनी इस अभिलाषा को पूरा करने के लिए वह दलित युवक रमेसर से संभोग करने के लिए लालायित है। पर रमेसर को तो ग्रहण के सिलसिले में अनाज चाहिए था। वह कहता है," बहु जी अनाज मांगने आया हूं। घर में अनाज का एक दाना भी नहीं....बापू बीमार है....रमेसर की आवास का कंपन धीरे धीरे अंधेरी कोठरी में नदी की लहरों से साए-साए बज रहा था। बहू ने अपना सिर रमेसर की छाती से सटाते हुए फुसफुसा कर कहा, "अनाज की चिंता ना करो, बस एक बार...मुझे एक बेटा चाहिए। उसके बदले में जो कहोगे दूंगी। कुछ मत कहो.... कोई भी जान नहीं पाएगा.... मुझ पर दया करो। 8

चंद्र ग्रहण की रात को रमेसर से वह सहवास करती है और बदले में गेहूं का एक कट्टा ले जाने के लिए कहती है। इस कहानी में संतान सुख के लिए सवर्ण बिरामपाल चौधराईन एक भंगी दलित रमेसर से अपने स्वार्थ के लिए संभोग करवाती है। उस क्षण जात-पात, ऊंच-नीच के तमाम भेदभाव भूले जाते हैं। वाल्मीकि ने इस कहानी का अगला हिस्सा 'वीरम की बहू' इस कहानी में चित्रित किया है। चंद्र ग्रहण के दिन भंगी युवक रमेसर से बीरमपाल की बहू चौधराईन अपने स्वार्थ वश सहवास करती है। और गर्भवती हो जाती है। लेकिन अपने बच्चे के असली बाप, इस भंगी युवक रमेसर को कभी मिलती नहीं, कभी उसकी तरफ नहीं देखती। जैसे वह उसे पहचानती ही नहीं है। 'वीरम की बहू' कहानी दलित संघर्ष को व्यक्त करती है।

बाप की बीमारी के कारण इसकी पढ़ाई छूट गई थी। ऊपर से घर की जिम्मेदारी आ पड़ी थी। दिन भर की हार-तोड़ मेहनत के बाद,जो कुछ मिलता था, बहुत कम मिलता था। ऊपर से बेगार करनी पड़ती थी। जिसका कोई तर्क, कोई क़ानून, कोई भावना, इसे रोक नहीं पा रहा थी। सारी बस्ती का यही हाल था, बेगार के बदले में उन्हें मिलती थी प्रताड़ना, लांछन, गाली और अपशब्द जैसे यह लोग आदमी नहीं; मात्र इस्तेमाल की वस्तु हो। जब चाहा इस्तेमाल किया टूट फूट गई तो उठा कर फेंक दिया। कहीं कोई सहानुभूति नहीं संवेदना नहीं।,"9

ओमप्रकाश की चर्चित कहानियों में 'मुंबई कांड' एक प्रमुख कहानी है। इस कहानी में राजनीति से परहेज रखने वाला सुमेर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में बेचैनी और हलचल महसूस करता है। मुंबई में दलितों पर हुए जुल्म और अत्याचारों का विरोध करने के लिए वह किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की मूर्ति को अपमानित करने का इरादा बनाता है। लेकिन जैसे ही वह गांधी जी की मूर्ति पर जूतों का हार पहनना चाहता है, तो उसके अंतस में मानवता जाग उठती है। जहां 'बाबासाहब' कहने वाले मारे गए। फिर 'बापू वाले' मारे जाएंगे। इससे बाबा कहने वाले पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे। क्योंकि यह रास्ता न बुद्ध का है; और नहीं अंबेडकर का। एक गुनाह का बदला दूसरा गुनाह से नहीं लिया जा सकता। डॉ आंबेडकर में उनका विश्वास और ज्यादा गहरा हो गया था।

इस तरह ओमप्रकाशवाल्मीकिने प्रतिशोध की भावना का तिरोभाव करके मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है, "डॉ. अंबेडकर का जीवन दर्शन उन्हें मानवतावाद की प्रेरणा देता है। इसलिए दलित साहित्य मानवतावादी साहित्य है।11

अत: उनकी कहानियों में जहां वर्चस्व की सत्ता को चुनौती दी है, वहीं दूसरी ओर दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित, जाति समूहों कोआवाज़ देकर उनके आसपास फैली हुई विसंगतियों पर भी चोट करती हैं। जो दलित विमर्श को सार्थक और गुणात्मक बनाता है; क्योंकि दलित साहित्य और चेतना का। उनकी कहानियों में दलित चेतना मानवीय धरातल पर प्रकट होती है। साथ-साथ उसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुभाव की मानवीय संकल्पना भी दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ:

1. सलाम- ओमप्रकाश वाल्मीकि- मलपृष्ठ से
2. दलित समाज का समाजशास्त्र- हरी नारायण ठाकुर- पृष्ठ 442
3. सलाम- ओमप्रकाश वाल्मीकि- पृष्ठ-13
4. वहीं- पृष्ठ – 30,
5. वही पृ.15
6. वही– 35
7. वही पृ.87
8. वही पृ.70
9. वही– पृ.69
10. दलित चेतना साहित्यिक और सामाजिक सरोकार– गुप्ता पृ.68
11. दलित विमर्श– वीरेंद्र सिंह यादव पृ.250
12. दूसरी दुनिया का यथार्थ– रमणिका गुप्ता पृ.6

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी आत्मकथनों में अभिव्यक्त संवैधानिक चेतना एवं जीवन संघर्ष

सहा. प्रा. किशोर भबूत सोनवणे

हिंदी विभाग. प्रताप महाविद्यालय अमळनेर

साहित्य समाज का दर्पण होता है । किसी भी साहित्य निर्माण का बीज जीवन के वास्तव मे होता है। जीवनानुभव से जिस साहित्य के निर्मिती लेखक करता है, उन सामाजिक तत्त्वों को सूक्ष्मदृष्टी से देखता है। परिणाम स्वरूप जीवन की स्थिती एवं गती का प्रतिबिंब साहित्य में प्रतिबिंबित होता है।

आत्मकथाए समाज का इतिहास रचति है, आंबेडकरवादी आत्मकथन यह मूल में दलित साहित्य कृतियाँ है।जो शोषित गरीब श्रमजीवी है उन्हे दलित कह सकते है। तर्कतिर्थ लक्ष्मण शास्त्री कहते है कि मानवि प्रगती में सबसे पिछडा शोषित जो सामाजिक वर्ग है वह है दलित । सामान्यतः आंबेडकरवादी साहित्य का प्रारंभ मुंबई में आयोजित पहला दलित साहित्य सम्मेलन (1958) द्वारा हुआ। दलित साहित्य को स्वतंत्र विभाग मानने की दृष्टि से उपरोक्त साहित्य सम्मेलन महत्वपूर्ण था। 1950 तक दलित लेखकों ने डॉ. बी. आर. आंबेडकर की विचारधारा जो समस्त मानव के प्रति समता, बंधुता,न्याय, और समानतावादी थी, उस विचारधारा को अपनी रचनाओं में अधिकतम महत्व दिया।1950 के बाद के आत्मकथनों में पूर्णतः आंबेडकर की विचारधारा का प्रभाव दिखायी देता है, इसलिए 1950 के बाद के दलित आत्मकथन एवं अन्य कोई दलित साहित्यिक विधाओं को दलित साहित्य न कहकर आंबेडकरवादी साहित्य कहना उचित होगा।

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ हिंदी साहित्य में वंचित और हाशियें पर पड़े समुदायों के जीवनानुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इनमें लेखक का निजी जीवन- संघर्ष सामूहिक आंबेडकरवादी चेतना का प्रतिनिधी बन जाता है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाओं में वर्णित सामाजिक आर्थिक शैक्षिक और मानसिक संघर्षो का विश्लेषण किया गया है तथा यह स्पष्ट किया गया है कि ये आत्मकथाएँ केवल पीड़ा- कथाएँ नहीं बल्कि प्रतिरोध, आत्मसन्मान और संवैधानिक मूल्यों की स्थापना का साहित्यिक माध्यम हैं। हिंदी साहित्य में आंबेडकरवादी आत्मकथा का उदय उत्तर आधुनिक काल में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में हुआ। यह साहित्य उस सामाजिक यथार्थ को सामने लाता है जिसे मुख्य धारा का साहित्य लंबे समय तक अनदेखा करता रहा।आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ लेखक के निजी अनुभवों के माध्यम से जातिगत उत्पीड़न, सामाजिक बहिष्कार और संघर्षपूर्ण जीवन स्थितियों का दस्तावेज प्रस्तृत करती है।

आंबेडकरवादी लेखक संवैधानिक चेतना और परिवर्तन की आंकाक्षा पाठकों के सामने प्रस्तृत करता है।

सामाजिक भेदभाव और जातिगत उत्पीड़न-आंबेडकरवादी आत्मकथाओंमें जन्म से ही जाति के आधारपर किए गए भेदभाव का वर्णन मिलता है। अस्पृष्यता, अलग बस्तियाँ, मंदिर -प्रवेश व जल- स्त्रोतों पर प्रतिबंध जैसे अनुभव लेखक के बचपन से जुड़े होते है। यह संघर्ष केवल बाहरी समाज से नहीं बल्कि मानसिक गुलामी से भी जुड़े होते है।

शिक्षा के लिए संघर्ष - शिक्षा को मुक्ति का साधन माना गया है किन्तु इसे पाने का मार्ग अत्यंत कठीण रहा है। स्कूलों में अपमान, भेदभावपूर्ण व्यवहार, आर्थिक अभाव और सामाजिक दबाव- ये सभी संघर्ष आत्मकथाओं में तीव्रता से उभरते है। फिर भी शिक्षा आंबेडकरवादी चेतना को जाग्रत करने का माध्यम बनती है।

आर्थिक शोषण और श्रम की पीड़ा - आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ श्रमजिवी जीवन की कठोर सच्चाईयों को सामने लाती है। कम मजदूरी, असुरक्षित काम, बंधुआपन और पीढ़ीगत गरिबी।लेखक अपने माता -पिता के श्रम और स्वंय के संघर्षों के माध्यम से आर्थिक अन्याय को उजागर करता है।

आत्मसन्मान और अस्मिता का संघर्ष - इन आत्मकथनों में केवल पीड़ा का आख्यान नहीं बल्कि आत्मसन्मान की खोज भी है। अपमान के विरुद्ध प्रतिरोध, पहचान की पुनर्स्थापना और 'मनुष्य' के रूप में स्वीकार्यता की आकांक्षा केंद्रीय विषय बनती है।

हिंदी आंबेडकरवादी अस्मिता- मूलक साहित्य की प्रमुख विशेताए:

अस्मिता और आत्मबोध - यह साहित्य समाज की पहचान, स्वाभिमान और आत्मसम्मान की चेतना को केंद्र में रखता है। इसमें मैं कौन हूँ का प्रश्न प्रमुख है।

अनुभव की प्रामाणिकता, आंबेडकरवादी जीवन के भोगे हुए यथार्थ—छुआछूत, अपमान, गरीबी, बहिष्कार—को लेखक अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर अभिव्यक्त करता है।

शोषण और अन्याय का विरोध- जातिगत भेदभाव, सामाजिक-आर्थिक शोषण और सत्ता संरचनाओं के खिलाफ तीखा प्रतिरोध इसका मूल स्वर है।

संघर्ष और प्रतिरोध चेतना- यह साहित्य केवल पीड़ा का बयान नहीं, बल्कि संघर्ष, विद्रोह और परिवर्तन की आकांक्षा को भी प्रकट करता है।

आंबेडकर विचारधारा का प्रभाव- समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों की स्पष्ट उपस्थिति रहती है।

यथार्थवादी और तीखी भाषा- अलंकारिक सौंदर्य से अधिक सच्चाई की कठोर अभिव्यक्ति पर बल; भाषा सीधी, सहज और कभी-कभी आक्रामक होती है।

सामूहिक पीडा की अभिव्यक्ती- व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभव बन जाता है—'मैं' से 'हम' तक की यात्रा दिखाई देती है।

मुख्यधारा साहित्य की आलोचना- पारंपरिक/सवर्ण दृष्टिकोण वाले साहित्यिक मूल्यों और इतिहास लेखन पर प्रश्न उठाए जाते हैं।

नए नायक और पात्र- दलित जीवन से जुड़े साधारण लोग—मजदूर, स्त्री, किसान, छात्र—नायक के रूप में उभरते हैं।

परिवर्तनकामी दृष्टी- अंतिम लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन, मानवीय गरिमा और समतामूलक समाज की स्थापना है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाओ के प्रमुख विषय:

शिक्षा संबंधित- शिक्षा को मुक्ति का माध्यम माना गया है, किंतु विद्यालयों में होने वाले भेदभाव का भी यथार्थ चित्रण मिलता है।

आर्थिक शोषण और गरिबी- भूमिहीनता, मजदूरी, बेरोज़गारी और अभावग्रस्त जीवन की सच्ची तस्वीर।

स्त्रीयों का आंबेडकरवादी -अनुभव आंबेडकरवादी स्त्रियों की आत्मकथाओं में जाति के साथ-साथ लैंगिक शोषण की दोहरी पीड़ा उभरकर आती है।

धर्म और परंपरा का विरोध- शोषणकारी धार्मिक आडंबरों और परंपराओं पर तीखा प्रहार।

संवैधानिक चेतना- समान अधिकार, आरक्षण, सामाजिक न्याय और कानून के प्रति जागरूकता।

हिंदी आत्मकथनो के प्रमुख उदाहरण :

“मुर्दहिया” - ओम प्रकाश वाल्मिकी : आंबेडकरवादी चेतना, आत्मसम्मान और परिवर्तन की आकांक्षा को व्यक्त करता है।

इस आत्मकथा में धार्मिक पाखंड, सामाजिक ढोंग और ऊँची जातियों की अमानवीय सोच की तीखी आलोचना की गई है। ‘मुर्दहिया’ का आशय उस स्थान से है जहाँ मृत पशु फेंके जाते हैं—जो आंबेडकरवादी जीवन की हीन समझी जाने वाली सामाजिक स्थिति का प्रतीक बन जाता है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ केवल व्यक्तिगत जीवन-वृत्त नहीं हैं, बल्कि भारतीय संविधान में निहित मूल्यों—स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुत्व—की जीवंत अभिव्यक्ति भी हैं। इनमें आंबेडकरवादी समाज के ऐतिहासिक शोषण, संघर्ष और आत्मसम्मान की चेतना संवैधानिक दृष्टि से उभरकर आती है।

‘जूठन’ - ओमप्रकाश वाल्मीकि : सारांश

‘जूठन’ हिंदी की चर्चित आंबेडकरवादी आत्मकथा है, जिसमें लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, छुआछूत और अमानवीय व्यवहार को अत्यंत सजीव और मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है।

यह आत्मकथा लेखक के बचपन से आरंभ होती है, जहाँ उन्हें एक आंबेडकरवादी होने के कारण विद्यालय, समाज और कार्यस्थल पर अपमान, उपेक्षा और शोषण सहना पड़ता है। ‘जूठन’ शब्द स्वयं उस अपमानजनक

स्थिति का प्रतीक है, जब आंबेडकरवादी को उच्च जातियों के बचे-खुचे भोजन (जूठन) पर निर्भर रहना पड़ता था।

कृति में गाँव की सामाजिक संरचना, जाति-आधारित श्रम विभाजन, शिक्षा में भेदभाव और आर्थिक असमानता का यथार्थ चित्रण है। वाल्मीकि बताते हैं कि किस प्रकार शिक्षा को उन्होंने अपने संघर्ष का हथियार बनाया और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध चेतना विकसित की। आत्मकथा में आंबेडकरवादी समाज की पीड़ा के साथ-साथ उसके भीतर पनप रही प्रतिरोध की भावना भी स्पष्ट रूप से उभरकर आती है।

'जूठन' केवल एक व्यक्ति की जीवनकथा नहीं है, बल्कि यह पूरे आंबेडकरवादी समाज के संघर्ष, अपमान और आत्मसम्मान की खोज की कथा है। यह रचना आंबेडकरवादी चेतना, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को केंद्र में रखकर हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान करती है।

"अपने अपने पिंजरे" – मोहनदास नेमिशराय

"अपने-अपने पिंजरे" मोहनदास नैमिशराय की एक महत्त्वपूर्ण आत्मकथात्मक रचना है, जिसमें आंबेडकरवादी समाज के जीवन-यथार्थ, सामाजिक भेदभाव और मानसिक-सामाजिक कैद को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है। रचना का शीर्षक ही इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के 'पिंजरे' में बंद है।

इस कृति में लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से बताता है कि जातिगत व्यवस्था आंबेडकरवादी व्यक्ति को जन्म से ही अपमान, उपेक्षा और असमानता के पिंजरे में कैद कर देती है। शिक्षा, रोजगार और सामाजिक व्यवहार—हर क्षेत्र में उसे हीनता का सामना करना पड़ता है। आंबेडकरवादी होने के कारण लेखक को बार-बार यह एहसास कराया जाता है कि समाज उसे बराबरी का अधिकार देने को तैयार नहीं है।

रचना यह भी स्पष्ट करती है कि केवल आंबेडकरवादी ही नहीं, बल्कि सवर्ण, मध्यवर्ग और तथाकथित प्रगतिशील लोग भी अपने-अपने मानसिक, सामाजिक और वैचारिक पिंजरों में कैद हैं। कोई जाति के अहंकार में बंद है, तो कोई रूढ़ियों, डर और स्वार्थ के पिंजरे में। इस प्रकार समाज में वास्तविक स्वतंत्रता का अभाव दिखाई देता है।

"अपने-अपने पिंजरे" का केंद्रीय संदेश यह है कि जब तक मनुष्य अपने पूर्वाग्रहों, जातिगत सोच और संकीर्ण मानसिकता से मुक्त नहीं होगा, तब तक सामाजिक समानता और मानव गरिमा की स्थापना संभव नहीं है। यह रचना आंबेडकरवादी चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन की सशक्त अभिव्यक्ति है।

"तिरस्कृत"- सुरज चव्हाण :

कृति में लेखक अपने तथा अपने समुदाय के अनुभवों के माध्यम से यह दिखाता है कि जाति-आधारित व्यवस्था आंबेडकरवादीयों को जन्म से ही हाशिए पर धकेल देती है। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक मेल-जोल और

सार्वजनिक जीवन—हर क्षेत्र में उन्हें अपमान और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। 'तिरस्कृत' शब्द यहाँ केवल सामाजिक अस्वीकार नहीं, बल्कि मानसिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उपेक्षा का प्रतीक है।

लेखक यह भी रेखांकित करता है कि आंबेडकरवादी समाज निरंतर संघर्ष के बावजूद अपने आत्मसम्मान और अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करता है। अत्याचार, गरीबी और असमानता के बीच भी चेतना, प्रतिरोध और बदलाव की आकांक्षा जन्म लेती है। शिक्षा और जागरूकता को लेखक मुक्ति के साधन के रूप में देखता है।

"तिरस्कृत" का मूल संदेश यह है कि जब तक समाज जातिगत भेदभाव और ऊँच-नीच की मानसिकता से मुक्त नहीं होगा, तब तक सच्ची सामाजिक समानता संभव नहीं है। यह रचना आंबेडकरवादी चेतना, प्रतिरोध और मानवाधिकार की सशक्त अभिव्यक्ति है।

" मेरे जीवन के अनुभव "- कौशल्या बैसंत्री

"मेरे जीवन के अनुभव" कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथात्मक रचना है, जिसमें एक आंबेडकरवादी स्त्री के जीवन-संघर्ष, सामाजिक अपमान और आत्मसम्मान की लड़ाई को अत्यंत सच्चाई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह कृति आंबेडकरवादी स्त्री की दोहरी पीड़ा—जातिगत भेदभाव और लैंगिक उत्पीड़न—को उजागर करती है।

रचना में लेखिका अपने बचपन से लेकर वयस्क जीवन तक के अनुभवों को वर्णित करती हैं। शिक्षा से वंचित रखा जाना, गरीबी, घरेलू जिम्मेदारियाँ और समाज द्वारा निरंतर तिरस्कार—ये सभी उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं। आंबेडकरवादी होने के कारण उन्हें सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में अपमान का सामना करना पड़ता है।

कौशल्या बैसंत्री यह स्पष्ट करती हैं कि आंबेडकरवादी स्त्री केवल जाति के आधार पर ही नहीं, बल्कि स्त्री होने के कारण भी शोषित होती है। परिवार, समाज और परंपरागत सोच उसके आत्मविकास में बाधा बनती है। फिर भी लेखिका संघर्ष, साहस और आत्मबल के माध्यम से अपने अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

इस आत्मकथा का केंद्रीय संदेश यह है कि अनुभवों की सच्ची अभिव्यक्ति ही परिवर्तन का आधार बन सकती है। "मेरे जीवन के अनुभव" द आंबेडकरवादी स्त्री चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की सशक्त आवाज है, जो पाठक को संवेदनशील और विचारशील बनने के लिए प्रेरित करती है।

"दोहरा अभिशाप"- कौशल्या बैसंत्री :

कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" आंबेडकरवादी स्त्री जीवन की पीड़ा, संघर्ष और चेतना का सशक्त दस्तावेज़ है। इस रचना में लेखिका ने अपने जीवन अनुभवों के माध्यम से उस दोहरे शोषण को उजागर किया है, जिसका सामना एक आंबेडकरवादी होने के साथ-साथ स्त्री होने के कारण करना पड़ता है—इसी कारण इसका नाम दोहरा अभिशाप है।

आत्मकथा में लेखिका बचपन से लेकर वयस्क जीवन तक के अनुभवों का वर्णन करती हैं। समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, छुआछूत, आर्थिक अभाव और अपमानजनक व्यवहार उनके जीवन का स्थायी यथार्थ रहा है। इसके साथ ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री होने के कारण उन्हें घर और समाज—दोनों स्तरों पर दमन सहना पड़ता है।

कौशल्या बैसंत्री शिक्षा को मुक्ति का साधन मानती हैं। अनेक बाधाओं के बावजूद शिक्षा प्राप्त कर वे सामाजिक चेतना की ओर अग्रसर होती हैं। डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे उनमें आत्मसम्मान, समानता और अधिकारों के प्रति जागरूकता आती है।

यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत पीड़ा की कथा नहीं, बल्कि आंबेडकरवादी स्त्री समाज के सामूहिक संघर्ष की अभिव्यक्ति है। "दोहरा अभिशाप" आंबेडकरवादी नारी विमर्श को नई दिशा देती है और यह स्पष्ट करती है कि सामाजिक मुक्ति बिना स्त्री मुक्ति के संभव नहीं है।

"अक्करमाशी"- (हिंदी अनुवाद) शरण कुमार लिंबाळे

'अक्करमाशी' मराठी आंबेडकरवादी आत्मकथा के रूप में शरणकुमार लिंबाळे की अत्यंत चर्चित रचना है, जिसका हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है। यह आत्मकथा लेखक के व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों के माध्यम से आंबेडकरवादी समाज की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।

इस आत्मकथा में लिंबाळे अपने बचपन की दयनीय परिस्थितियों, जातिगत अपमान, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक अभावों का यथार्थ चित्रण करते हैं। वे बताते हैं कि किस प्रकार अस्पृश्यता और जाति व्यवस्था ने उनके जीवन को लगातार अपमान और संघर्ष से भर दिया। शिक्षा प्राप्त करने की कठिन राह, भूख, गरीबी और असुरक्षा उनके जीवन का स्थायी सत्य बनकर सामने आती है।

'अक्करमाशी' केवल व्यक्तिगत कथा नहीं है, बल्कि यह आंबेडकरवादी समाज की सामूहिक पीड़ा और चेतना की अभिव्यक्ति है। लेखक आत्मकथा के माध्यम से यह प्रश्न उठाते हैं कि समाज में जन्म के आधार पर मनुष्य की पहचान और मूल्यांकन क्यों किया जाता है। रचना में आंबेडकरवादी चेतना, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की भावना स्पष्ट रूप से उभरकर आती है।

हिंदी अनुवाद में भी मूल मराठी रचना की संवेदनशीलता और विद्रोही स्वर सुरक्षित है। 'अक्करमाशी' आंबेडकरवादी साहित्य में आत्मकथा विधा को सशक्त बनाने वाली कृति है, जो सामाजिक असमानता, शोषण और मानव गरिमा के प्रश्नों को केंद्र में रखती है। यह रचना पाठक को संवेदनशील बनाती है और सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता की ओर संकेत करती है।

"उखडे हुए लोग"- (हिंदी अनुवाद) लक्ष्मण माने :

उखड़े हुए लोग लक्ष्मण माने की प्रसिद्ध आत्मकथात्मक रचना है, जिसमें घुमंतू और हाशिए पर धकेले गए समुदायों के जीवन-संघर्ष का यथार्थ चित्रण मिलता है। लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से उस समाज की पीड़ा, असुरक्षा और निरंतर विस्थापन को सामने लाते हैं, जो मुख्यधारा से "उखड़ा हुआ" है।

कृति में गरीबी, भूख, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव और सामाजिक तिरस्कार की कठोर सच्चाइयाँ उभरकर आती हैं। घुमंतू जातियों का जीवन स्थायित्व से वंचित है—न स्थायी घर, न सम्मानजनक आजीविका और न ही शिक्षा की पर्याप्त सुविधा। प्रशासन और समाज दोनों स्तरों पर इनके साथ उपेक्षा और अन्याय होता है।

लक्ष्मण माने शिक्षा को मुक्ति का मार्ग मानते हैं। अनेक बाधाओं के बावजूद लेखक का संघर्ष, आत्मसम्मान और आगे बढ़ने की जिजीविषा प्रेरक है। यह कृति केवल व्यक्तिगत कथा नहीं, बल्कि पूरे वंचित समुदाय की सामूहिक आवाज़ है, जो सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की माँग करती है।

आबेडकरवादी साहित्य में संवैधानिक चेतना:

1. समानता का मूल्य :

संविधान का अनुच्छेद 14 समानता का अधिकार देता है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाओं में जातिगत भेदभाव, छुआछूत और सामाजिक असमानता के अनुभवों का वर्णन मिलता है, जो समानता के संवैधानिक आदर्श की माँग को रेखांकित करता है।

उदाहरण: ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'मुर्दहिया'—विद्यालय और समाज में असमान व्यवहार।

2. स्वतंत्रता का मूल्य :

संविधान व्यक्ति की वैचारिक, सामाजिक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ भय, मौन और दासता से मुक्ति की कथा हैं—जहाँ लेखक अपने अनुभव निर्भीकता से दर्ज करता है।

उदाहरण: शरणकुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी'—आत्मसम्मान और वैचारिक स्वतंत्रता की खोज।

3. सामाजिक न्याय :

संविधान का मूल उद्देश्य सामाजिक न्याय है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ शोषणकारी सामाजिक संरचना के विरुद्ध प्रतिरोध का साहित्य हैं और आरक्षण, शिक्षा तथा अधिकारों की आवश्यकता को वैध ठहराती हैं।

उदाहरण: लक्ष्मण माने की आत्मकथाएँ—शिक्षा को सामाजिक न्याय का साधन मानती हैं।

4. मानवीय गरिमा :

संविधान प्रत्येक नागरिक को गरिमामय जीवन का अधिकार देता है।

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ अपमान, अपवंचना और अमानवीय व्यवहार के अनुभवों को उजागर कर गरिमा की पुनर्स्थापना की माँग करती हैं।

5. बंधुत्व और सामाजिक समरसता :

संविधान सामाजिक सौहार्द और बंधुत्व की भावना पर बल देता है।

आत्मकथाओं में जाति-विहीन समाज, मानवीय संबंध और समता आधारित सहअस्तित्व की आकांक्षा व्यक्त होती है।

6. डॉ. आंबेडकर की संवैधानिक चेतना :

आंबेडकरवादी आत्मकथाओं पर डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव है—

शिक्षा

संगठन

संघर्ष

ये तीनों तत्व संवैधानिक मूल्यों को व्यवहार में उतारने की प्रेरणा देते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आंबेडकर वादी आत्मकथाएँ हिंदी साहित्य में केवल व्यक्तिगत जीवन-वृत्त नहीं हैं, बल्कि वे एक सामूहिक सामाजिक अनुभव, ऐतिहासिक साक्ष्य और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। इन आत्मकथाओं में आंबेडकरवादी समाज के सदियों से चले आ रहे शोषण, अपमान, अस्पृश्यता, गरीबी और संघर्ष की यथार्थ तस्वीर सामने आती है। लेखक अपने निजी जीवन के अनुभवों के माध्यम से पूरे आंबेडकरवादी समाज की पीड़ा, आकांक्षाओं और चेतना को स्वर देते हैं।

आंबेडकरवादी आत्मकथाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सत्यनिष्ठा और अनुभूतिपरकता है। इनमें कल्पना का नहीं, बल्कि भोगे हुए यथार्थ का चित्रण मिलता है। ये रचनाएँ सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रश्न खड़े करती हैं और जाति-व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करती हैं। साथ ही, इनमें संवैधानिक मूल्यों, विशेषकर समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, जो डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों से प्रेरित है।

अतः आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। ये रचनाएँ आंबेडकरवादी अस्मिता के निर्माण, आत्मसम्मान की स्थापना और एक न्यायपूर्ण समाज की दिशा में चेतना जागृत करने का कार्य करती हैं। इसी कारण आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में एक सशक्त और अनिवार्य विधा के रूप में स्थापित हुई

आंबेडकरवादी आत्मकथाएँ संविधान के आदर्शों की साहित्यिक साक्ष्य हैं। ये न केवल शोषण की कथा कहती हैं, बल्कि संवैधानिक मूल्यों को सामाजिक यथार्थ में स्थापित करने का संघर्ष भी प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से आंबेडकरवादी आत्मकथा-साहित्य भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को समझने का सशक्त माध्यम है।

संदर्भसूची :

क) प्रमुख आंबेडकरवादी आत्मकथाए:

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. मुर्दहिया. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. लिम्बाले, शरणकुमार. अक्कर माशी (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
4. माने, लक्ष्मण. उखड़े हुए लोग (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
5. बैसंत्री, कौशल्या. दोहरा अभिशाप. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
6. राय, मोहनदास. अपने-अपने पिंजरे. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
7. चव्हाण, सूरजपाल. तिरस्कृत. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
8. बैसंत्री, कौशल्या. मेरे जीवन के अनुभव. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

ख) डॉ. भीमराव आंबेडकर के ग्रंथ (संवैधानिक चेतना हेतू):

9. आंबेडकर, डॉ. भीमराव. भारत का संविधान. नई दिल्ली: भारत सरकार।
10. आंबेडकर, डॉ. भीमराव. जाति का विनाश। नई दिल्ली: बुद्ध भूमि प्रकाशन।
11. आंबेडकर, डॉ. भीमराव. शूद्र कौन थे? मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

राहत इन्दौरी की शायरी में आज़ाद भारत ('धूप बहुत है' के विशेष संदर्भ में)

-डॉ. इबरार खान

(असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष)

हिंदी विभाग, मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज, व्हाइट हाउस कम्पाउन्ड, गया- 823001, बिहार

हिंदी और उर्दू आपस में बहने हैं। जिस तरह से दो बहनों की अपनी कुछ अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं वैसे ही इन दोनों भाषाओं की अपनी विशेषता , अपना साहित्य है। इनकी विशेषता और साहित्य में साझापन भी है। कई ऐसे साहित्यकार हुए हैं जिनका दोनों भाषाओं में सम्मान के साथ नाम लिया जाता है इनमें प्रेमचंद, फिराक गोरखपुरी, राहत इन्दौरी आदि हैं। राहत इन्दौरी ने अपने शेरों में ऐसी बातें कह डाली हैं की दिल सोचने पर विवश हो जाता है। उनकी शायरी के कई रंग हैं। कहीं धूप है तो कहीं छाँव है। उनकी शायरी में हिंदुस्तान है, हिन्दुस्तानी अवाम है, हिन्दुस्तानियत है।

यहाँ हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि शेर क्या है? ग़ज़ल क्या है? ग़ज़ल और शेर के संबंध में विभिन्न आलोचकों ने अपने विचार रखे हैं। लेकिन राहत इन्दौरी ग़ज़ल को दिल को सौदा मानते थे। डॉ. प्रवीण शुक्ल लिखते हैं "राहत इन्दौरी का मानना है कि सदियों में कोई एक बड़ा शायर ग़ज़ल के खाते में अपना नाम बेहतर तरीके से दर्ज करवाता है। ग़ज़ल दिल का सौदा है, इसे लिखते समय दिमाग शामिल नहीं होना चाहिए।"[1] ग़ज़ल को भले ही आशिक-माशूका तक ही सीमित समझा जाए लेकिन ग़ज़ल में समाज, संसार भी दिखाई देता है। पुराने अर्थ में देखें तो ग़ज़ल का मतलब था 'औरत से या औरत के संबंध में बातें करना' लेकिन अब यह अर्थ बहुत पुराना हो चुका है।

यदि हम ग़ज़ल के विषय में विचार करें तो प्रोफेसर सैयद एहतेशाम हुसैन लिखते हैं "यह अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'स्त्री से बातें करना' या 'शिकारियों में घिरे हुए हिरण की करुणाजनक चीखें' पर ग़ज़ल इसी में सीमित नहीं है। शृंगार रस और प्रेम भावों के अतिरिक इसमें तसौव्वुफ, दर्शनशास्त्र, देशभक्ति, नैतिक सिद्धांत, राजनीति इत्यादि के विचार भी सरल, भावपूर्ण, सरस और मीठे शब्दों में प्रस्तुत किये जाते हैं।"[2] ग़ज़ल के बाह्य शेर पर विचार करें तो इसमें 5-11 शेर होते हैं। प्रत्येक शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। कई ग़ज़लें ऐसी भी रहती हैं जिसमें 21-22 शेर होते हैं। फिराक गोरखपुरी लिखते हैं "इसका बाह्य रूप यह होता है कि इसमें कम से कम पाँच शेर होते हैं। अधिकतम शेरों की कोई संख्या निश्चित नहीं है किन्तु साधरणतः इक्कीस बाईस शेरों से अधिक की ग़ज़लें नहीं देखी जातीं। औसत ग़ज़ल सात शेर से लेकर तेरह शेर तक की होती हैं।"[3] यहाँ शेर की चर्चा आ रही है। इसे आसानी से समझा जा सकता है। जिस तरह से दोहा होता है। उसी तरह से शेर भी दो पंक्तियों में लिखा जाता है। जिस तरह से दोहा अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है उसी तरह से शेर भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है।

जहाँ तक राहत इन्दौरी की शायरी की बात है तो उनका शेरों को पढ़ने का अपना तरीका था। शुरू में वे शेरों को तरन्नुम के साथ पढ़ते थे लेकिन बाद शेरों को पढ़ने की अपनी एक अलग शैली ही बना ली। उन्होंने अपने शेरों में हमेशा से आमजन की समस्याओं को आवाज देने की कोशिश की। जब हमारा मुल्क अंग्रेजों से लड़ाई लड़ रहा था। उस समय जो ख्वाब सबने देखे थे वे पूरे नहीं हुए। सवर्णों का अत्याचार दलितों पर आजादी के बाद भी जारी रहा। तभी तो उन्होंने कहा है-

"किसी गरीब दुपट्टे का कर्ज है उस पर

तुम्हारे पास जो रेशम की शाल है ठाकुर

दुआ को नन्हे गुलाबों ने हाथ उठाए हैं

बस अब यहीं से तुम्हारा ज़वाल है ठाकुर"[4]

यहाँ ज़वाल का अर्थ 'पतन' है। शोषक यदि अच्छे कपड़े पहनता है तो ये उसकी मेहनत नहीं उसने शोषण किया है। यह शोषण आज भी किसी न किसी रूप में जारी है। हिंदुस्तान की एक तस्वीर यह भी है। हमारा समाज किस तरह से बदल रहा है। ये किसी से छिपा नहीं है। छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में मोबाईल है। इसके लाभ और हानि दोनों हैं। गाँव और शहर के अंतर को उनके अगले शेर में देखा जा सकता है-

"कुछ दिनों शहर की हवा खा ले

सीख जाएगा सब हुनर तू भी "[5]

आज भारत में सांप्रदायिकता का जहर सरकारी मशीनरी से लेकर आम जनता तक फैलता जा रहा है। मॉब लिन्चिंग का नाम सबने सुना है। इससे कभी मुसलमान तो कभी किसी हिन्दू तो कभी किसी जैन साधु की जान चली जा रही है। कभी तो कोई हिन्दू इसलिए मार दिया गया कि उसने दाढ़ी रखी थी। उसे ऐसा समझा गया कि वह मुसलमान है। कोई त्योहार बिना वर्दी वालों के नहीं बीत पाता है। दंगे होना, दंगे करवाना उसका अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करना, चुनाव के समय बड़े बड़े पदों पर बैठे हुए लोगों का सांप्रदायिक बयान देना कोई नई बात नहीं है। ये सिर्फ और सिर्फ जनता के बीच जहर बोकर अपनी सरकार बनाने के लिए किया जाता है।

"चौराहों पर वर्दी वाले आ पहुंचे

मौसम फिर त्योहारों का है मौला खैर"[6]

किसी शहर में दंगा होने पर कर्फ्यू लग जाता है। इससे आम जन को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। उसमें सामाजिक समरसता खत्म होती है। नेता लोग मीठी-मीठी बातें करते हैं लेकिन वे समाज को एक नहीं रहने देना चाहते।

"जब जी चाहे मौत बिछा दो बस्ती में

लेकिन बातें प्यारी-प्यारी किया करो"[7]

इसके साथ-साथ यह शेर भी देखें। इसमें बड़ी ,मार्मिकता है।

"असलहे तो खैर फिर आ जाएंगे

कर्फ्यू में ढील होनी चाहिए"[8]

आज हम भले ही चाँद पर पहुँच जाएँ लेकिन यह भी सच ही है कि आज भी शहरों में फुटपाथ के किनारे रात लोग में सोते हुए नजर आते हैं। उनके सर पर छत तक मयस्सर नहीं होती।

"आसमां ओढ़ के सोए हैं खुले मैदाँ में

अपनी ये छत किसी दीवार की मोहताज नहीं"[9]

आज हमारे पड़ोसी देशों में जनता सरकार के खिलाफ सड़कों पर उतर जाती है। सिंहासन हिलने लगता है। भारत में भी जनता विभिन्न मुद्दों को लेकर सड़क पर उतरती है। जनता शासन-प्रशासन से बगावत कर बैठती है। वे लिखते हैं-

"महाबली से बगावत बहुत जरूरी थी

कदम ये हमने समझ सोचकर उठाया है"[10]

वर्तमान में पढ़ाई के साथ-साथ कारखानों को खोलने पर ज़ोर है। तमाम सरकारें शिक्षा पर खर्च करती हैं लेकिन यह भी सच है की व्यवसाय पर ज़ोर रहता है। तभी तो वे कहते हैं-

"यहाँ एक मदरसा होता था पहले

मगर अब कारखाना चल रहा है "[11]

शिक्षा को अब व्यवसाय के रूप में देखा जा रहा है। कई प्राइवेट संस्थाएँ शिक्षा के व्यावसायीकरण में लगी है। सरकार भी शिक्षा के निजीकरण पर ज़ोर देने में लगी है। आज महंगाई से सभी परेशान है। किसान, मजदूर, नौजवान सभी परेशान हैं। घर की हालत बहुत खराब है। यही वजह है कि राहत इन्दौरी अपने घर के हालात अपने घर से ही पूछते हैं-

"अपने दीवार ओ दर से पूछते हैं

घर के हालात घर से पूछते हैं"[12]

हिंदुस्तान में किसी न किसी बहाने मुसलमानों को परेशान करने का प्रयास सरकारों द्वारा किया जाता रहा है। उन्हें भारत का दोयम दर्जे का नागरिक समझने की भूल की जाती रही है। उन्हें सरकार और सरकारी तंत्र के जरिए ये अहसास कराया जाता है कि तुम देशभक्त नहीं हो। तुम इस मुल्क को अपना मुल्क नहीं समझते हो। तुम्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिए इत्यादि। इन सबके बावजूद मुसलमान अपनी इस मिट्टी से बेइंतहा मोहब्बत करता है। ये हमारा मादरे वतन (मातृभूमि) है। तभी वे कहते हैं-

"सारी दुनिया बुला रही है मगर

मुझसे हिंदुस्तान लिपटा है "[13]

उनकी ये पूरी की पूरी ग़ज़ल में भारत का चित्रण है। सत्ता भले ही खिलाफ हो लेकिन यदि जनता उनका सामना डटकर करे तो सरकार को झुकना पड़ता है। इसका प्रमाण 'कृषि कानून' है जिसे भारत के किसान भाइयों के भारी विरोध के बाद वापस लेना पड़ा था। अगर कोई ये सोचे की मुसलमानों को परेशान किया जा रहा है मुझे क्या पड़ी है? मैं तो हिन्दू हूँ। उन्हें भी राहत इन्दौरी समझाते हैं। हम इस बात को क्यों नहीं समझना चाहते कि पेट्रोल महंगा होगा तो सबके लिए महंगा होगा। रेल का किराया बढ़ेगा तो सबके लिए बढ़ेगा। इस बात को हमें अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। यदि किसी सरकार को ये लगता है कि वे हमेशा सत्ता में रहेंगे तो ये असत्य है। ये भारत हम सभी का है। इस मिट्टी पर सभी का बराबर का हक़ है। नीचे जो ग़ज़ल दी जा रही है उसमें समकालीन परिस्थितियों को साफ तौर पर देखा जा सकता है। इस ग़ज़ल को राहत इन्दौरी ने कई बार मंचों से पढा था और जनता ने खूब सराहा था।

"अगर खिलाफ हैं होने दो जान थोड़ी है

ये सब धुआँ है कोई आसमां थोड़ी है

लगेगी आग तो आएंगे घर कई जद में

यहाँ पे सिर्फ हमारा मकान थोड़ी है

मैं जानता हूँ दुश्मन भी कम नहीं लेकिन

हमारी तरह हथेली पे जान थोड़ी है

जो आज साहिब-ए-मसनद हैं कल नहीं होंगे

किरायेदार हैं, जाती मकान थोड़ी है

हमारे मुंह से जो निकले वही सदाकत है

हमारे मुंह में तुम्हारी ज़बान थोड़ी है

सभी का खून है शामिल यहाँ की मिट्टी में

किसी के बाप का हिंदोस्तान थोड़ी है"14

इस तरह से हम देखते हैं कि राहत इन्दौरी की शायरी में हिंदोस्तान और हिंदोस्तानियों की स्थिति का सटीक चित्रण है। सवर्णों द्वारा दलितों का शोषण, शहर की ज़िंदगी, पुलिस, त्योहार कर्फ्यू, गरीबों की ज़िंदगी शासन, सरकार का विरोध शिक्षा का व्यवसायीकरण घर की खराब हालतलत, हिंदोस्तान से सच्ची मोहब्बत इत्यादि का चित्रण है। राहत इन्दौरी को बार-बार पढ़ने से एक नया गवाक्ष खुलता है। इसलिए उनकी शायरी को समझने के उन्हें बार-बार पढे जाने की जरूरत है। उनकी शायरी को जितनी बार पढ़ा जाता है उतनी ही बार उसमें कुछ अलग तत्व मिलता है। यह उनकी शायरी की विशेषता है।

संदर्भ सूची

1. धूप बहुत है (राहत इन्दौरी की लोकप्रिय ग़ज़लें), शायर- राहत इन्दौरी, सम्पादन- डॉ. प्रवीण शुक्ल, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. नई दिल्ली, सं. 2020, पृ. ग़ज़ल से इश्क करने वाला शायर-3
2. उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रोफेसर सैयद एहतेशाम हुसैन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. -2002, पृ. 283
3. उर्दू भाषा और साहित्य, फिराक गोरखपुरी, अरुन सिंह निदेशक उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ, सं. चतुर्थ संस्करण: 2008, पृ. 350
4. धूप बहुत है (राहत इन्दौरी की लोकप्रिय ग़ज़लें), शायर- राहत इन्दौरी, सम्पादन- डॉ. प्रवीण शुक्ल, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. नई दिल्ली, सं. 2020, पृ. 47
5. वही, पृ. 26
6. वही, पृ. 30
7. वही, पृ. 52
8. वही, पृ. 53
9. वही, पृ. 60
10. वही, पृ. 84
11. वही, पृ. 124
12. वही, पृ. 34
13. वही, पृ. 41
14. वही, पृ. 70

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करनेवाली कहानी 'दीक्षा'

डॉ. क्रांति वासुदेव सोनवणे

एस. एस. एम. एम. महाविद्यालय

पाचोरा (महाराष्ट्र)

'दीक्षा' मनु शर्मा लिखित कहानी संग्रह की एक कहानी है। ऐतिहासिक-पौराणिक कथा-साहित्य में मनु शर्माजी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। 'दीक्षा' यह कहानी एकलव्य पर केंद्रित है। एकलव्य के पिता अरण्यराज हिरण्यधनु भी एक महत्वपूर्ण पात्र रहा है। हिरण्यधनु अपने बेटे एकलव्य पर हुए अन्याय के प्रति आचार्य द्रोण से न्याय की अपेक्षा से जाते है। यही कहानी का उद्देश्य है। हिरण्यधनु अपने कुछ सैनिको को साथ लिए हस्तिनापूर की ओर कूच करते है। यही से कहानी की शुरुआत होती है। लेखक मनु शर्मा ने उन अरण्यवासीयों का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है। 'उस राही को उन अश्वारोहियों का वेश भी विचित्र लगा। रजत मेखला से फँसा उनका अरुणाभा लिये मटमौला अधोवस्त्र कुछ विचित्र ढंग से चमक रहा था। सिर पर सीपियों और घोंघों से बने मुकुट में मोती-मूँगे और घुमची की झालरें लगी थी, जो उनके अरण्यराज होने का प्रमाण दे रही थी।" मनु शर्मा आगे लिखते है व्दारपालों ने उन्हें रोक दिया। ऐसा अद्‌भूत था और अद्‌भूत थी उसकी सैन्य टुकडी। उन लोगों ने ऐसा कभी देखा नहीं था। पूरी सुरक्षा सेना ही उन्हें घेर कर खड़ी हुई। भीतर से कुछ नगरवासी भी चले गए। "आपके आने का प्रयोजन ? प्रधान व्दारपाल ने पुछा। "हमे हस्तिनापूर के आचार्य से मिलना है" वनराज की कड़कडी आवाज अहम में डुबी थी। व्दारपाल को वनराज की भाषा कुछ समझ में नहीं आती क्योंकि उनके बोलने का ढंग नगरसभ्यता से अलग ही था। द्वारपाल उनके परिचय माँगते है। परंतू बीच में ही कोई बोलता है कि, "अरे, परिचय क्या ! ये सब जंगली लुटेरे है!" [1]

इतना सुनते ही सभी वनवासी संतप्त नजर आते है।

आपके प्रासाद पर कोई पताका नहीं है? "पर अरण्यराज की कोई पताका नही होती" क्या हम लोगों का कोई राजप्रासाद पर कोई पताका नहीं है?" हम लोगों का कोई राजप्रासाद नहीं होता। वनराज ने कहा, "हम जहाँ चाहते है वहाँ रहते है, जहाँ चाहते है वहाँ विचरते है। हमारी जीवन-शैली तुम लोगों से बहुत भिन्न है। हमारे लिए मिट्टी और पत्थर की प्राचीर बहुत महत्व नहीं रखती, क्योंकि हमारी पूजा केवल मनुष्य ही नहीं है, पशु-पक्षी भी है, जंगल के पेड़-पल्लव भी। सबकी देखभाल का हम पर दायित्व है।" हिरण्यधनु की बातों से यह स्पष्ट होता है उसे जंगल से लगाव है केवल मनुष्य ही नहीं अरण्य के हर तिनके को वह अपनी प्रजा मानते है। आदिवासी होकर भी हिरण्यधनु की इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प का हमे यहां परिचय होता है। हिरण्यधनुने उलटा द्वारपाल से प्रश्न करते है, "तुम जब हमारे राज्य में आते हो तो क्या किसी की अनुमति लेनी होती है। किसी के पास सूचना भेजनी होती है? या आने का

प्रयोजन बतलाना होता है? जबकि हम जानते है कि तुम्हारे आने का प्रयोजन क्या है। वृक्षों पर बैठे पक्षी तुम्हे देखते ही डर के मारे फरफराकर और अरण्य गर्भ में छिप जाते है। आखेट के नाम पर हमारे पशु-पक्षियों के प्राणो पर डाका डालेंगे अथवा हमारे उत्पादन मधु, कंद-मूल अथवा वनौषधियाँ लूटकर जाएँगे। और यदि कुछ नहीं कर पाए तो वृक्षों को काटकर उनकी लकडियाँ ही उठा ले जाएँगे-भागते भूत की लँगोटी ही सही।"[2] इतना करने के बाद भी वनराज चुप नहीं हुआ, वरन वह थोडे आवेश में आया। वस्तुतः लुटेरे तुम लोग हों। तुम्हारी लूट से संत्रस्त हम है। फिर भी हम तुम्हारी गायो की रक्षा करते है। हम तुम्हारे गोधन के संरक्षक है। हिरण्यधनु की होशियारी उन वाक्यों में नजर आती है द्वारपाल भी हिरण्यधनु को महल में जाने की अनुमति देता है।

आचार्य द्रोण के महल को देखकर हिरण्यधनु चकित होता है, क्योंकि उसे ज्ञात था कि, आचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को कभी पीने के लिए दुध भी नहीं मिलता था। जब वह रोता तो उनकी माँ उसे तंदुल का धोवन पिलाकर बहला देती थी। हिरण्यधनु की भेट आचार्य पत्नी कृपी से होती है। कृपी को जब पता चलता है कि एकलव्य और उसके पिता आए है तो वह कुछ समझ नहीं पाती। वह किंकर्तव्यविमूढ-सी होकर देखती रह जाती। एकलव्य अपने कटे हुए अँगूठे के साथ खडा था। एकलव्य को पहचानते ही कृपी लगभग बुझ सी जाती है। कृपी आचार्य द्रोण के पास जाकर खड़ी हो जाती है। आचार्य राजभवन जाने के लिए तैयार हो रहे थे। इस स्थिति में अपनी पत्नी को देखकर वे भी चकित हुए और उन्हें संभलकर बैठाने की चेष्टा करते हुए बोले, "क्या बात है कृपी? अभी तो तुम ठीक-ठाक थीं, कुछ बोलती क्यों नहीं, लगता है तुम कुछ छिपा रही है। आचार्य ने कहा जानती हो, तुम मेरी अर्धांगिनी भी हो। पति से कुछ छिपाना पाप होता है"।[3]

वह कहती है - इसी स्थिति ने तो मुझे इस संकट में डाला है क्योंकि मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ आपके पाप और पुण्य के अधिक भागीदार। यह उत्तर आचार्य के समझ नहीं आता तो कृपी कहती है, बाहर जाइए। देख लेंगे तो सबकुछ समझ जाएँगे। आचार्य द्रोण बाहर जाकर सामने एकलव्य को देखकर स्तब्ध रह गए चारो ओर उन्हें रक्त उलगते अँगूठे-ही अँगूठे दिखाई दिए। एकलव्य के पीछे खड़े व्यक्ति से उसका परिचय पूछते है,

"आप कौन है?"

"मैं, इसका पिता, हस्तिनापूर के दक्षिणात्य अरण्य का अधिपति हिरण्यधनु हूँ।"

"बताइए, आप क्या चाहते है?"

"आपने हमारे पुत्र को शिक्षा तो दी है, पर अभी दीक्षा नहीं दी है।"[4]

हिरण्यधनु ने अत्यंत विनम्र भाव से सिर झुकाते हुए प्रार्थना की, "हम विनयावंत हो आग्रह करते है कि इस गुरु पूर्णिमा को आप उसे दीक्षा देने की महती कृपा करे, क्योंकि बिना दीक्षा कोई विद्या फलवती नहीं होती। आचार्य द्रोण काफी गंभीर हो जाते है। उनकी दृष्टि एकलव्य के कटे अँगूठे पर ही थी। उनका मन पश्चाताप से तथा तन

कष्टदायक होता है। एकलव्य से पुछते है कि, "तुम इस हाथ से भी शर-संधान कर सकते हो।" एकलव्य ने विश्वास से हामी भर दी। हिरण्यधनु भी बोलता है, अच्छी तरह अब तो यह पहले से अधिक सटीक लक्ष्यभेद कर सकता है। यदि आप चाहे तो इतकी परीक्षा ले।"[5] आचार्य द्रोण एकलव्य से दूसरा प्रश्न करते है, "क्या तुम बाएँ हाथ से भी शर-संधान कर सकते हो।" तो एकलव्य ने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया। आचार्य द्रोण थोडा प्रसन्न होते है क्योंकि अर्जुन पर द्रोण अधिक प्रेम करते थे। अर्जुन दोनो हाथो से शर-संधान कर सकता था। उन्हें इसका ही संतोष था कि आज भी अर्जुन एकलव्य से श्रेष्ठ है। हिरण्यधनु दीक्षा देने का अनुरोध करता है। तो आचार्य बड़ी रुक्षता से उत्तर देते है कि, "उसे तो मेरी मूर्ति ने शिक्षा दी है। एकलव्य को यदि दीक्षा लेनी ही है, तो उसी मूर्ति से लें।" अब हिरण्यधनु संप्रत हुए बोलता है, "आपने शिक्षा नही दी थी तो आप गुरुदक्षिणा लेनेवाले कौन थे ?"[6]

हिरण्यधनु को अपने बेटे के प्रति प्रेम तो था ही परंतू उसने जिस गुरु की मूर्ति स्थापित कर शिक्षा ग्रहण की थी उसका भी आदर था। आचार्य द्रोण ने भले ही उसे शिक्षा न दी हो परंतु आचार्य को एकलव्य से गुरुदक्षिणा लेने को कोई अधिकार नहीं था। यही सोच हिरण्यधनु की थी। हिरण्यधनु एक प्रकार से द्रोण से न्याय ही माँगते है। आचार्य होकर भी द्रोण ने अपना आचार्यत्व ठीक ढंग से नही निभाया था। आचार्य (गुरु) राष्ट्र का गौरव होता है। यही हिरण्यधनु को भी लगता है। मनु शर्मा ने हिरण्यधनु के माध्यम से गुरु (आचार्य) का महत्व के साथ गुरु के कर्तव्य पर भी प्रकाश डाला है। हिरण्यधनु कहता है- "तुम ईर्ष्या से भी ग्रसित हो। ईर्ष्या वह नागिन है, जो अपने अंडे स्वंय खा जाती है। वह आग है जो उसे पहले जलाती है। जहाँ पैदा होती है, दूसरों को उसकी बाद में आँच लगती है। तुम अर्जुन से बढ़कर किसी धनुर्धर को देख नही सकते। इसी ईर्ष्या में तुम खुद जल रहे हो और इसी जलन 'ने तुमने मेरे बेटे का अंगूठा कटवाया है। क्या गुरु का यही धर्म है? अपने एक शिष्य के प्रति मोह ने दूसरे शिष्य की साधना स्खलित कर दी, जबकि तुम्हारे ही कथनानुसार, तुमने उसे शिक्षा भी नही दी थी। कर्म तुम्हारा नहीं और परिणाम की ओर लपक पड़े। यह तुम्हारा सरासर अन्याय है, आचार्य ! यह तुम्हारी नीचता है"।[7] हिरण्यधनु का चरित्र इस कहानी के माध्यम से हमारे सम्मुख प्रकट किया है।

मनु शर्मा की कहानी "दीक्षा" में आदिवासी एकलव्य के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक असमानता और न्याय की अनुपस्थिति आदिवासी जीवन को प्रभावित करती है। कहानी में गाँव, प्रशासन और समाज की मानसिकता आदिवासियों को समान अवसरों और सम्मान से वंचित करती है।

समाज के उच्च वर्गों द्वारा आदिवासियों के प्रति दृष्टिकोण उनकी सामाजिक उपेक्षा और मानसिक उत्पीड़न को दर्शाता है।

यह न केवल कहानी का वास्तविक संघर्ष है, बल्कि वास्तविक समाज की समस्याओं का प्रतीक भी है।

पौराणिक कथा में एकलव्य का अंगूठा दान करना न केवल गुरु के प्रति निष्ठा का प्रतीक है, बल्कि यह सामाजिक शक्ति और अन्याय का प्रतीक भी है।

- महाभारत का यह संदर्भ कहानी "दीक्षा" में आदिवासी जीवन की कठिनाइयों और असमानताओं को समझाने के लिए सशक्त तर्क प्रस्तुत करता है।
- यह विवेचन दिखाता है कि इतिहास और पौराणिक कथाएँ आज के समाज में भी प्रासंगिक हैं, विशेषकर अधिकारों और सामाजिक न्याय की दृष्टि

पौराणिक नायक एकलव्य पर हुए अन्याय और उसकी आज की प्रासंगिकता

1. सामाजिक असमानता का प्रतीक

महाभारत में एकलव्य ने द्रोणाचार्य से प्रत्यक्ष शिक्षा पाने का अधिकार नहीं पाया, क्योंकि वह सामाजिक या जातीय दृष्टि से "नीचे" था। यही अन्याय आज के समाज में भी दिखाई देता है:

- आज भी कई वंचित वर्ग, आदिवासी और पिछड़े समुदाय शिक्षा, रोजगार और अवसरों में समान अधिकार नहीं पा पाते।
- यह दर्शाता है कि सामाजिक संरचनाएँ और पूर्वाग्रह समय के साथ बदलते नहीं, और प्रतिभा और निष्ठा के बावजूद लोग असमानता का सामना करते हैं।

2. अधिकार और अवसरों से वंचित करना

एकलव्य ने अपनी मेहनत और निष्ठा से अर्जुन के समान कौशल प्राप्त किया। लेकिन द्रोणाचार्य ने उसका अंगूठा मांग लिया, जो उसकी प्रतिभा को सीमित कर देता है।

- आज भी, कई आदिवासी और गरीब समुदायों को भूमि, संसाधन और आर्थिक अवसरों से वंचित किया जाता है।
- यह दर्शाता है कि प्रतिभा या काबिलियत का सम्मान सामाजिक स्थिति और वर्ग निर्धारण पर टिका रहता है, न कि केवल योग्यता पर।

3. मानसिक और सांस्कृतिक उत्पीड़न

एकलव्य का यह अनुभव दिखाता है कि सामाजिक असमानता केवल भौतिक अधिकार तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी लोगों को दबाया जाता है।

- आज के समाज में भी सांस्कृतिक भेदभाव, जातीय तिरस्कार और मानसिक उत्पीड़न आम हैं।
- **उदाहरण:** आदिवासी बच्चों का स्कूलों में तिरस्कार या उनके रीति-रिवाजों का उपेक्षा करना।

४. निष्ठा और संघर्ष का संदेश

एकलव्य का अंगूठा दान करना दिखाता है कि सच्ची निष्ठा और अनुशासन महान है, लेकिन यह भी स्पष्ट करता है कि सामाजिक अन्याय प्रतिभा और न्याय को बाधित कर सकता है।

- आज भी यह संदेश प्रासंगिक है: प्रतिभा और मेहनत से सफलता संभव है, पर समाज और व्यवस्था का समर्थन होना आवश्यक है।

संदर्भ :-

1. दीक्षा (कहानीसंग्रह), मनु शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०११

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

रेनू यादव की 'काला सोना' कहानी में स्त्री का जीवन संघर्ष

-डॉ.सुनील गुलाबसिंग जाधव

हिन्दी विभाग, यशवंत महाविद्यालय, नांदेड़

भूमिका - समकालीन हिंदी कहानी को एक 'नई धार' देने वाले युवा रचनाकारों में रेनू यादव का नाम अग्रणी है। उनका कहानी संग्रह 'काला सोना' मात्र कहानियों का संकलन नहीं, बल्कि समाज के गहरे अँधेरे कोनों में सिमटी और हाशिए पर धकेली गई स्त्रियों के जीवन-संघर्षों का एक बेबाक और जीवंत दस्तावेज़ है। यह संग्रह, विशेष रूप से इसी नाम की कहानी 'काला सोना', पितृसत्तात्मक और सामंती व्यवस्था द्वारा थोपी गई स्त्री-दासता के विरुद्ध खड़ी स्त्रियों का पाठ है, जिनमें हम उनके जीवन की गहरी अँधेरी खाईयों से परिचित होते हैं।

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य 'काला सोना' कहानी की मुख्य पात्र सुलेखा के बहुस्तरीय संघर्ष का सूक्ष्म विश्लेषण करना है। यह कहानी दिखाती है कि कैसे स्त्री को पहले उसकी जाति और समुदाय (बाछड़) के आधार पर देह व्यापार के अमानवीय चक्र में धकेला जाता है, और जब वह उस दलदल से भागती है, तो उसे घरेलू शोषण (घरेलू सहायिका) की दूसरी परत में दम घोंटना पड़ता है। रेनू यादव की सशक्त भाषा और पात्रों का 'बेलाग कहन' इस भीषण सत्य को बिना किसी लाग-लपेट के पाठकों के सामने रखता है। यह आलेख सुलेखा के जीवन में निहित दोहरी दासता, गरिमा की छटपटाहट, और मुक्ति की चाह के संघर्षों पर विस्तार से प्रकाश डालता है।

'काला सोना' की कहानी में स्त्री के जीवन-संघर्ष को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

१. शोषण की दोहरी परत :

कहानी में सुलेखा का जीवन दो तरह के शोषण के बीच फंसा हुआ दिखाई देता है, वर्तमान और अतीत की दासता के रूप में| वर्तमान में सुलेखा एक संपन्न घर में घरेलू सहायिका के रूप में कार्यरत है, जहाँ वह अपनी गरिमा खो चुकी है। वह 'डस्टबिन' की तरह दिखने लगती है, और सिंक के नीचे सिमट कर छिपने का कोना ही उसे सबसे सुरक्षित महसूस होता है। वह भूल गई कि डस्टबिन की तरह वह भी पिंक सूट में लिपटी हुई है, काला दुपट्टा गले का फांस बन गया है।..डस्टबिन के साथ सटकर वह भी डस्टबिन दिखने लगी है।"1 "डस्टबिन की गंध उसकी नाक को फाड़े दे रही है लेकिन घर का वही एक कोना है जहाँ वह छुप कर सुरक्षित महसूस करती है..."2 सुलेखा के समान कई ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो अपना पेट भरने के लिए किसी न किसी घर में सहायिका के रूप में काम करती हैं | किन्तु जब यह काम उनकी गुलामी और शोषण में बदल जाता हैं | तब यह उनकी पीड़ा और दुख का कारण बन जाता हैं |

उसका अतीत 'बाछड़ समुदाय' से जुड़ा है, जहाँ देह व्यापार को 'बिजनेस' और 'काला सोना' कहा जाता था । "अम्मा काला सोना निकालने के लिए बड़े साहब के घर पर नौकरी करतीं, हाँ... वह 'काला सोना' ही कहा करती थीं।" 3 "मुझे सहेली के घर से पता चला कि हमें 'बाछड़ समुदाय' कहा जाता है। .. यह यहाँ का

बिजनेस है, गलत धंधा नहीं। हम भी बड़े हो जायेंगे तो हमें भी यही करना होगा।.. इसी बिजनेस से हमारा पेट भरता है।" 4 उसे बचपन में इस दलदल में धकेलने की तैयारी की गई थी, जिससे वह भाग निकली। "उनके मुँह से टपकते लार और बदबू से मुझे उल्टी आ गई और मैं पखाने की बाल्टी की ओर भागी। भागी तो उस रात फिर न लौटी। .. अम्मा मुझे देखते ही बाँस की कईन (छड़ी) लेकर दौड़ा ली। मैं भाग कर किसी तरह से खुद को बचा पायी।"**5**

२. 'चिकन' एक भयावह रूपक के रूप में :

कहानी में 'चिकन' का वर्णन साधारण भोजन नहीं, बल्कि स्त्री देह के बर्बर उपभोग का रूपक बन जाता है | जो सुलेखा को मानसिक आघात देनेवाला था | डाइनिंग टेबल पर पुरुषों द्वारा हड्डी चबाने की आवाज़ (तड़र-तड़र, कड़-कड़) सुलेखा के कानों में पिघले शीशे की तरह टीसती है । "डाइनिंग टेबल पर तीन-चार मुँह में हड्डियाँ कड़-कड़, तड़र-तड़र करते हुए चूर-चूर होने लगीं।.. डाइनिंग टेबल पर जितना तड़र-तड़र, कड़-कड़ होता, किचन में सुलेखा अपने हाथों में कसकर पकड़ी प्लेट को उतने ही ज़ोर से दबाती जाती...'मज़ा आ गया' उसके कानों में पिघले शीशे की तरह घुल कर टीस रहा है और वह सिंक के नीचे दबती जा रही है।"6

यह आवाज़ उसे याद दिलाती है कि कैसे बड़े साहब उसकी बहन श्यामा को चखना के साथ 'काट-काट कर खा रहे थे'। "मैंने देखा गिलास में उड़ेले बोतल के शराब को जब बड़ा साहब श्यामा के मुँह में थूक रहा था और चखना के साथ उसे भी काट-काट कर खा रहा था !"7 "मेरे दिमाग में चिकन घूमने लगा। हड्डियों से माँस नोचने के बाद किस तरह हम हड्डियों को तड़र-तड़र कड़-कड़ करके खाते हैं।.. भूख अपराध की जननी है। वह भूख चाहे पेट की हो, धन की हो या फिर देह की।" 8 यह हड्डियों को नोचकर खाने की आवाज़ भूख और अपराध की जननी बन जाती है ।

सुलेखा को तब सबसे ज़्यादा सुरक्षित महसूस होता है, जब वह उस बदबूदार 'पखाने की बाल्टी' के पास छिपी थी, जिसने उसे एक बार बड़े साहब के यौन हमले से बचाया था । "...ठीक उसी तरह जब वह दस वर्ष की उम्र में किचन के बराबर पूरे घर के एक कोने में पर्दे के पीछे पखाना की बाल्टी से सपट कर छिप गई थी..."9 इस तरह, कहानी में गंदगी और दुर्गंध ही उसकी सुरक्षा का एकमात्र माध्यम बन जाती है।

३. शिक्षा और गरिमा के लिए संघर्ष :

सुलेखा और उसकी जैसी लड़कियों के लिए शिक्षा इस घिनौने जीवन से बाहर निकलने का एकमात्र सपना है, सुलेखा का सपना डलिया दीदी की तरह बनने का है, जो पढ़-लिख कर अपनी बड़ी गाड़ी से लौटती हैं और डेरे की स्त्रियों की मदद करती हैं । सुलेखा इस गंदे काम को करने से साफ़ मना कर देती है। गाँव में डलिया दीदी थी जो पढ़ने के बाद नौकरी करती और अपनी बड़ी गाड़ी से गाँव आती और डेरे की स्त्रियों की मदद करती। ..मैंने निश्चय किया कि मैं भी खूब पढ़-लिख कर नौकरी करूँगी...।...और अगर मेरे पास नौकरी रही तो मैं यह गंदा काम करने से साफ़ मना कर दूँगी।...तभी से मैंने पढ़ने का सपना संजोया।...एक दिन मुझे पढ़ना है।"10 "जब अम्मा मुझे पढ़ने भेजतीं तो मैं उमंग से भर जाती थी।"11

सुलेखा की दादी की कहानी भी इसी संघर्ष को दर्शाती है। उनकी माँ चाहती थी कि वह खूब पढ़ें, लेकिन पांचवी कक्षा में ही उनका ब्याह हो गया । दादी का यह अफ़सोस कि 'अगर हम और पढ़े होते तो और भी बहुत कुछ कर जाते' शिक्षा के महत्व और स्त्री की दबी हुई आकांक्षा को दर्शाता है। "दादी ने कहा, 'हमरी मैय्या चाहती थीं कि हम खूब पढ़ें...।..हमरी मैय्या कहती थीं कि हमसे काम नहीं करवाती, हमें पढ़ने भेजतीं और काम करने वाली बूढ़ी औरतें हम पर हँसती थीं...।..पांचवीं में पहुँचे तो ब्याह हो गया...।"12

४. बाछड़ समुदाय की स्त्रियों का जीवन-यापन :

'काला सोना' उन स्त्रियों के जीवन की विवशता को सामने लाती है, जो देह व्यापार को व्यवसाय मानने के लिए मजबूर हैं| सुलेखा की बहन श्यामा के पास नए कपड़े और पैसे (कड़-कड़ की नोट) हैं, लेकिन वह उन्हें खुशी से नहीं, बल्कि अनमनी-सी उबकाई करते हुए खाती है। यह दिखाता है कि इस 'व्यवसाय' में पैसा तो है, पर दोष और पीड़ा भरी हुई है। "लेकिन श्यामा के मुँह से हँसी नहीं, अनमनी-सी उबकाई निकलती।.. जब वह कड़-कड़ की नोट मेरे मुँह में रखती तो मैं उसे प्यार से चूमती थी।"14 "उसके होंठ कट गए थे, आँखें लाल अँधमुंदी थीं, पैर रह-रह के काँप रहे थे। वह नग्न लेटी थी उसके ऊपर जगह-जगह हल्दी छपी थी और ऊपर से अम्मा ने अपनी पुरानी लूगरी ओढ़ा रखी थी।"15 "अम्मा ने उसे नई साड़ी में लपेटा और ऊपर से लँहगा ओढ़ाकर सजाया।"16 "यह यहाँ का बिजनेस है, गलत धंधा नहीं।"17

समुदाय की स्त्रियाँ जानती हैं कि यह 'बिजनेस थोड़ा खतरनाक है', जिसमें 'काला खूंखार दैत्य' (संभवतः यौन रोग या हिंसा) आकर उन्हें पकड़ लेता है और चबाकर खा जाता है । "यह बिजनेस थोड़ा खतरनाक है।.....कचैली के इस डेरे में काला खूंखार दैत्य आता है और लड़कियों को पकड़ लेता है।..चबा-चबा कर खा जाता है।"18

जब सुलेखा इस जीवन से भागती है, तो अम्मा (माँ) उसे बाँस की छड़ी से दौड़ाती हैं । यह दर्शाती है कि गरीबी और व्यवस्था के दबाव में माँ भी अपनी बेटी के शोषकों का विरोध करने के बजाय, उसे उस जीवन में धकेलने की अपराधी बन जाती है। "अम्मा मुझे देखते ही बाँस की कईन (छड़ी) लेकर दौड़ा ली।..मैं भाग कर किसी तरह से खुद को बचा पायी।..मेरी अम्मा ने मुझे कोई विकल्प नहीं दिया था।"19 "अम्मा ने लाल रंग का लँहगा पहनाकर मुझे रच-रच कर सजाया।" (यह तैयारी उसे बलि से पहले पूजी जाने वाली वस्तु के समान महसूस होती है, जो आत्म-सुरक्षा के पूर्ण अभाव को दर्शाती है।)..बलि से पहले पूजी जाने वाली ई पशु।"20

निष्कर्ष:

रेनू यादव की कहानी 'काला सोना' समकालीन कथा-जगत् में एक महत्वपूर्ण सार्थक हस्तक्षेप सिद्ध होती है। यह कहानी न केवल सुलेखा के व्यक्तिगत दर्द को व्यक्त करती है, बल्कि यह समग्र बाछड़ समुदाय की स्त्रियों के त्रासदीपूर्ण यथार्थ का भी प्रतीक बन जाती है। हमने देखा कि कहानी में स्त्री का संघर्ष तीन आयामों पर केंद्रित है: पहला, अतीत का वीभत्स यथार्थ जहाँ 'काला सोना' (अफीम/देह व्यापार से अर्जित आय) के नाम

पर उसके बचपन को रौंद दिया गया; दूसरा, वर्तमान की घरेलू घुटन जहाँ उसे एक 'डस्टबिन' की तरह व्यवहार किया जाता है, और तीसरा, मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा, जो शिक्षा और आत्म-सम्मान के माध्यम से पूरी हो सकती है। 'चिकन' की हड्डी चबाने की आवाज़ (तड़र-तड़र, कड़-कड़) जैसे रूपकों का प्रयोग कहानी को एक गहरा मानसिक आघात और प्रतीकात्मकता प्रदान करता है।

अंततः रेनू यादव लोक से जुड़ी अपनी सशक्त और मौलिक भाषा के बल पर इन कहानियों को 'लम्बी यात्रा की कहानियाँ' बनाती हैं। 'काला सोना' एक ऐसी कहानी है जो हमें याद दिलाती है कि हाशिए की स्त्रियों का संघर्ष केवल जीवित रहने का नहीं, बल्कि मनुष्य बनकर सम्मान से साँस लेने का है। यह रचना स्त्री जीवन की पीड़ा, उसके द्वन्द्वों और प्रतिरोध की भावना को बेबाकी से प्रस्तुत कर हिंदी कहानी की परंपरा को एक नई दिशा प्रदान करती है।

संदर्भ-(1)रेनू यादव –'काला सोना', शिवना प्रकाशन, सीहोर, संस्करण -2022 पृष्ठ संख्या. 19 (2)वही ..पृष्ठ संख्या. 21 (3)वही ..पृष्ठ संख्या. 22 (4)वही ..पृष्ठ संख्या. 4 (5)वही ..पृष्ठ संख्या.26 (6)वही ..पृष्ठ संख्या. 19 (7)वही ..पृष्ठ संख्या.24 (8)वही ..पृष्ठ संख्या. 25 (9)वही ..पृष्ठ संख्या. 21 (10)वही ..पृष्ठ संख्या. 22 (11)वही ..पृष्ठ संख्या. 23 (12)वही ..पृष्ठ संख्या. 23 (13)वही ..पृष्ठ संख्या.24 (14)वही ..पृष्ठ संख्या. 24 (15)वही ..पृष्ठ संख्या. 26 (16)वही ..पृष्ठ संख्या. 23 (17)वही ..पृष्ठ संख्या. 26 (18)वही ..पृष्ठ संख्या.25 (19)वही ..पृष्ठ संख्या. 26 (20)वही ..पृष्ठ संख्या. 27

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

महादेवी वर्मा के निबंध साहित्य में नारी चेतना : उपेक्षित चरित्रों के परिप्रेक्ष्य में

स.प्रा.कैलाश बागुल

हिंदी विभाग,प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर, महाराष्ट्र

1. भूमिका

आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी चेतना का विकास सामाजिक परिवर्तन की चेतना से जुड़ा हुआ है। छायावादोत्तर काल में महादेवी वर्मा ने नारी जीवन के उन पक्षों को उजागर किया जो लंबे समय तक साहित्य और समाज दोनों में उपेक्षित रहे। उनके निबंध स्त्री की करुणा, विवशता, मौन पीड़ा और आत्मसम्मान की खोज का साहित्यिक साक्ष्य हैं। वे नारी को सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रश्न उठाने वाली चेतन सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की ऐसी सशक्त लेखिका हैं जिनका निबंध साहित्य नारी जीवन की यथार्थ पीड़ाओं, संघर्षों और चेतना का संवेदनशील दस्तावेज है। उनके निबंधों में नारी को केवल भावनात्मक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय, उपेक्षा और शोषण की शिकार मानवीय सत्ता के रूप में देखा गया है। यह शोध-पत्र महादेवी वर्मा के निबंध साहित्य में अभिव्यक्त नारी चेतना का अध्ययन विशेष रूप से उन उपेक्षित स्त्री चरित्रों के संदर्भ में करता है, जो पितृसत्तात्मक समाज में हाशिए पर डाल दी गई हैं।

मुख्य शब्द : महादेवी वर्मा, नारी-चेतना, उपेक्षित नारी, निबंध साहित्य, संस्मरण साहित्य

2. महादेवी वर्मा की नारी दृष्टि

महादेवी वर्मा की नारी दृष्टि मानवीय और करुणामूलक है। वे स्त्री-पुरुष के द्वंद्व की बजाय मानवीय समानता पर बल देती हैं। उनके अनुसार नारी की पीड़ा का कारण उसका स्त्री होना नहीं, बल्कि समाज की असमान संरचना है। यही चेतना उनके निबंधों को नारी विमर्श का सशक्त आधार बनाती है।

1. 'अतीत के चलचित्र' इस कृति में चित्रित स्त्रियाँ—

विधवाएँ, सेविकाएँ, निर्धन और अशिक्षित महिलाएँ

ये स्त्रियाँ चुपचाप जीवन का बोझ उठाती हैं, पर समाज उन्हें कोई पहचान नहीं देता।

2. 'स्मृति की रेखाएँ'

इसमें लेखिका ने जिन स्त्री पात्रों को उकेरा है—

वे प्रेम, त्याग और करुणा की मूर्तियाँ हैं लेकिन उनका जीवन अभाव, अकेलेपन और उपेक्षा से भरा है

महादेवी इन स्त्रियों के माध्यम से नारी की मौन वेदना को स्वर देती हैं।

महादेवी वर्मा की दृष्टि में नारी—

विद्रोही नहीं, पर सजग है

मौन है, पर चेतन है

सहनशील है, पर दुर्बल नहीं

वे नारी को दया का पात्र नहीं, सम्मान और अधिकार की अधिकारी मानती हैं।

3. उपेक्षित स्त्री चरित्रों का स्वरूप

महादेवी वर्मा के निबंधों में अनेक ऐसे स्त्री चरित्र मिलते हैं जो समाज के हाशिए पर जीवन जीने को विवश हैं—

श्रृंखला की कड़ियाँ इस कृति में महादेवी वर्मा ने नारी की पराधीन स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। वे स्पष्ट करती हैं कि नारी को सामाजिक परंपराओं की श्रृंखला में बाँध दिया गया है। शिक्षा, आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता से वंचित रखकर उसे केवल कर्तव्य-पालन की वस्तु बना दिया गया।

महादेवी वर्मा के साहित्य में उपेक्षित नारी वह है । जो सामाजिक एवं पारिवारिक बंधनों में जकड़ी है । जिसे अधिकारों से वंचित रखा गया है- जिसकी पहचान त्याग, सहनशीलता और मौन पीड़ा तक सीमित कर दी गई है । यह उपेक्षा केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की देन है।

(क) विधवा स्त्री

महादेवी वर्मा विधवा को सामाजिक करुणा का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय का प्रमाण मानती हैं। विधवा जीवन की नीरसता, अपमान और आत्मग्लानि को उन्होंने गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। विधवा स्त्री उनके निबंधों में मौन प्रतिरोध का प्रतीक बन जाती है।

(ख) सेवा और त्याग में डूबी नारी

उनके निबंधों में ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो परिवार और समाज के लिए अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर देती हैं, परंतु बदले में उन्हें पहचान और सम्मान नहीं मिलता। यह नारी समाज की रीढ़ होते हुए भी उपेक्षित रहती है।

(ग) वंचित और हाशिए की स्त्रियाँ

महादेवी वर्मा का लेखन केवल शिक्षित या मध्यवर्गीय स्त्री तक सीमित नहीं है। दासी, निर्धन, श्रमिक और बेसहारा स्त्रियाँ भी उनके निबंधों में मानवीय गरिमा के साथ उपस्थित होती हैं। वे वर्गीय और सामाजिक भेदभाव को नारी शोषण का प्रमुख कारण मानती हैं।

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की ऐसी विशिष्ट लेखिका हैं जिन्होंने नारी-जीवन की भीतरी पीड़ा, करुणा और उपेक्षा को गहन संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनके निबंध एवं संस्मरण साहित्य में उपेक्षित नारी चरित्र सामाजिक संरचना, पितृसत्तात्मक मानसिकता और सांस्कृतिक रूढ़ियों का मूक साक्ष्य बनकर उभरता है।

4. नारी चेतना और प्रतिरोध

महादेवी वर्मा की नारी चेतना करुणा तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उसमें प्रतिरोध की चेतना भी निहित है। वे स्त्री को शिक्षित, आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी बनाने पर बल देती हैं। उनके निबंधों में नारी की मुक्ति पुरुष-विरोध नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का रूप ले लेती है।

छायावादीन युग की प्रमुख स्तंभ महादेवी वर्मा को नारी-चेतना की सशक्त प्रवक्ता माना जाता है। उनका गद्य साहित्य—विशेषतः निबंध और संस्मरण—करुणा, संवेदना और मानवीय दृष्टि से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने साहित्य में उन स्त्रियों को केंद्र में रखा है, जो समाज के हाशिए पर जीवन व्यतीत करती हैं और जिनकी पीड़ा प्रायः अनकही रह जाती है।

5. भाषा और शैली

महादेवी वर्मा की निबंध भाषा काव्यात्मक, भावनात्मक और संवेदनशील है। उनकी शैली में करुणा, आत्मानुभूति और दार्शनिक दृष्टि का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। यही शैली उपेक्षित स्त्री चरित्रों को जीवंत और प्रभावशाली बना देती है।

6. निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा का निबंध साहित्य नारी चेतना का सशक्त दस्तावेज है। उपेक्षित स्त्री चरित्रों के माध्यम से उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज की विसंगतियों को उजागर किया और नारी के आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की मांग की। भारतीय नारी इस निबंध में लेखिका भारतीय नारी की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थिति का मूल्यांकन करती हैं। नारी को देवी का स्थान तो मिला, किंतु मानवोचित अधिकार नहीं। उनका लेखन हिंदी नारी विमर्श की आधारशिला के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. महादेवी वर्मा – शृंखला की कड़ियाँ
2. महादेवी वर्मा – स्मृति की रेखाएँ
3. नामवर सिंह – आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
4. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास
5. विमला देवी – हिंदी नारी विमर्श

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

"संवैधानिक अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श"

प्रा. किशोर रमेश गायकवाड

रुक्मिणिताई कला एवं वाणिज्य महिला महाविद्यालय,
अमलनेर,जलगांव, महाराष्ट्र

सारांश:-

भारतीय समाज में किन्नर समुदाय की उपस्थिति ऐतिहासिक रूप से रही है, किंतु सामाजिक स्तर पर उन्हें लंबे समय तक उपेक्षा और भेदभाव का सामना करना पड़ा। यद्यपि भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, परंतु व्यवहारिक जीवन में किन्नर समुदाय इन अधिकारों का पूर्ण लाभ नहीं उठा सका। सामाजिक पूर्वाग्रहों और अस्वीकार्यता के कारण उनकी आवाज़ लंबे समय तक दबाई गई।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य संवैधानिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संदर्भ में हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श का अध्ययन करना है। इस शोध में यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार हिंदी साहित्य ने किन्नर समुदाय के जीवन, संघर्ष, पीड़ा और आत्मसम्मान को अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रारंभिक हिंदी साहित्य में किन्नर पात्रों का चित्रण सीमित और रूढ़ रहा, किंतु आधुनिक साहित्य में संवैधानिक चेतना और सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव से यह दृष्टिकोण अधिक संवेदनशील और मानवीय हुआ है।हिंदी साहित्य ने किन्नर विमर्श के माध्यम से समाज की चुप्पी को तोड़ने का कार्य किया है। साहित्य केवल सहानुभूति व्यक्त करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समानता, सम्मान और मानवीय गरिमा जैसे संवैधानिक मूल्यों को सामाजिक विमर्श मानवीय गरिमा जैसे संवैधानिक मूल्यों को सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाया है। किन्नर विमर्श यह सिद्ध करता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तभी सार्थक है, जब वह समाज के वंचित वर्गों को भी अपनी बात कहने का अवसर दे।

प्रस्तावना :-

आज का समाज केवल बाहरी विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मानव अधिकारों और समानता की अवधारणा को भी अपने भीतर समाहित करने का प्रयास कर रहा है। भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार देता है, परंतु सामाजिक व्यवहार में सभी वर्गों को यह अधिकार समान रूप से प्राप्त हों, यह आवश्यक नहीं है। किन्नर समुदाय इसका स्पष्ट उदाहरण है। यद्यपि उन्हें संवैधानिक रूप से नागरिक अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी सामाजिक उपेक्षा, अस्वीकृति और भेदभाव आज भी उनके जीवन की सच्चाई बने हुए हैं।समाज में किन्नर समुदाय को लेकर जो पूर्वाग्रह हैं, वे केवल सामाजिक नहीं बल्कि मानसिक भी हैं। शिक्षा, रोजगार और पारिवारिक भी हैं। शिक्षा, रोजगार और पारिवारिक स्वीकृति जैसे क्षेत्रों में उन्हें निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में साहित्य एक ऐसा माध्यम बनकर सामने आता है, जो इन दबे हुए अनुभवों

को अभिव्यक्ति देता है। हिंदी साहित्य ने किन्नर जीवन की पीड़ा, संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं को सामने लाकर समाज को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित किया है।यह कहा जा सकता है कि साहित्य केवल कल्पना का संसार नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने और बदलने का सशक्त साधन है। किन्नर विमर्श के माध्यम से हिंदी साहित्य ने यह सिद्ध किया है कि समानता और सम्मान केवल संवैधानिक शब्द नहीं,बल्कि सामाजिक व्यवहार का अनिवार्य हिस्सा होने चाहिए।वर्तमान समय में मानव अधिकारों, समानता और स्वतंत्रता की अवधारणाओं को विशेष महत्व दिया जा रहा है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी लिंग या पहचान से संबंधित हो, समान अधिकारों का अधिकारी माना जाता है। परंतु व्यावहारिक जीवन में यह समानता अभी भी पूर्ण रूप से साकार नहीं हो पाई है। किन्नर समुदाय नागरिक होते हुए भी सामाजिक सम्मान, सुरक्षा और अवसरों से वंचित रहा है। शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सहभागिता जैसे क्षेत्रों में उनकी स्थिति अब भी चुनौतीपूर्ण बनी हुई है।भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक को समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है।संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (a) व्यक्ति को अपने विचार, अनुभव और भावनाएँ व्यक्त करने की स्वतंत्रता देता है।किंतु यह स्वतंत्रता तब ही सार्थक मानी जा सकती है, जब समाज के सभी वर्ग, विशेषतः वंचित और हाशिये पर खड़े समुदाय, इसका वास्तविक लाभ उठा सकें। किन्नर समुदाय के संदर्भ में यह अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहाँ संवैधानिक अधिकार और सामाजिक व्यवहार के बीच गहरी दूरी बनी हुई है।

प्रस्तुत शोध "संवैधानिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य में चित्रित किन्नर विमर्श" इसी दृष्टिकोण से किया गया है। यह शोध यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार संवैधानिक चेतना ने हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श को दिशा दी है और साहित्य ने समाज में समानता, सम्मान तथा मानवीय गरिमा की भावना को सुदृढ़ करने में क्या भूमिका निभाई है।

पृष्ठभूमि:-

स्वतंत्र भारत में संविधान ने प्रत्येक नागरिक को समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का अधिकार प्रदान किया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लोकतांत्रिक मूल्यों की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया गया। किंतु व्यवहारिक स्तर पर यह स्वतंत्रता सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच सकी। किन्नर समुदाय के लिए अपनी पहचान और अनुभवों को खुलकर व्यक्त करना सामाजिक भय और अस्वीकृति के कारण कठिन बना रहा।इसी पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्य की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। साहित्य ने समाज के उन पक्षों को उजागर किया है जिन्हें सामान्यतः मौन में ढंक दिया जाता है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श का उभरना केवल साहित्यिक परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के विकास का संकेत है। साहित्य ने किन्नर समुदाय के जीवन संघर्ष, पीड़ा और मानवीय आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति प्रदान कर संवैधानिक मूल्यों को सामाजिक संवाद का हिस्सा बनाया।

अतः यह पृष्ठभूमि स्पष्ट करती है कि किन्नर विमर्श का अध्ययन केवल साहित्यिक आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की संवैधानिक भावना को समझने का भी प्रयास है। इसी ऐतिहासिक, सामाजिक और संवैधानिक संदर्भ में प्रस्तुत शोध को आकार दिया गया है।

प्राचीन भारतीय समाज में किन्नर :-

जब हम प्राचीन भारतीय समाज की बात करते हैं, तो यह समझना ज़रूरी हो जाता है कि उस समय समाज केवल स्त्री और पुरुष तक सीमित नहीं था। उस दौर में किन्नर भी समाज का एक स्वीकृत और सम्मानित हिस्सा थे। आज के समय में किन्नर समुदाय को जिस तरह की उपेक्षा झेलनी पड़ती है, वैसी स्थिति प्राचीन भारत में नहीं थी।'किन्नर' शब्द संस्कृत से आया हुआ है। इसका अर्थ होता है ऐसा व्यक्ति जो न पूरी तरह पुरुष हो और न पूरी तरह स्त्री हो। प्राचीन भारतीय समाज ने इस पहचान को नकारा नहीं, बल्कि इसे सहज रूप से स्वीकार किया। यही कारण है कि किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में पहचाना गया।प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी किन्नरों का उल्लेख सम्मान के साथ मिलता है। रामायण में यह कथा मिलती है कि जब भगवान राम वनवास के लिए जा रहे थे और उन्होंने पुरुषों व स्त्रियों को वापस लौटने को कहा, तब नि वहीं रुक गए क्योंकि वे न पुरुष थे और न स्त्री। उनर्क ष्ठा से प्रसन्न होकर भगवान राम ने उन्हें आशीर्वाद देने का अधिकार प्रदान किया। आज भी इसी विश्वास के कारण किन्नरों के आशीर्वाद को शुभ माना जाता है।

संविधान में किन्नरों के लिए किए गए प्रावधान:-

भारतीय संविधान में कहीं भी अलग से "किन्नर" शब्द नहीं लिखा गया है, लेकिन संविधान के कई अनुच्छेद ऐसे हैं जो किन्नर समुदाय पर पूरी तरह लागू होते हैं। संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार देता है, इसलिए किन्नर भी इन अधिकारों के अंतर्गत आते हैं।

अनुच्छेद 14 - कानून के सामने समानता

अनुच्छेद 14 कहता है कि भारत में सभी नागरिक कानून की नजर में समान हैं।इसका मतलब यह है कि किन्नर भी कानून के सामने स्त्री और पुरुष के बराबर हैं। उनके साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता। किन्नरों को समान नागरिक माना गया है।

अनुच्छेद 15 – भेदभाव का निषेध

अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी भी नागरिक के साथ लिंग, जाति, धर्म, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।सुप्रीम कोर्ट ने यह स्पष्ट किया है कि यहाँ "लिंग" में किन्नर भी शामिल हैं।किन्नरों के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव करना असंवैधानिक है।

अनुच्छेद 16 – समान अवसर का अधिकार

अनुच्छेद 16 सरकारी नौकरी और रोजगार में समान अवसर की गारंटी देता है।किन्नरों को भी सरकारी नौकरियों में आवेदन करने और चयन का पूरा अधिकार है।उन्हें केवल उनकी पहचान के कारण रोका नहीं जा सकता है।

अनुच्छेद 19 – स्वतंत्रता का अधिकार

अनुच्छेद 19 नागरिकों को बोलने, रहने, घूमने और अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता देता है।
किन्नरों को भी अपनी पहचान के साथ खुलकर जीवन जीने का अधिकार है।वे अपनी बात कह सकते हैं और अपनी पहचान व्यक्त कर सकते हैं।

अनुच्छेद 21 - जीवन और गरिमा का अधिकार

अनुच्छेद 21 कहता है कि हर व्यक्ति को सम्मान के साथ जीवन जीने का अधिकार है।किन्नरों को भी गरिमापूर्ण जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा का अधिकार है।उन्हें अपमानित करना या अमानवीय व्यवहार करना संविधान के खिलाफ है।

स्वतंत्र भारत में किन्नरों की स्थिति :-

भारत को आज़ादी मिलने के बाद संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार दिए, लेकिन वास्तविकता यह रही कि किन्नर समुदाय लंबे समय तक इन अधिकारों से पूरी तरह लाभ नहीं उठा पाया। स्वतंत्र भारत में किन्नरों की स्थिति कागज़ पर तो बेहतर दिखती है, लेकिन सामाजिक जीवन में उन्हें आज भी कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।संविधान के अनुसार किन्नर भी भारत के नागरिक हैं और उन्हें समानता, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जीवन जीने का अधिकार है। फिर भी समाज में उन्हें अक्सर उपेक्षा, तिरस्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और आवास जैसे बुनियादी क्षेत्रों में उनकी स्थिति कमजोर बनी रही।लंबे समय तक किन्नरों की पहचान को सरकारी दस्तावेज़ों में स्पष्ट स्थान नहीं मिला। स्कूलों में उन्हें भेदभाव झेलना पड़ा,जिसके कारण बहुत से किन्नर शिक्षा अधूरी छोड़ने को मजबूर हुए। नौकरी के अवसर कम होने के कारण कई किन्नर आजीविका के लिए भीख माँगने या नाच-गाने जैसे सीमित साधनों पर निर्भर रहे।हालाँकि समय के साथ बदलाव भी आए। वर्ष 2014 में सुप्रीम कोर्ट के NALSA फैसले ने किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में कानूनी मान्यता दी। इसके बाद उन्हें पहचान पत्र, वोट देने का अधिकार और सरकारी योजनाओं का लाभ मिलने का रास्ता खुला। यह निर्णय स्वतंत्र भारत में किन्नर समुदाय के लिए एक बड़ा मोड़ साबित हुआ।आज स्वतंत्र भारत में किन्नर समुदाय धीरे-धीरे अपनी पहचान और अधिकारों के लिए आवाज़ उठा रहा है। कुछ किन्नर शिक्षा, राजनीति, कला और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं, जो समाज में सकारात्मक बदलाव का संकेत है। फिर भी वास्तविक समानता और सम्मान पाने के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना बाकी है।

किन्नर विमर्श के सिद्धांत :-

किन्नर विमर्श का अर्थ है- किन्नर समुदाय के जीवन, पहचान, संघर्ष, अधिकार और सामाजिक स्थिति पर गंभीर विचार करना। यह विमर्श केवल साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज, राजनीति, कानून और संस्कृति से भी जुड़ा हुआ है। किन्नर विमर्श कुछ प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित है।

किन्नर विमर्श और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता :-

किन्नर विमर्श और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। किन्नर विमर्श का मूल उद्देश्य किन्नर समुदाय को अपनी पहचान, अपने अनुभव और अपने विचार खुलकर व्यक्त करने का अधिकार दिलाना है। जब तक किसी वर्ग को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता नहीं मिलती, तब तक उसका वास्तविक विकास संभव नहीं होता।अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है- बोलने, लिखने, सोचने और अपनी पहचान को

बिना डर के सामने रखने का अधिकार। भारतीय संविधान ने यह अधिकार हर नागरिक को दिया है, और इसमें किन्नर समुदाय भी पूरी तरह शामिल है। लेकिन व्यवहार में लंबे समय तक किन्नरों को यह स्वतंत्रता नहीं मिल पाई। समाज के डर, अपमान और भेदभाव के कारण उनकी आवाज़ दबा दी गई।किन्नर विमर्श इस चुप्पी को तोड़ने का प्रयास है। जब किन्नर अपने जीवन की सच्चाइयों को साहित्य, आत्मकथा, कविता और लेखन के माध्यम से सामने लाते हैं, तब समाज को उनके संघर्ष और पीड़ा का वास्तविक रूप दिखाई देता है। यह अभिव्यक्ति केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं होतीहैं ।केवल व्यक्तिगत अनुभव होता हैं। बल्कि सामाजिक अन्याय के खिलाफ एक सशक्त आवाज़ बन जाती है।

हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों की कृतियों में किन्नरों का चित्रण :-

हिंदी साहित्य में किन्नरों का चित्रण समय के साथ बदलता रहा है। प्रारंभिक साहित्य में किन्नर पात्र सीमित और प्रतीकात्मक रूप में दिखाई देते हैं, जबकि समकालीन साहित्य में उनका चित्रण अधिक यथार्थपूर्ण, संवेदनशील और मानवीय होता गया है। हिंदी के कई प्रमुख साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से किन्नर जीवन के अलग-अलग पहलुओं को सामने रखा है।भारतीय संविधान केवल कानूनों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ हर व्यक्ति को समानता, स्वतंत्रता, न्याय और सम्मान के साथ जीने का अधिकार हो। जब यही संवैधानिक मूल्य साहित्य में दिखाई देते हैं, तो उसे संवैधानिक मूल्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति कहा जाता है। साहित्य समाज की भावनाओं और सच्चाइयों को शब्द देता है, इसलिए यह संविधान के विचारों को आम लोगों तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम बन जाता है।

किन्नर विमर्श के संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति का विशेष महत्व है। लंबे समय तक किन्नर समुदाय को समाज में उपेक्षा, तिरस्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ा। संविधान ने भले ही उन्हें समान अधिकार दिए हों, लेकिन व्यवहार में उन्हें वह सम्मान नहीं मिला। ऐसे में साहित्य ने किन्नरों की पीड़ा, संघर्ष और उम्मीदों को सामने लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।स्वतंत्रता संविधान का दूसरा महत्वपूर्ण मूल्य है। इसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार शामिल है। किन्नर विमर्श में यह स्वतंत्रता तब दिखाई देती है, जब किन्नर लेखक और रचनाकार बिना डर के अपनी पहचान, अपने अनुभव और अपने जीवन की सच्चाइयों को लिखते हैं।आत्मकथाएँ, कविताएँ और कहानियाँ किन्नरों की दबाई गई आवाज़ को समाज के सामने लाती हैं।यह साहित्यिक अभिव्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 की भावना को मजबूत करती है।संविधान का एक और मूल मूल्य है न्याय। न्याय का अर्थ केवल कानूनी न्याय नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय भी है। किन्नर विमर्श का साहित्य समाज से यह सवाल करता है कि जब संविधान सभी को बराबरी का अधिकार देता है, तो किन्नरों को शिक्षा, रोजगार और सम्मान से क्यों वंचित रखा जाता है। यह प्रश्न साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना देता है।

भविष्य की संभावनाएँ एवं दिशा:-

किन्नर विमर्श ने हिंदी साहित्य और समाज में एक नई चेतना को जन्म दिया है। अब यह विमर्श केवल पीड़ा और संघर्ष तक सीमित नहीं रहा, बल्कि अधिकार, सम्मान और समानता की बात करने लगा है।

भविष्य में किन्नर विमर्श के और अधिक व्यापक, सशक्त और प्रभावशाली होने की पूरी संभावना है।

किन्नर समुदायः शिक्षा और रोजगारः-

किन्नर समुदाय लंबे समय तक समाज में उपेक्षित रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण था शिक्षा और रोजगार में उनकी सीमित भागीदारी। आज संविधान और कानून उन्हें अधिकार देते हैं, लेकिन वास्तविक जीवन में अभी भी कई कठिनाइयाँ हैं।

निष्कर्ष :-

संवैधानिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने हिंदी साहित्य को न सिर्फ खुलापन दिया है, बल्कि किन्नर समुदाय को अपनी बात समाज के सामने रखने का अवसर भी दिया है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श के माध्यम से उनके जीवन की सच्चाई, संघर्ष, अपमान, उपेक्षा और साथ-साथ उनके सपनों को भी सामने लाया गया है। इससे यह साफ होता है कि किन्नर कोई अलग या कमजोर वर्ग नहीं हैं, बल्कि वे भी समान अधिकारों के हकदार नागरिक हैं।शिक्षा के क्षेत्र में देखा जाए तो साहित्य और संवैधानिक अधिकारों की जानकारी किन्नर समाज को जागरूक बना रही है। अब किन्नर शिक्षा को अपने भविष्य का आधार मानने लगे हैं। पढ़ाई के माध्यम से वे आत्मनिर्भर बन सकते हैं और अपने अधिकारों को समझकर समाज में सम्मानजनक स्थान पा सकते हैं। जब शिक्षा का अवसर मिलेगा, तो उनका आत्मविश्वास भी बढ़ेगा और वे मुख्यधारा से जुड़ पाएँगे।रोज़गार की दृष्टि से यह विमर्श बहुत उपयोगी है, क्योंकि साहित्य समाज की सोच को बदलने का काम करता है। जब समाज की मानसिकता बदलेगी, तभी किन्नरों को सरकारी और निजी क्षेत्रों में रोज़गार के समान अवसर मिलेंगे। शिक्षाऔर निजी क्षेत्रों में रोज़गार के समान अवसर मिलेंगे। शिक्षा और कौशल के आधार पर किन्नर भी नौकरी, व्यवसाय और स्वरोज़गार की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इससे उनका जीवन सम्मानजनक और सुरक्षित बन सकता है।

भविष्य की संभावना को देखें तो हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श एक सकारात्मक संकेत है। आने वाले समय में यदि शिक्षा, रोज़गार और संवैधानिक अधिकारों को सही तरीके से लागू किया जाए, तो किन्नर समाज आत्मनिर्भर, सशक्त और स्वाभिमानी बन सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, हिंदी साहित्य और किन्नर विमर्श मिलकर एक ऐसे समाज की नींव रखते हैं जहाँ हर व्यक्ति को बराबरी, सम्मान और आगे बढ़ने का अवसर मिल सके

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत का संविधान - भारत सरकार
2. मानवाधिकार आयोग मानवाधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
3. किन्नर / ट्रांसजेंडर विमर्श से संबंधित ग्रंथ
4. लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी मी हिजडा... मी लक्ष्मी
5. आकाश पांडेय - किन्नरः समाज और साहित

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

अस्मिता मूलक आदिवासी कथा साहित्य में आदिवासियत

डॉ. जयंतिलाल. बी. बारीस

आर. के. देसाई महाविद्यालय, वापी

शोध सार :

आदिवासी साहित्य से तात्पर्य आदिवासी दर्शन (आदिवासियत) पर आधारित साहित्य से है। वैसे तो आदिवासियत का मूल स्रोत पुरखा साहित्य है और इसे मौखिक साहित्य भी कहा जा सकता है। आदिवासी चिन्तक मौखिक और लिखित साहित्य के भेद को नहीं मानते तथा इसे ही पुरखा साहित्य अथवा 'ऑरेचर' कहना पसंद करते हैं। समकालीन कथा साहित्य लेखन में हाशिये के समाजों को जगह मिली और विभिन्न आधुनिक विमर्शों का जन्म हुआ जिसमें आदिवासी विमर्श का प्रमुख स्थान है। आदिवासी कथा साहित्य आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति है। आदिवासी समाज सदियों से सामुदायिकता, सहजीविता, समानता तथा स्वतंत्रता की पद्धति पर जीवन यापन करता आया है, यही जीवन उनके साहित्य के केंद्र में है। इन्हें ही आदिवासियत का मूल तत्त्व कहा जा सकता है।

बीज शब्द : आदिवासियत, आदिवासी साहित्य, जीवन-मूल्य, जीवन-संघर्ष, अस्तित्व, अस्मिता, सामुदायिकता, संस्कृति, संस्कृतिकरण, वैश्वीकरण, पूंजीवाद, विस्थापन, प्रकृति, पर्यावरण, रचाव-बचाव, पुरखा साहित्य।

मूल आलेख :

आदिवासी कथा साहित्य में विस्थापन की समस्या कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में देखने को मिलती है। समकालीन कथा साहित्य के साहित्यकारों ने विभिन्न विषयों एवं मुद्दों पर अपनी लेखनी चलायी है। आज उन विषयों पर भी लेखन कार्य किये जा रहे हैं जिन विषयों को सदियों से नज़रअंदाज किया गया था। मुख्यधारा के समाज और साहित्य में दलित, स्त्री और आदिवासी प्रश्न हाशिये पर रहा है, किन्तु आज इन सभी विषयों पर साहित्य रचा जा रहा है। आदिवासी समाज की अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपने जीवन-मूल्य और अपने जीवन संघर्ष रहे हैं, जिनका आदिवासी कथा साहित्य में यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। आदिवासी कथा साहित्य में कथा या गल्प की मात्रा न के बराबर होती है। उनमें आदिवासी समाज की विभिन्न परिस्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। आदिवासी कथाकारों में रोज केरकेट्टा, वाल्टर भेंगरा तरुण, पीटर पॉल एक्का, हरिराम मीणा, मंगल सिंह मुंडा, रणेंद्र, संजीव, राकेश कुमार सिंह, मधु कांकरिया, श्रीप्रकाश मिश्र, तेजिंदर, पुन्नी सिंह आदि का नाम लिया जा सकता है।

विस्थापन आदिवासियों के लिये किसी अभिशाप से कम नहीं है। भारत सरकार के द्वारा जारी रिपोर्ट 'रिपोर्ट ऑफ़ द हाई लेवल कमेटी ऑन सोशियो इकॉनोमिक, हेल्थ एंड एजुकेशन स्टेटस ऑफ ट्राइबल कम्युनिटी' 2014 के अनुसार भूमि अधिग्रहण और विस्थापन के सबसे ज्यादा शिकार आदिवासी (47 प्रतिशत) हुए हैं। विस्थापन की समस्या इस अर्थ में भी सबसे भयावह है कि इससे उनके अस्तिव और अस्मिता पर सीधा

खतरा उत्पन्न हो जाता है। उनकी आदिवासियत पर ही प्रश्नचिह्न लग जाता है क्योंकि विस्थापन अस्मिता या सांस्कृतिक पहचान को ही संकट में डाल देता है। संस्कृति खतरे में इस अर्थ में आती है कि जब आदिवासी दूसरी जगह विस्थापित होकर जाते हैं तो मुख्यधारा की संस्कृति और भाषा के साथ समन्वय करने की कोशिश व संघर्ष के क्रम में उनकी अपनी भाषा तथा रहन-सहन, सबकुछ प्रभावित होना शुरू हो जाता है। इसके कई कारण हैं जिसमें मुख्यधारा के समाज द्वारा आदिवासी संस्कृति व भाषा को हीनता की दृष्टि से देखना भी शामिल है। इस सन्दर्भ में शम्भुनाथ का कहना है कि "उत्तर-आधुनिक बुद्धिजीवी 'उच्च संस्कृति' और 'निम्न संस्कृति' का नव- औपनिवेशिक मुहावरा उठा कर बिना सोचे- समझे लोक संस्कृति को 'निम्न संस्कृति' में फेंक देते हैं- इसे सामाजिक नरक के समान समझते हैं।"[1] हालाँकि मुख्यधारा के समाज द्वारा आदिवासियों की संस्कृति को औपनिवेशिक या नव-औपनिवेशिक दोनों ही दौर में निम्न समझा गया। औपनिवेशिक काल के दस्तावेज हमें यह बताते हैं कि आदिवासियों को उस काल में असभ्य, जंगली और बर्बर समझा जाता था।

क्योंकि विस्थापन आदिवासियों के अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष का सबसे बड़ा कारण है, इसलिए विस्थापन की त्रासदी को आदिवासी कथा साहित्य में प्रमुखता से जगह दी गयी है। विस्थापन और उसके बाद मुआवजे की स्थिति के बारे में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में कथन है- "भले ही मुआवजा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न! हमारी आने वाली पीढियां तो बीमार होती ही रहेंगी न! हमारी विकलांगता, हमारी असामयिक मौत देख वैसे भी हमारे पुरखों की आत्मा रो रही है। कंपनी चाहे कितना भी मुआवजा क्यों न दे दे, बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर हमारे स्वास्थ्य, हमारी संस्कृति' में फेंक देते हैं- इसे सामाजिक नरक के समान समझते हैं।"[1] हालाँकि मुख्यधारा के समाज द्वारा आदिवासियों की संस्कृति को औपनिवेशिक या नव-औपनिवेशिक दोनों ही दौर में निम्न समझा गया। औपनिवेशिक काल के दस्तावेज हमें यह बताते हैं कि आदिवासियों को उस काल में असभ्य, जंगली और बर्बर समझा जाता था।

क्योंकि विस्थापन आदिवासियों के अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष का सबसे बड़ा कारण है, इसलिए विस्थापन की त्रासदी को आदिवासी कथा साहित्य में प्रमुखता से जगह दी गयी है। विस्थापन और उसके बाद मुआवजे की स्थिति के बारे में 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में कथन है- "भले ही मुआवजा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न! हमारी आने वाली पीढियां तो बीमार होती ही रहेंगी न! हमारी विकलांगता, हमारी असामयिक मौत देख वैसे भी हमारे पुरखों की आत्मा रो रही है। कंपनी चाहे कितना भी मुआवजा क्यों न दे दे, बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर हमारे स्वास्थ्य, हमारी स्वच्छ हवा को, जो हम गरीबों की एकमात्र पूंजी थी, तो वापस नहीं ला सकती है न! जब इन तमाम मुसीबतों की जड़ ये खदानें, ये मीलें हैं तो क्यों न इन्हें ही बंद करने की हम मांग करें।"[2] दरअसल इस उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार ने मरंग गोड़ा (जादूगोड़ा) में यूरेनियम खनन और रेडियोधर्मिता के दुष्प्रभाव के कारण विस्थापित और पीढ़ियों तक उसके दुष्प्रभाव झेलते आदिवासियों के संघर्ष का विशद चित्रण किया है। 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'पार', 'डूब' आदि उपन्यास विस्थापन की समस्या पर

आधारित हैं। पीटर पॉल एक्का की 'परती जमीन', 'छोटी नदी बड़ी नदी' आदि कहानियों में भी विस्थापन का दर्द झलकता है।

भूमंडलीकरण के आगमन के पश्चात् आर्थिक विकास की अंधी दौड़ ने मशीनों पर आधारित जीवन-शैली को जन्म दिया जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। आज जिस तेजी से पर्यावरण और पारिस्थितिकी-तंत्र की क्षति हो रही है उसमें संतुलन की आवश्यकता है। पर्यावरण संतुलन के बिना जीवनचक्र समाप्त हो जाएगा इस बात को आदिवासी समुदायों से बेहतर शायद ही कोई समझता है। यही कारण है कि आदिवासी समाज प्रकृति में मौजूद प्रत्येक तत्व का सम्मान करता है और उसने अपने जीवन मूल्य भी उसी के अनुरूप बनाये हैं। मसलन आदिवासी जंगलों में या जंगलों के आस-पास रहते आये हैं। उनका जीवन वनोपज, कंदमूल और शिकार आदि पर निर्भर रहा है किन्तु आदिवासी वनों से उतना ही लेते हैं जितने में उनका जीवन सुलभता से चलता रहे। वे वन-संरक्षण को अपना कर्तव्य मानते हैं ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए एक बेहतर दुनिया छोड़ कर जाएँ। यही कारण है कि देश भर में आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में ही जंगल और वन्य जीव बचे रह गये हैं| आदिवासी समाज की तरह आदिवासी कथा साहित्य में भी रचाव-बचाव की संस्कृति को प्रमुखता से देखा जा सकता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में विकिरण-प्रदूषण तथा विस्थापन जैसी समस्या को केंद्र में रखा गया है। उपन्यासकार महुआ माजी ने विकिरण के दुष्प्रभाव से होने वाली खतरनाक बिमारियों की ओर हमारा ध्यान दिलाया है। "सगेन टोकता, मगर कोई इस मुद्दे को गंभीरता से नहीं लेता। या फिर लेता भी तो देशद्रोही का आरोपी बनने से कतराता। तो क्या अब तक जान बूझकर विकिरण के मुद्दे को दबाये रखा गया? सगेन सोचता है, ऐसा कैसे हो सकता है कि किसी नेता को, किसी अफसर को, या इलाके के किसी उच्च आदिवासी जंगलों में या जंगलों के आस-पास रहते आये हैं। उनका जीवन वनोपज, कंदमूल और शिकार आदि पर निर्भर रहा है किन्तु आदिवासी वनों से उतना ही लेते हैं जितने में उनका जीवन सुलभता से चलता रहे। वे वन-संरक्षण को अपना कर्तव्य मानते हैं ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए एक बेहतर दुनिया छोड़ कर जाएँ। यही कारण है कि देश भर में आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में ही जंगल और वन्य जीव बचे रह गये हैं| आदिवासी समाज की तरह आदिवासी कथा साहित्य में भी रचाव-बचाव की संस्कृति को प्रमुखता से देखा जा सकता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में विकिरण-प्रदूषण तथा विस्थापन जैसी समस्या को केंद्र में रखा गया है। उपन्यासकार महुआ माजी ने विकिरण के दुष्प्रभाव से होने वाली खतरनाक बिमारियों की ओर हमारा ध्यान दिलाया है। "सगेन टोकता, मगर कोई इस मुद्दे को गंभीरता से नहीं लेता। या फिर लेता भी तो देशद्रोही का आरोपी बनने से कतराता। तो क्या अब तक जान बूझकर विकिरण के मुद्दे को दबाये रखा गया? सगेन सोचता है, ऐसा कैसे हो सकता है कि किसी नेता को, किसी अफसर को, या इलाके के किसी उच्च शिक्षित व्यक्ति को विकिरण और उसके दुष्प्रभाव के बारे में पता ही न हो? यह कैसा षड्यंत्र है? आखिर क्यों यहाँ के अशिक्षित, अल्पशिक्षित आदिवासियों को इतनी बड़ी और भयानक सच्चाई से अब तक अनजान रखा गया? क्यों उन्हें सावधान नहीं किया गया? क्यों नहीं बताया गया कि टेलिंग डैम के ऊपर से नंगे पांव चलना या बच्चों का वहां खेलना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त घातक है? क्यों खुदाई के दौरान निकलने वाले ऐसे पत्थरों को जिनमें कम मात्रा में यूरेनियम होता है, सड़क किनारे यूँही

फेंक दिया जाता है? अज्ञानतावश कितने ही लोग उन्हें उठा कर ले जाते हैं और घर की दीवार, छत या चहारदीवारी बनाने के काम लाते हैं। उनसे लगातार निकलने वाली गामा किरणों, रैडोन गैस के शिकार होते रहते हैं बेचारे... . क्यों खदान या मिल में काम करने वाले मजदूरों को यूरेनियम की धूल लगे कपड़ों को पहन कर घर जाने से मना नहीं किया गया? यह क्यों नहीं बताया गया कि इससे घर भर के लोग विकिरण से प्रभावित हो सकते हैं? खास करके वह पत्नी, जो इसे नंगे हाथों से धोती है? क्यों नहीं बताया गया कि खदान से विस्फोट करके निकाले गये यूरेनियम अयस्क वाले पत्थरों से धुल-धुल कर आते बरसाती जल के कारण उनके कुओं, तालाबों और नदी के पानी में, उनकी मिटटी में, उनके खेतों की फसल में जहर घुल चुका है? क्यों खनन कार्य के लिए, मिल या टेलिंग डैम के लिए उनकी जमीन लेते वक़्त उन्हें यह नहीं बताया गया कि उनसे न सिर्फ उनकी जमीन ली जा रही है या उनका जंगल लिया जा रहा है बल्कि उनका स्वास्थ्य, उनका खुशहाल जीवन भी छीना जा रहा है। स्वयं सगेन ने अपने प्रिय ततंग और जियंग को खोया है इस जहर के कारण। भाई और पिता इस लाइलाज बीमारी से ग्रस्त हैं। बेचारी ताई डाइन होने का लांछन लेकर अपमानजनक जीवन जी रही है। सगेन जितना सोचता, उतना ही तिलमिलाने लगता। सोचता- पिताजी को यूरेनियम से होने वाले कुप्रभाव के बारे में कुछ भी पता नहीं था, उन्होंने मजदूरों की छोटी- छोटी समस्याओं के लिए आवाज़ उठाई। आज जब हमें इतनी बड़ी त्रासदी के बारे में पता चल गया है तो हम चुप कैसे रह सकते हैं? अगली पीढ़ी को बचाने के लिए हमें लड़ना ही होगा।"[3]

आदिवासी कथाकार वाल्टर भेंगरा 'तरुण' के साहित्य में प्रकृति अपने नैसर्गिक रूप में मौजूद है। उनकी कहानी 'जंगल की ललकार' में चानो और पांडू गाँव के रैयती जमीन में पेड़ लगा रहे हैं। एक तरह से वे अपने लिए अलग जंगल का निर्माण कर रहे हैं जिस पर कोई सरकार भी अपना हक न जता पाए। कहानी का पात्र पांडू का कथन है- "हम अपना जंगल लगा रहे हैं आबा! यह गाँव टेलिंग डैम के लिए उनकी जमीन लेते वक़्त उन्हें यह नहीं बताया गया कि उनसे न सिर्फ उनकी जमीन ली जा रही है या उनका जंगल लिया जा रहा है बल्कि उनका स्वास्थ्य, उनका खुशहाल जीवन भी छीना जा रहा है। स्वयं सगेन ने अपने प्रिय ततंग और जियंग को खोया है इस जहर के कारण। भाई और पिता इस लाइलाज बीमारी से ग्रस्त हैं। बेचारी ताई डाइन होने का लांछन लेकर अपमानजनक जीवन जी रही है। सगेन जितना सोचता, उतना ही तिलमिलाने लगता। सोचता- पिताजी को यूरेनियम से होने वाले कुप्रभाव के बारे में कुछ भी पता नहीं था, उन्होंने मजदूरों की छोटी- छोटी समस्याओं के लिए आवाज़ उठाई। आज जब हमें इतनी बड़ी त्रासदी के बारे में पता चल गया है तो हम चुप कैसे रह सकते हैं? अगली पीढ़ी को बचाने के लिए हमें लड़ना ही होगा।"[3]

आदिवासी कथाकार वाल्टर भेंगरा 'तरुण' के साहित्य में प्रकृति अपने नैसर्गिक रूप में मौजूद है। उनकी कहानी 'जंगल की ललकार' में चानो और पांडू गाँव के रैयती जमीन में पेड़ लगा रहे हैं। एक तरह से वे अपने लिए अलग जंगल का निर्माण कर रहे हैं जिस पर कोई सरकार भी अपना हक न जता पाए। कहानी का पात्र पांडू का कथन है- "हम अपना जंगल लगा रहे हैं आबा! यह गाँव का जंगल होगा। इसे सरकार भी नहीं ले सकती है यह हमारी रैयती खूंटकटी जमीन है। अब हमें तुम्हारे समान जेल जाना नहीं पड़ेगा। हम अपने पेड़ों की लकड़ियाँ काटेंगे। कोई सिपाही मंगरी और चानो को पकड़ कर नहीं ले जाएगा।"[4] इस प्रकार हम देख

सकते हैं कि आदिवासी स्वस्थ प्रकृति और स्वस्थ जीवन के लिए हमेशा से संघर्षरत रहे हैं। वे अपने आस पास के पर्यावरण और समूचे सृष्टि जगत के संरक्षण के लिए तत्पर रहते हैं।

वैश्वीकरण अर्थात जिसमें विभिन्न देश अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टियाँ निर्बाध रूप से अदान-प्रदान कर पाते हैं। कहा गया कि भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण से व्यापार, शिक्षा, रोजगार और विभिन्न देशों के आपसी सम्बन्धों में मजबूती आयेगी, जिसमें पूरा विश्व एक गाँव बन जाएगा जो सबकी पहुँच में होगा। सबके लिए समान अवसर होंगे। वैश्वीकरण का प्रचार 'वैश्विक कुटुंब' के रूप में किया जा रहा और कई गंभीर खामियों के बावजूद भूमंडलीकरण विश्व के लिए अनिवार्य बनता जा रहा है। सबके लिए समान अवसर तो बिल्कुल भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वैश्वीकरण का प्रभाव प्रत्येक समाज पर अलग है। वस्तुस्थिति ये है कि आदिवासी समाज के लिए यही भूमंडलीकरण वरदान से ज्यादा अभिशाप साबित हो रहा है। औद्योगीकरण, रेलवे, बाँध निर्माण आदि के लिए आदिवासियों की जमीन ली गयी। "आज कुछ लोग यह कहकर पिछड़े इलाकों में आदिवासी किसानों की जमीन हड़पने की बात कहते हैं ताकि क्षेत्र में औद्योगिकीकरण को और विकास व रोजगार का आधार तैयार हो। नंदीग्राम में टाटा कार-प्लांट के लिए किसानों की जमीन भी यही कहकर छीनने की गलती वहां के खुद को वामपंथी मानने वाली सरकार ने की थी। उसका खामियाजा भी हाल के चुनाव में उठाना पड़ गया। जो लोग इस तर्क के झांसे में आते हैं, उन्हें झारखण्ड की वास्तविकता से अवगत कराना चाहिए जहाँ बड़े पैमाने पर निजी व सार्वजानिक परियोजनाएं लायी गयी पर उनका लाभ वहां के स्थानीय लोगों तक नहीं पंहुचा।"[5] अर्थात वैश्वीकरण और तथाकथित विकास परियोजनाओं से आदिवासी समाज में विस्थापन जैसी समस्या बढ़ गयी। विस्थापन ने आदिवासी समाज के अस्तित्व और अस्मिता पर खतरा उत्पन्न कर दिया। अब आदिवासी समाज अपने अस्मिता व अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है। यह निर्विवाद है

यही भूमंडलीकरण वरदान से ज्यादा अभिशाप साबित हो रहा है। औद्योगीकरण, रेलवे, बाँध निर्माण आदि के लिए आदिवासियों की जमीन ली गयी। "आज कुछ लोग यह कहकर पिछड़े इलाकों में आदिवासी किसानों की जमीन हड़पने की बात कहते हैं ताकि क्षेत्र में औद्योगिकीकरण को और विकास व रोजगार का आधार तैयार हो। नंदीग्राम में टाटा कार-प्लांट के लिए किसानों की जमीन भी यही कहकर छीनने की गलती वहां के खुद को वामपंथी मानने वाली सरकार ने की थी। उसका खामियाजा भी हाल के चुनाव में उठाना पड़ गया। जो लोग इस तर्क के झांसे में आते हैं, उन्हें झारखण्ड की वास्तविकता से अवगत कराना चाहिए जहाँ बड़े पैमाने पर निजी व सार्वजानिक परियोजनाएं लायी गयी पर उनका लाभ वहां के स्थानीय लोगों तक नहीं पंहुचा।"[5] अर्थात वैश्वीकरण और तथाकथित विकास परियोजनाओं से आदिवासी समाज में विस्थापन जैसी समस्या बढ़ गयी। विस्थापन ने आदिवासी समाज के अस्तित्व और अस्मिता पर खतरा उत्पन्न कर दिया। अब आदिवासी समाज अपने अस्मिता व अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है। यह निर्विवाद है कि वैश्वीकरण और विस्थापन का चोली-दामन का साथ है। चूँकि साहित्य और समाज एक दूसरे से अभिन्न होते हैं खासकर अस्मितावादी साहित्य। अतः आदिवासी कथा साहित्य के मूल स्वर के रूप में भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव का प्रमुखता से चित्रण मिलता है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी समाज (असुर जनजाति) पर भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव

पर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है। इस उपन्यास में कथाकार रणेंद्र ने वैश्वीकरण के आगमन और आदिवासी समुदायों के लिए उसके निहितार्थ का बेजोड़ चित्रण किया है, "हम दोनों इस बात से सहमत थे कि ग्लोबल गाँव के आकाशचारी देवता और राष्ट्र-राज्य, दोनों एक दूसरे में घुल-मिल गये हैं। दोनों को अलगाना अब मुश्किल है। रंगमंच की कठपुतलियों की डोर किनके हाथों में है यह बात छुपी नहीं रही। सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों की खनिज सम्पदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि अरे, इनपर तो हमारा हक है। उन्हें मालूम है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं, तो हक तो उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर, जंगलों में, घूमते हुए लंगोट पहने असुर-बिरजिया, उरांव-मुंडा आदिवासी, दलित-सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ़्त होती है। वे इन कीड़ों-मकोड़ों से जल्द निजात पाना चाहते हैं। तब इन इलाकों में झाड़ू लगाने का काम शुरू होता है।"[6]

पीटर पॉल एक्का रचित उपन्यास 'पलाश के फूल' में भी विकास परियोजनाओं के फलस्वरूप होने वाले विस्थापन के दर्द को देखा जा सकता है- "बेहिसाब खदान, कोलियारी खुलेगी। नदियों में पुल बनेंगे। बिजली तैयार होगी, नहरें खुलेंगी! वर्षों की मेहनत से बनी-बनाई जमीन डूब जाएगी। मुआवजे के नाम पर दिखावे की रकम मिलेगी। घर-बार छोड़ना होगा। घर के आदमी विस्थापित कर दिए जाएँगे। दूर के इलाके से आए लोगों का राज हो जाएगा। स्थानीय आदिवासी चाय बागानों, ईंट-भट्ठों की राह लेंगे।"[7] 'गायब होता देश' – रणेंद्र, 'जहाँ बाँस फूलते हैं'- श्री प्रकाश मिश्र इत्यादि रचनाओं में आदिवासी समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया गया है।

आदिवासी समाज हमेशा से उत्सवधर्मी समाज रहा है| आदिवासियत और उत्सवधर्मिता दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं| आदिवासी अपने जीवन संघर्ष के बीच जीवन को जीना नहीं भूलते| कथाकार संजीव आदिवासियों के उत्सवप्रियता पर अपने उपन्यास 'पांव तले की दूब' में लिखते हैं- "आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें हैं- अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता| अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता उन्हें कंगाल बनाती रहती है| हँड़िया या दारू ये पियेंगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएंगे|"[8] उत्सवधर्मिता आदिवासी समुदायों के जीवन मूल्य में है अतः आदिवासी कथा साहित्य में इसका भरपूर चित्रण देखने को मिलता है| लगभग सभी आदिवासी कथाकारों ने अपने साहित्य में आदिवासियों के पर्व त्योहारों एवं उनके उत्सवप्रेमी प्रकृति को प्रमुखता से जगह दी है|

आदिवासी समाज का वास्तविक इतिहास क्या है या था इससे ज्यादा हमारा जोर इस बात पर है कि लम्बे समय तक इतिहास लेखन परंपरा में आदिवासी समाज एक सिरे से गायब कैसे और क्यों है? आदिवासी हमेशा से अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्षरत रहे हैं। आर्यों के आगमन से ही आदिवासियों को विभिन्न प्रकार के संघर्ष का सामना करना पड़ा। आर्यों से बचने के लिए आदिवासी जंगलों और घाटियों में अंदर पीछे हटते गये। आदिवासियों ने अपने खिलाफ हो रहे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध समय समय पर अनेक विद्रोह व आन्दोलन किये हैं किन्तु उनका इतिहास में नामों निशान नहीं मिलता। भारत में ईस्ट

इंडिया कंपनी के आगमन के बाद पहाड़िया विद्रोह (1766), तिलका मांझी का विद्रोह (1784), चुआड़ विद्रोह (1769), तमाड़ विद्रोह (1819-20), कोल विद्रोह (1831-32), भील विद्रोह (1881), गोविन्द गिरी:भील आन्दोलन (1913) आदि आन्दोलनों का इतिहास में कहीं जिक्र तक नहीं मिलता। बिरसा आन्दोलन और हूल विद्रोह का छिट-फुट जिक्र मिल जाता है किन्तु आन्दोलन की व्यापकता की तुलना में इतना काफी नहीं है। इन आन्दोलनों को पहले ब्रिटिशों द्वारा और अब अपने ही देश के इतिहास लेखन में बहुत ही चालाकी से साइडलाइन कर दिया गया। अतः कथा साहित्य में आदिवासियों के इस (इतिहास लेखन परम्परा में नजरअंदाज करने के) दर्द की अभिव्यक्ति हुई है। हिंदी साहित्य में 'हूल विद्रोह' को केंद्र में रखकर दो उपन्यास लिखे गये हैं- एक राकेश कुमार सिंह द्वारा 'जो इतिहास में नहीं हैं'(2005) और दूसरा मधुकर द्वारा 'बाजत अनहद ढोल' (2005)। 'जो इतिहास में नहीं हैं' उपन्यास में 'हूल विद्रोह' के कारणों का प्रमुखता से पड़ताल करते हुए विद्रोह के अंजाम का विशद चित्रण मिलता है। 'हूल विद्रोह' की वजहों में प्रमुख रूप से जमींदारों और महाजनों की लूट और अत्याचार के साथ आदिवासी स्त्रियों का शोषण-बलात्कार, पुलिस-प्रशासन की अनदेखी आदि थी। एक और बड़ी वजह थी संथालों की स्वाभिमानी जीवन शैली। 'हूल' का नारा ही था-'अबुआ दिसोम, अबुआ राज'। "उपन्यासकार राकेश कुमार सिंह ने महाजनों की लूट, जमींदारों के अत्याचार, पुलिस-प्रशासन द्वारा शिकायतों की उपेक्षा व उसके गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार को 'हूल' की वजहों में स्वीकार किया है। ऐतिहासिक ग्रंथों व दूसरे दस्तावेजों के अध्ययन से भी इन वजहों का पता चलता है।"[9] उन दिनों आदिवासी महिलाओं के साथ इस तरह की ज्यादतियां आम हो गयी थी। पुलिस, वन-अधिकारी, ठेकेदार-जमींदार आदि दिकु इन भोले-भाले आदिवासी महिलाओं पर अपना हक मानते थे जिनका यथार्थपूर्ण और मार्मिक ढंग से इस उपन्यास में अभिव्यक्ति मिला है। केदार प्रसाद मीणा 'हूल क्रांति' पर लिखी दोनों किताबों 'जो इतिहास में नहीं हैं' और 'बाजत अनहद ढोल' की समीक्षा करते हुए लिखते हैं- "मधुकर सिंह ने अपने उपन्यास 'बाजत अनहद ढोल' संथाल आदिवासी समाज की जानकारियाँ लगभग गलत रूप में प्रस्तुत की हैं। उन्होंने संथाल हूल के ऐतिहासिक तथ्यों व सन्दर्भों की भी उपेक्षा की है। उपन्यासकार ने 'हूल' के घटनाक्रमों का मनमाना वर्णन किया है। इससे पाठकों के बीच 'हूल' के बारे में या तो कोई समझ ही नहीं बनती है या फिर गलत समझ बनती है।"[10]

वहीं 'जो इतिहास में नहीं हैं' उपन्यास के बारे में उनका (केदार प्रसाद मीणा) निष्कर्ष है कि "राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' अपने कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद हिंदी में आदिवासी विद्रोहों पर लिखा गया एक श्रेष्ठ उपन्यास है। उपन्यासकार ने 'हूल' का लगभग वैसा ही वर्णन किया है, जैसा वह इतिहास ग्रंथों में है। लेखक को आदिवासी समाज की भी ठीक ठाक जानकारी है, इसलिए उनके समाज व भौगोलिक परिस्थितियों के बारे में किया गया काफी संवेदनशील व सर्जनात्मक बन पड़ा है। जमींदारों के अत्याचार व महाजनों की लूट के प्रसंग सजीव दृश्य बन जाते हैं। उपन्यास में तथ्यात्मक गड़बड़ियाँ एकाध ही हैं।"[11]

'धूणी तपे तीर'- हरिराम मीणा द्वारा राजस्थान के बाँसवाड़ा जिले के मानगढ़ में हुए आदिवासियों के जनसंहार को आधार बना कर लिखा गया उपन्यास है। इसकी भूमिका में उपन्यासकार ने अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए

लिखा है- "स्पष्ट है कि मनुष्य के हक की लड़ाई के इतिहास को मनुष्य-विरोधी शोषक-शासकों ने दबाया है और उनके आश्रय में पलने वाले इतिहासकारों ने उनका साथ दिया है।"[12]

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में भी असुर जनजाति का इतिहास झलकता है। डॉ. आशीष त्रिपाठी अपने लेख 'ग्लोबल गाँव के देवता' का राजनैतिक परिप्रेक्ष्य' में लिखते हैं- "इक्कीसवीं सदी के युवा रचनाकार रणेंद्र आदिवासी शोषण और संघर्ष की पूरी ऐतिहासिक श्रृंखला को सामने रखते हैं। कोई उपन्यास या कहानी आदिवासियों के जीवन के विषाद या दुःख-दर्द को बयाँ करने से आगे 3000 वर्षों से भी ज्यादा समय से चले आ रहे संघर्ष को आज के संघर्ष से जोड़ कर देखती है, तब एक सम्पूर्ण आदिवासी इतिहास दृष्टि उसके भीतर से झलकती है। रणेंद्र के पास यह उन्नत इतिहास-बोध है, जो 'ग्लोबल गाँव के देवता' को आदिवासी चिंताओं का मुकम्मल उपन्यास बनाता है। इस इतिहास-बोध के कारण ही लालचन असुर के चाचा का कटा हुआ सिर देखकर अमेरिकी आदिवासी राजा मैटकोम का कटा हुआ सर कल्पना में उभरता है।"[13] श्री प्रकाश मिश्र द्वारा रचित उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते हैं' पूर्वोतर भारत मिजोरम की 'मिजो' जनजाति के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का दस्तावेज है। मिजोरम में 1958 ई. में अकाल पड़ा था। भारत सरकार ने उस अकाल में भूख से बिलखते आदिवासियों को नज़रअंदाज किया। जिसके फलस्वरूप वहां की जनता ने विद्रोह कर दिया। विद्रोह का नेतृत्व वहां के ही एक युवक लालडेन्गा ने किया। मिजो नेशनल आर्मी और फ़ौज के मध्य हुए मुठभेड़ का विशद चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। इस विद्रोह के दौरान पहले से ही अकाल से पीड़ित मिजोरम की जनता को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा। लड़ाई सालो-साल चलते जा रही थी और आम-जन जीवन त्रस्त था- "तीन वर्षों से ये लोग वाई से लड़ रहे हैं। पर अपना देश आज़ाद नहीं हुआ। हम जैसे जीते थे, उससे बदतर होते चले गये। आखिर कब वह आजाद होगा?... और फिर यह आजादी क्या है? अपना वतन क्या है?"[14]

इसके अलावा मधु कांकरिया ने पश्चिम बंगाल में 1967 ई. हुए 'नक्सलबाड़ी आन्दोलन' को केंद्र में रखकर 'खुले गगन के लाल सितारे' नामक उपन्यास की रचना की। इस प्रकार आदिवासी कथाकारों में आदिवासी समाज और उनके इतिहास के प्रति एक जिम्मेदाराना भाव मिलता है। उन्होंने कथा साहित्य के द्वारा आदिवासियों के इतिहास को मुख्यधारा के नोटिस में लाने का महत्वपूर्ण काम किया है। अपने इतिहास-बोध के परिणामस्वरूप ही आदिवासी चिन्तक और आदिवासी साहित्यकार पुरखा साहित्य की भी बात करते हैं।

मुख्यधारा के समाज की तुलना में आदिवासी समाज में स्त्री पुरुष सम्बन्धों में असमानता कम है| आदिवासी स्त्रियाँ अपने समाज में उतनी असुरक्षित महसूस नहीं करतीं जितनी की बाहरी समाज के सामने। बाहरी समाज के संपर्क में आते ही आदिवासी स्त्रियों की स्वतंत्र व स्वछन्द प्रवृत्ति उनके लिए मुसीबत बन जाती है क्योंकि बाहरी समाज में आदिवासी स्त्रियों को देह से ज्यादा कुछ नहीं समझा जाता है तथा उनके भोलेपन और स्वछन्द प्रवृत्ति का हरसंभव फ़ायदा उठाने की कोशिश की जाती है। अश्विनी कुमार पंकज द्वारा रचित 'गाड़ी लोहरदगा मेल' आदिवासी समाज के बाहरी दुनिया के संपर्क में आने के बाद की संघर्ष की कहानी कहती है। इस कहानी की आदिवासी नायिका सुसाना अपने गाँव से सब्जी बेचने रांची आई थी। रात हो जाने

पर आराम करने के लिए स्टेशन पर ही सो जाती है किन्तु यहाँ रातभर रुकने के लिए भी गार्ड या पुलिस वालों को रिश्वत देना पड़ता है। और जैसा कि एक स्त्री के साथ रिश्वत के रूप में रूपये पैसे से होती हुई बात देह तक आ पहुँचती है सुसाना के साथ भी ऐसा ही होता है। मना करने पर बात जबरदस्ती तक आ पहुँचती है। पुलिसवाले की जबरदस्ती से छुटकारा पाने के लिए सुसाना संघर्ष करती है और किसी तरह अपनी आवाज़ दूसरों तक पहुंचा देती है। सुसाना तो बच जाती है किन्तु सुसाना जैसी कितनी लड़कियों और महिलाओं के साथ इस तरह की दुर्घटना घटित होती है इसका अनुमान लगाया जा सकता है। सुसाना तो पहली बार सब्जी बेचने आई थी उसके पहले उसकी माँ सब्जी बेचने ट्रेन रांची आतीं रहीं हैं और उनके जैसे कितनी और आदिवासी महिलाओं को इन कुत्सित मानसिकता का शिकार होना पड़ता है ये कहानी के इन पंक्तियों में देखा जा सकता है- "...कानून तो कानून है। बूझी की नइ.... सभी औरतों को हियां देना ही पड़ता है। जोर-जबरजस्ती में कोउनो मज़ा थोड़े आता है ...."[15]

'जो इतिहास में नहीं हैं' उपन्यास 1855 की 'हूल' विद्रोह पर आधारित है। इसके रचयिता राकेश कुमार सिंह है। इस उपन्यास में गैर-आदिवासियों अथवा दिकुओं के संपर्क में आने बाद आदिवासी स्त्रियों की दयनीय व मार्मिक स्थिति स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है- "आदिवासी किशोरियों-युवतियों को प्रायः अपने तम्बू में खींच ले जाते थे। अकेली आदिवासिनें मद्यप ठेकेदार और वर्षों से स्त्री सुख को तरसते रेल अधिकारियों की वासना पूर्ति हेतु उठा ली जातीं थीं। राजमहल क्षेत्र के मजदूरों की स्थिति टुक-टुक ताकती रहने वाली उस बकरी की भांति थी जिसकी आँखों के सामने से उसके छौने उठा ले जाता है कसाई। रिरियाती-गिड़गिड़ाती आदिवासी स्त्रियों को खींचते देख माथे पर हाथ रखे मूक ताकते रहते थे निर्बल वनवासी। प्रायः घायल स्तनों, खरोचों से भरे चेहरों और रक्त के थक्कों से लिथड़े योनिकेशों के साथ तम्बुओं के बाहर फेंक दी जाती थीं।"[16] हालाँकि उपन्यास में आदिवासी समाज का इस स्थिति पर असहाय, मूकपन और इससे निकलने के लिए संघर्ष रहित आदिवासी स्त्री एक विवादास्पद मामला है क्योंकि आदिवासी स्त्रियाँ मूलतः जुझारू होती हैं। पीटर पॉल एक्का ने भी 'मौनघाटी' उपन्यास में बाहरी दिकुओं द्वारा आदिवासी स्त्री- पुरुषों के शोषण को केंद्र बिंदु बनाया है। उन्होंने भी दिखाया है कि किस तरह फोरेस्टर, अस्पताल कर्मचारी आदि आदिवासियों का शोषण करते हैं और आदिवासी स्त्रियों को भोग की वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझते हैं।

वरिष्ठ आदिवासी लेखिका रोज केरकेट्टा की कहानी संग्रह 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' है। भंवर, केराबांझी, कोंपलों को रहने दो, घाना लोहार आदि कहानियों में स्त्री चेतना और स्त्री अधिकारों की कहानियां हैं। 'भंवर' कहानी में एक ऐसी आदिवासी विधवा की कहानी है जिनको कानूनन अधिकार मिलने के बावजूद आदिवासी समाज में व्याप्त सामाजिक कमियों के कारण वह अपने अधिकारों से वंचित रह जाती है। इस कहानी संग्रह में लेखिका झारखण्ड के ग्रामीण समाज को पृष्ठभूमि में रखकर वहां के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ चित्रण करती हैं। इसके अलावा वाल्टर भेंगरा 'तरुण' द्वारा रचित कहानियाँ 'अपना अपना युद्ध', देने का सुख', 'जंगल की ललकार' तथा उपन्यास 'लौटते हुए' में आदिवासी स्त्री जीवन की विभिन्न विडम्बनाओं का चित्रण मिलता है।

आदिवासी दर्शन की अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों में सामुदायिकता, समानता,स्वतंत्रता आदि हैं। साथ ही साथ आदिवासी समाज की अपनी अलग जीवन-संस्कृति, गीत-संगीत, श्रम का महत्व आदि जीवन-मूल्यों को आदिवासी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से जगह दी है। खासकर पीटर पॉल एक्का और वाल्टर भेंगरा 'तरुण' के सम्पूर्ण कथा साहित्य में इन जीवन मूल्यों का सहज-सरल अभिव्यक्ति देखा जा सकता है। आदिवासी कविता की तरह ही रामदयाल मुंडा जी की कहानियों में भी आदिवासी जीवन-मूल्य व आदिवासी दर्शन को सहज व मौलिक रूप में देखा जा सकता है। गंगा सहाय मीणा जी उनकी कहानियों के बारे में लिखते हैं- "उनकी चिंता आदिवासियत को बचाने की है, जिनको बाहर से ही नहीं, भीतर से भी खतरा उपस्थित हो गया है। अपनी कहानी 'खरगोशों का कष्ट' में उन्होंने बहुत ही दिलचस्प ढंग से इस बात को रखा है कि जिन दिकुओं से आदिवासियों को खतरा है, उनकी संगत में जाकर एक आदिवासी भी उनकी भाषा बोलने लगता है। जिस तरह माजिद मजीदी आदि ईरानी फिल्मकार बच्चों पर केन्द्रित फिल्मों के माध्यम से भी समाज के अंतर्विरोधों को बहुत मार्मिक ढंग से उकेरते हैं, वैसे ही रामदयाल मुंडा ने खरगोशों और सिंहों की कथा के माध्यम से आदिवासी और दिकुओं की कहानी कही है।"[17] 'खरगोशों का कष्ट' कहानी प्रतीकात्मक है। इस कहानी के द्वारा लेखक ने आदिवासियों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष :

आदिवासी कथा साहित्य अब काफी समृद्ध हो चुका है। इसमें आदिवासी एवं गैर आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों का सजीव चित्रण किया है। आदिवासी कथा साहित्य में आदिवासी समाज के विभिन्न समस्याओं जैसे- विस्थापन की समस्या, अस्तित्व और अस्मिता की समस्या, भाषा- संस्कृति पर खतरा, नक्सलवाद की समस्या, भूमंडलीकरण और पूंजीकरण से उत्पन्न समस्या, संस्कृतिकरण आदि का संवेदनात्मक एवं यथार्थपरक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। आदिवासियों के जीवन संघर्ष के इन तत्वों में भी उनके जीवन-दर्शन को हम बखूबी देख सकते हैं। रचाव-बचाव, सहजीविता, समानता, प्रकृति प्रेम, आदिवासियों की उत्सवधर्मिता आदि आदिवासी जीवन-दर्शन के मूल तत्वों का आदिवासी कथा साहित्य में सुन्दर समाहार मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज की तरह आदिवासी कथा साहित्य में भी आदिवासियत का अद्भुत सामंजस्य है।

सन्दर्भ :

1. शम्भुनाथ, संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, 2012, पृष्ठ- 175
2. महुआ मांझी, मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, 2015, पृष्ठ- 177
3. वही, पृष्ठ- 162-163
4. वाल्टर भेंगरा 'तरुण', जंगल की ललकार, लाली प्रकाशन, जमशेदपुर, 1989, पृष्ठ- 9-10
5. वैभव सिंह, आदिवासियों के बीच एक्टिविस्ट, हंस पत्रिका, दिसम्बर, 2009, पृष्ठ- 89
6. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, चौथा संस्करण, 2017, पृष्ठ- 93
7. पीटर पॉल एक्का, पलास के फूल, सत्य भारती प्रकाशन, 2012, पृष्ठ- 58

8. संजीव, 'पांव तले की दूब', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ- 16
9. केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी विद्रोह: परंपरा और साहित्यिक अभिव्यक्ति की समस्याएँ, अनुज्ञा प्रकाशन, 2015, पृष्ठ- 315
10. वही, पृष्ठ- 333
11. वही, पृष्ठ- 352
12. हरिराम मीणा, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, जयपुर, पृष्ठ- 21
13. अनुज लुगुन (सं.), आदिवासी अस्मिता: प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन, 2015, पृष्ठ- 73
14. श्री प्रकाश मिश्र, जहाँ बाँस फूलते हैं, यश पब्लिकेशंस, 2016, पृष्ठ- 166-167
15. अश्विनी कुमार पंकज, इसी सदी के असुर, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, 2020, पृष्ठ-49
16. राकेश कुमार सिंह, जो इतिहास में नहीं हैं, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृष्ठ- 52
17. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन 2017, पृष्ठ- 69

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सुशीला टाकभौरे के काव्य में नारी विमर्श

डॉ. अनिता रोहिदास राजबंशी

एस.पी.डी.एम.महाविद्यालय, शिरपूर जि.धुले (महाराष्ट्र)

सारांश:- भारत में स्त्री-विमर्श के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि, स्वाधीनता पूर्व नारी आंदोलन अधिकतर स्त्री - पुरुष संबंधों पर केंद्रित था। तो स्वाधीनता पश्चात उसने नया मोड़ ले लिया । जिसमें स्त्री - पुरुष संबंध के साथ-साथ स्त्री समस्याओं पर प्रकाश डाला गया।समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री - विमर्श के अंतर्गत विभिन्न धाराएं दिखाई देती है, इसमें कुछ महिला रचनाकारों के साहित्य में नारीवादी स्वर गूंजता दिखाई देता है। उनमें निर्मला पुतुल, अनामिका ,महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृता प्रीतम ,अंजना सिंह ,सुशीला टाकभौरे आदि. महिला लेखिकाओं ने अपने साहित्य में स्त्रीवादी आवाज बुलंद की है। इन महिला रचनाकारों ने नारी संबंधी ऐसे मुद्दों पर प्रकाश डाला जो, अभी तक एक सिरे से साहित्य में गायब थे। नारी की अस्मिता और विस्तार का प्रश्न, स्त्री देह का प्रश्न, उत्तराधिकार का प्रश्न ,संपत्ति का अधिकार, विवाह और उससे जुड़े प्रश्न , स्त्री मुक्ति का प्रश्न, यौन सुचिता का प्रश्न और मातृत्व के अधिकार का प्रश्न,ऐसे ही कई महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिस पर बेबाक टिप्पणियां की है। सुशीला टाकभौरे हिंदी दलित साहित्य की एक ऐसे ही अत्यंत सशक्त एवं प्रभावशाली हस्ताक्षर मानी जाती है।उनके लेखनी पाठकों में चेतना जागृत कर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग करते हैं। काव्य क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान देकर दलित महिलाओं के संघर्ष पीड़ा और अस्मिता को उन्होंने नया स्वर दिया। उनकी कविताओं में नारी शोषण के विरुद्ध एक मजबूत विद्रोह है। उनकी सहज सरल शैली हृदय पर सीधे प्रहार करती है। उनका काव्य केवल एक साहित्य न होकर वह एक सामाजिक आंदोलन है,जो स्त्रियों में एक नई उमंग और अन्याय से लड़ने की ऊर्जा प्रदान करती हैं।

प्रस्तावना:- सुशीला टाकभौरे जी ने हिंदी साहित्य में नारी चेतना से संबंधित विविध पहलुओं को चित्रित किया है स्त्रियों और दलितों पर हो रहे अन्याय - अत्याचार का विरोध उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से किया है। सदियों से चली आ रही नारी के अवहेलना अवमानना को उन्होंने विद्रोहात्मक स्वर में विरोध किया है। आधुनिक हिंदी दलित साहित्य में अपना बहुमूल्य योगदान देकर उन्होंने हिंदी दलित साहित्य भंडार को समृद्ध किया। सुशीला टाकभौरे पहली हिंदी भाषी दलित कवियित्री के रूप में विख्यात है। भारतीय स्त्री को आज भी पितृसत्तात्मक समाज में अपने हक और अधिकार के लिए जूझना पड़ रहा है। सदियों से इस पुरुषी अहंकार और दंभ को वह सहती रही है। इस पुरुषसत्ता के अन्याय अत्याचार के खिलाफ सुशीला टाकभौरे करारा विरोध करती हुई नजर आती है। आज 21वीं सदी में मानव ने हर एक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कदम रखा है। इस कामयाबी में न केवल पुरुषों की साझेदारी है बल्कि नारी ने भी अपने गुण और बुद्धि के बल पर इस कामयाबी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "20 वीं शताब्दी में डॉ.बाबासाहेब ने उसे सम्मान, अस्मिता तथा नये सामर्थ्य से उड़ान भरने के लिए पंख दिए भारत के इतिहास में प्रथमत: उसे आत्ममुक्ति का हथियार मिला। भारतीय स्त्री को अपने ही लिए सजग करने का तथा अपना सामर्थ्य जानने की प्रेरणा देने का

कार्य डॉ.आंबेडकर ने ही किया।"(1) परंतु समाज में नारी के प्रति उपेक्षितता दिखाई देती है। नारी को हमेशा से ही अपने अस्तित्व की तलाश रही है। वह अपने अस्तित्व के तलाश में समाज, परिवार से संघर्ष करती नजर आती है। उसे अपने शिक्षा के अधिकार के लिए समाज की कुत्सित रीतिरिवाज, परंपरागत धारणाओं की रूढ़ियों को तोड़ना पड़ा। क्या आज भी उसे स्वाधीनता से जीने का अधिकार नहीं है। क्या वह मुक्त से संचार नहीं कर सकती। छोटी-छोटी बच्चियों पर आज भी बलात्कार हो रहे हैं। क्या कसूर है उनका? अगर कोई स्त्री इस दलदल से उबरने कोशिश करती है, तो उसे समाज और परिवार में हेय समझा जाता है। उसके पास बुद्धि, विचार शक्ति होने के बावजूद बुद्धि शून्य, विचार शुन्य रहना पड़ता है। सुशीला टाकभौरे अपनी रचनाओं में इसके खिलाफ विद्रोह करती है।

विश्लेषण:- सुशीला टाकभौरे की स्वाति बूंद और खरे मोती, यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना,हमारे हिस्से का सूरज, आदि काव्यसंग्रह प्रकाशित है। जो उनकी रचनात्मक ऊर्जा की पहचान है। इन काव्य संग्रह में कवयित्री नारी अस्मिता की तलाश में नजर आती है। सुशीला टाकभौरे ने अत्यंत सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से समाज के विभिन्न उपादानों को लेकर पुरुषसत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति को दर्शाया है। उनकी कविताओं में नारी का दर्दनाक पीड़ा का यथार्थ अंकन किया है। स्त्री को अपनी स्वयं की विचार शक्ति ,बुद्धि शक्ति होने के बावजूद उसे समाज की परंपरागत सड़ी -गली मान्यताओं के जंजीरों में जखडकर रखा।उसकी स्वाधीनता को समाज परिवार द्वारा समय-समय पर दबाया - कुचलाया गया। सुशीला टाकभौरे जी स्त्री पर हो रहे दबावतंत्र का विरोध करती हुई नजर आती है उनके 'विद्रोहिणी' कविता में वे समाज में व्याप्त वंचना, शोषण और बाधाओं के खिलाफ विद्रोह करते हुए कहती हैं,

" विद्रोहिणी

मां बाप ने पैदा किया था

गूंगा

परिवेश ने लंगड़ा बना दिया।

चलती रही

निश्चित परिपाटी पर

बैसाखियों के सहारे

कितने पड़ाव आए

आज जीवन के चढ़ाव पर

बैसाखियां चरमराती हैं

अधिक बोझ से

अकुलाकर

विस्फारित मन हूंकारता है

बैसाखियों को तोड़ दूं।" (2)

नारी मुक्त उड़ान भरना चाहती है अपनी आत्मनिर्भरता से स्वयं को साबित करना चाहती है।परंतु उसकी स्वाधीनता मुक्त संचार तो केवल एक दिखावा है। सच तो यह है उसे समाज ने हमेशा अंकुश लगा कर रखा है। सुशीला टाकभौरे अपनी 'स्त्री' कविता में अत्यंत हृदयस्पर्शी स्वर में रहती है,

एक स्त्री

जब भी कोशिश करती है

लिखने की बोलने की

समझने की

सदा भयभीत सी रहती है।

मानो पहरेदारी करता हुआ

कोई सिर पर सवार हो

पहरेदार। (3)

सदियों से नारी पर अन्याय अत्याचार होते रहे हैं।वह अपने पति को ईश्वर के समान दर्जा देकर पूजती हैं।अपने पिता, भाई ,बेटे की लंबी उम्र की कामना करती है। लेकिन इस पुरुषसत्तात्मक समाज ने उसकी दर्द,पीड़ा को कभी समझा ही नहीं उसे केवल एक कठपुतली की तरह अपनी विशिष्ट सीमारेखाओं के बीच नचाता रहा है। "नारी मुक्ति का सही अर्थ यह है की स्त्री को पुरुष के समान हक मिल सके। स्त्री कोई भोग की वस्तु है ऐसा ना समझा उसे विकास की दिशा प्रदान करते हुए ,स्त्री स्वतंत्रता की जगह स्त्री समानता पर अधिक ध्यान दिया जाता।"(4) सुशीला टाकभौरे अपनी 'तेरे अन्याय से तंग आकर' इस कविता में सामाजिक अन्याय और रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष की भावना को प्रकट करती हुए कहती है,

" अबला पर शासन किया तुमने उसके जीवन- मृत्यु पर अधिकार

तेरे अन्याय से तंग आकर

खोज रही है अब यह सबला

अपना अस्तित्व

अपना अधिकार।" (5)

कवयित्री सुशीला टाकभौरे काव्य में स्त्री मन की मार्मिक संवेदना को चित्रित किया गया है।उसके भावनाओं की हो रही उपेक्षा से पीड़ित थी। किंतु अब उसने अपने उपेक्षा को पहचान लिया है। वह इस समाज के लादे गए परंपरा के मोह, रीतिरिवाज, कर्म और संस्कृति के भ्रम - जाल के प्रति बेहद सचेत हो गई है। कवयित्री सुशीला टाकभौरे कहती है,

"रहन-सहन रीति रिवाज और परंपराओं की बात

सब उसे बेबस बनाए रखने की चाल है

इसी से वह बेहाल है।" (6)

कवयित्री उस राम को नारी के आत्मसम्मान को दोषी मानती है। जिसने सीता की पवित्रता पर संदेह किया। एक सामान्य पुरुष धोबी कि बातपर विश्वास रखकर सीता के चरित्र पर लांछन लगाया। उसे धरती में समा जाने के लिए विवश किया था। राम ने सीता की अस्मिता के प्रति जो भेदभाव किया इस परंपरा को यह समाज दोहराता रहा है। इसलिए आज भी कई परिवारों में नारी के चरित्र पर संदेह कर उसकी अवहेलना की जाती है। ऐसी नारी का त्याग किया जाता है। और कभी-कभी उसे आत्महत्या के लिए विवश भी किया जाता है। समाज में प्रताड़ित नारी को कोई स्थान नहीं है। कवयित्री नारी पर होने वाले इस बेबुनियादी अत्याचारों से व्यथित होती है। वह अपनी 'जानकी जान गई'इस काव्य में नारी की व्यथा को भूकंप से पैदा होने वाली तबाही के रूप में देखती हैं।

हे राम !

उसकी अस्मिता के प्रति

तुमने जो भेदभाव किया

तुम्हारे देशवासी भी करते हैं

इसीलिए देवभूमि के इस देश में

भूकंप आते रहते हैं। (7)

स्त्री विमर्श जैसी आधुनिक परिवर्तनगामी विचारधारा के कारण उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने का अवसर मिला। पुरुषवादी विचारधारा ने स्त्री को लगाम लगाकर रखा था। जिससे उसके अस्मिता केवल रसोई और परिवार तक सीमित रहे कवयित्री अपनी कविता 'जानकी जान गई है' के माध्यम से बतला देना चाहती है कि, आज की सीता धरती में समाना नहीं बल्कि आकाश में उड़ना चाहती है।

"आज जानकी सब जान गई है

अब वह धरती में नहीं

आकाश में जाना चाहती है।"(8)

कवयित्री तमाम नारी जाति को आवाहन करती है।अपनी अस्मिता और पहचान के लिए हमें संघर्ष के जरिए व्यवस्था को जड़ से उखाड़कर फेंकना होगा तभी हमारा अस्तित्व अर्थपूर्ण होगा लाख बाधाएं हमारे बढ़ते कदमों में रुकावटें डालें किंतु हमें रुकना नहीं है। भीड़ से अलग अपनी पहचान बनाने का संदेश देते हुए वह कहती है,

" आओ बहनों आगे बढ़कर

पाए हम अपने अधिकार

देखो कोई रोक न पाए

बढ़ते कदमों की रफ्तार

भीड़ से अलग

अपनी पहचान बनाना है। (9)

निष्कर्ष:- इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला टाकभौरे की कविताएं स्त्री मुक्ति चेतना से संपृक्त है। उनकी अधिकांश कविताओं में स्त्री उद्धार चित्रित हुआ है। स्त्री की अवमानना और अपमान से वे अत्यंत दुखी है। पराधीनता और गुलामी भरी जिंदगी से वे स्त्रियों को मुक्त करना चाहती है। उनके कविताएं अपने आप में प्रेरणादायक है। उनके ज्यादातर कविताओं पर डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर और ज्योतिबा फुले आदि का प्रभाव दृष्टिगत होता है। उनकी कविताओं में जातिवाद, पुरुषवाद से उपर उठकर मानवतावाद चित्रित हुआ है। जो मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने की प्रेरणा देता है।

संदर्भग्रंथ सूची :-

1. नारी चिंतन: नई चुनौतियां डॉ.राजकुमार गडकर- पृ. 40
2. अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर- 208014
3. साहित्य शिखर - संपा. संजयकुमार शर्मा /प्रो.कल्पना पाटील- पृ.95 प्रशांत पब्लिकेशन -जलगांव प्र.सं.2025
4. स्त्री कविता - सुशीला टाकभौरे कंचनजंघा पीअर रिव्यूड छमाही हिंदी ई-जर्नल जनवरी- जून - 2020 पृ.-144
5. नारी चिंतन: नई चुनौतियां डॉ. राजकुमार गडकर- पृ. 65 अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर- 208014
6. तेरे अन्याय से तंग आकर, कविता- सुशीला टाकभौरे ,पृ.145 कंचनजंघा पीअर रिव्यूड छमाही हिंदी ई-जर्नल जनवरी- जून - 2020
7. तुमने उसे कब पहचाना -सुशीला टाकभौरे पृ. 21 शरद प्रकाशन, नागपुर प्र.सं. 1995
8. तुमने उसे कब पहचाना -सुशीला टाकभौरे पृ. 24 शरद प्रकाशन, नागपुर प्र.सं. 1995
9. तुमने उसे कब पहचाना -सुशीला टाकभौरे पृ. 23 शरद प्रकाशन, नागपुर प्र.सं. 1995
10. तुमने उसे कब पहचाना -सुशीला टाकभौरे पृ. 27 शरद प्रकाशन, नागपुर प्र.सं. 1995

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

कमलेश की कहानियों में चित्रित संवैधानिक भारत के व्यसनाधीन परिवार

डॉ. निंबा लोटन वाल्हे

(हिंदी विभागाध्यक्ष)

श्री. शि. वि. प्र. संस्थाका श्रीमती पा. बा. बागल कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, दोंडाईचा जि. धुलियां

प्रस्तावना:- साहित्य और मनुष्य का जीवन अभिन्न है। साहित्य में मनुष्य का जीवन प्रतिबिंबित होता है। मनुष्य के परिवर्तित जीवनक्रम का लेखा - जोखा साहित्य में दिखाई देता है। अर्थात साहित्य जीवन से प्रेरणा प्राप्त करता है और जीवन को प्राणवान बनता है। जीवन के अभाव में साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती । जीवन का स्वरूप द्वंद्वात्मक होता है। उसके विकास के मूल में राग - द्वेष, सुख - दुख, लाभ - हानि के द्वंद दिखाई देता है। इन व्दंव्दों के घात - प्रतिघात से, संघर्ष से भावनाओं की निर्मिति होती है। यही अभिव्यक्ति साहित्य का विषय बन जाती है। जीवन के संघर्षमय, संतापमय क्षणों को संतोष से भर देने की क्षमता रखता है और सुखमय क्षणों की स्पूर्ति प्रदान करता है। संकीर्णताओं की बेडियों को तोड़ने की इसमें क्षमता होती है। साहित्य विराट क्षमता एवं व्यापक प्रभाव जीवन के विविधांगी रूप के कारण ही हमारे सामने प्रकट होता है।

मानव जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएं मौजूद है उसमें एक व्यसनाधीनता की है। व्यसन करने वाले लोग हर वर्ग में है लेकिन उसका ज्यादा प्रमाण निम्नवर्ग में है| निम्नवर्ग के लोग आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते हुए भी व्यसन के अधीन रहते हैं। दो वक्त का भोजन मुश्किल से प्राप्त होता है। फिर भी शराब के लिए कर्ज से रुपए लेते हैं या तो उधारी का व्यवहार करते हैं। शराब के नशे में चूर होने पर परिवार मुहल्ले में गाली - गलौज, मारपीट, पूरा माहौल शोरगुल में बदल देते हैं। छोटे-छोटे बच्चों पर भी गलत संस्कार छोड़ते हैं। लेकिन इस बात की फिक्र इन्हें नहीं रहती|

कमलेश बख्शी के कहानी साहित्य में व्यसनाधीनता पर काफी मात्रा में विवेचन हुआ है।' सपना पूरा होगा मां' कहानी पति के व्यसनाधीनता के दुष्परिणामों को चित्रित करती है। एक गरीब, धर्मभीरू परिवार की सुन्दर कन्या का विवाह एक पुरुष के साथ हुआ। विवाह के बाद उसे मालूम होता है उसका पति रेस-जुआ-शराब सबका आदि था। वह पत्नी के चांदी के कड़े, रुपए चुराता है। दिन-ब-दिन उसके अत्याचार बढ़ते जाते हैं। एक दिन पैसे वाला मित्र के घर ले जाता है। उसके साथ पति सौदा करना चाहता है। एक अमीर बूढे के घर दोनों समय अपनी बीवी भेजता था| उसका पति निखट्टू, शराबी, जुआरी था। कमाई का यह रास्ता पति अपनाता है। खूसट बूढा महीने भर का राशन भर देता था। शराबी पति की पत्नी डॉक्टर के यहाँ झाडू, सफाई की नौकरी करती हैं। वह कई दिन भूखी रहती है। पति नशे में धुत, पैसा छीन धक्का मारता था। मजबूर होकर कंपाउंडर के साथ भाग जाती है। वहाँ नारी संस्था | पति नशे के लिए उसे धंधा करवाता रहा। इस प्रकार एक व्यसनाधीन पुरुष के कारण स्त्री कहा कि नहीं रहती | इतना कुछ भोगने के बाद वह अंत में एक अमीर सेठ के पास रहती है। उसे एक बेटी है जिसका नाम श्यामली है। अब उनका सपना पढ़ लिखकर स्वावलंबी बनना है।

'मकड़ी का जाल' कहानी में पति रमाकांत है। जो जमींदार का बेटा है| वह शराबी - जुआरी है। जिसके कारण उसकी पत्नी राधा की स्थिति दयनीय है। उसका पति परमस्वार्थी है| घर आए मेहमान को एक कप चाय पिलाना भी उसे नुकसान लगता है। खुद रात - दिन शराब पीता है, जुआ खेलता हैं। वह नहीं चाहता कि कोई उनके घर आए। पत्नी उसे घर - लुटाऊ लगती है। हर समय उससे लड़ता रहता है। इस शराबी पति के कारण राधा भी निर्जीव - सी होती जा रही है | उसके जीवन की उमंग - हंसी - खुशी सब बीतती जा रही है। एक दिन उसका ध्यान बच्चों की ओर जाता है और वह पाती है, वहाँ जीवन है, उन्हें उसकी जरूरत है। उसके पति में स्वार्थ, ईर्ष्या, घमंड कूट-कूटकर भरे थे। पति अपनी पत्नी से कहता है, " तुम घर उजाडु हो, शर्म नहीं आती जो आया खिला - पिला दिया। लोग तुम्हारे स्वभाव का फायदा उठाते हैं। अपने बाप के घर से लाई हो! खसम है तुम्हारा, उसके साथ ही चली जाओ। "[1] पति हर बार अपना पुरुषत्व राधा पर झाड़ता है। वह उसकी याने पत्नी की आत्मा को मारते जा रहा है। वह गाली - गलौज की भाषा का भी प्रयोग करता है जैसे - 'तुम साली, स्वार्थी हो,तुमसे सब कह देते हैं, बड़े अच्छे स्वभाव की है, बड़ी बुद्धिमान है। दुख में सबका साथ देती है। बस, झूठी तारीफ पाने के लिए मेरा घर उजाड़ती हो |' इस प्रकार राधा धीरे-धीरे एक मूर्ति की तरह, बहुत कमजोर, अपंग - सा महसूस करने लगती है। मुन्ना बेटा कहता है कि," मैं गाली नहीं दूंगा।" राधा को सच लगता है, " शराबी - जुआरी का बच्चा बहुत अच्छा निकल जाता है। शराब और जुए का प्रभाव वह चौबीस घण्टे घर में देखता उनसे बहुत दूर हो जाता है। इनके पिता भी कितने शांत दयालु थे, ये इनके विपरीत - इनके परिवार के सभी कहते हैं, रमाकांत दादा पर गया है। वे बिगड़े जमींदार थे। "[2] वह पति के गर्जन - तर्जन को अनसुना कर बच्चों की चमकती आँखों में देखकर मुस्कुराती है जो जवाब में उसे खिलखिलाहटें देते हैं। प्रस्तुत कहानी के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यसनाधीनता के कारण नारियों के प्रति अत्यंत अपमानजनक, घटिया व्यवहार किए जाते हैं। परिणामस्वरुप परिवार बिखरता है, टूट जाता है, स्त्री के लिए एकमात्र आश्रय या सहारा उसके बच्चें ही होते हैं।

'जना' कहानी में कमलेश बख्शी ने जहरीली शराब पीने से शान्ति का बेटा अनंत मर जाता है इसे प्रतिपादित किया गया है। शराब में जहर उसे बढ़ाने उसे सस्ती बनाने और कमाई बढ़ाने के लिए मिलाया जाता है। जहरीली शराब पीने के कारण फुटपाथ पर कई लोगों की लाशें पड़ी है। अनंत कभी - कभार शराब पीता था। शांति अपना गांव घर छोड़कर पांच माह के बेटे के साथ यहां आई थी। उसे अर्थात अनंत को जना ने पाल - पोसकर बड़ा किया था। अनंत मैट्रिक पास करके नौकरी करने लगा था। अनंत के मरने के बाद शान्ति को पांच हजार रुपये मिले थे। शान्ति शराब पीती है। अब वह जना के घर खाना नहीं खाती हैं बाहर खाती और पीती है। बेटा मर गया क्या मानो उसको तृप्त कर गया। शान्ति भी एक दिन मर जाती है। व्यसनाधीनता का दुष्परिणाम प्रस्तुत कहानी में बताया गया है।

'मैं नहीं पीती प्रेत पीता है ' कहानी में लड़का उसकी माँ और बहन सुमन है। बाबा रोज शराब पीकर आते थे। बाबा दिन भर शराब पीते, माँ को मारता | शराब पीने से बाबा का स्वास्थ्य खराब, घर में सुख - शान्ति नहीं, सभी लतियारे थे, कहीं इज्जत नहीं थी। माँ भी शराब पीती है, मानसिक, शारीरिक इलाज के साथ शराब

छुड़ाने का भी इलाज चल रहा है। माँ पीकर ताकतवर हो जाती थी। एक दिन वह शराब के नशे में उसका पति माने बाबा सिर फोड़ डालती है इस प्रकार शराब के नशे के कारण पूरा परिवार ध्वस्त हो जाता है।

'प्रश्न उठता है ' कहानी में बूढे पति - पत्नी शर्मा हैं। उन्हें एक बेटा और बेटी है। लड़की घर से डबल उम्र वाले लड़के के साथ भाग जाती और कालगर्ल बन जाती है। लड़का ड्रग के चक्कर में पड़ गया था। उसे माँ-बाप ने अस्पताल में रखा वहाँ से काँच तोड़कर भाग गया। वह अपने माँ-बाप से लड - झगड़कर पैसा लेता | जो भी हाथ में आता बेच देता | एक दिन अपने घर गुंडों को ले आया। माँ को कमरे में बन्द किया और पिता को रस्सी से बाँधकर सब जेवर ले जाता हैं। चैक बुक पर पिता से सही करवाई | ड्रग के आदी लड़के के कारण माँ-बाप ने फ्लैट बेचा और शहर में आ गए। शहर में फ्लैट लिया और बची रकम फिक्स में रख दी। ड्रग के नशे में बेटा सब बेच देता माँ-बाप अपना जीवन दहशत में जीते रहे| दोनों माँ-बाप मानसिक तनाव में ग्रस्त महीनों गुमसुम रहे। मुश्किल से नॉर्मल हुए। बेटा फ्लैट भी बेच देता और माँ-बाप को सड़क पर ला देता | उन्हें बुढापे में खटना पड़ता | यहाँ प्रस्तुत कहानी में व्यसनाधीन ड्रग का आदी लड़के के कारण बूढे माँ-बाप का जीवन तहस- नहस हो जाता हैं। दोनों माँ-बाप के बारे में कहानीकार कहती है, " हमारे अतीत गडे मुर्दे हैं। जो बीत गया - पन्द्रह वर्ष से यही रहते हैं। अच्छे से खर्च चलता है। तनावमुक्त होकर चैन से जी रटे हैं। शुभा मुझसे कहती है-खुद को नहीं देखती वैसे भी - जिस दौर से हम गुजरे उसका प्रभाव तो शरीर पर पड़ना ही था - और पड़ा। "[3] स्पष्ट है कि व्यसनाधीनता के कारण संतान का दुःख माँ-बाप के लिए सबसे बड़ा दुःख होता है।

निष्कर्ष:- कमलेश बख्शी की कहानियों में चित्रित समस्याओं को देखने के बाद निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है, कि गुण्डागर्दी और आवरागर्दी,व्यसनाधीनता, नारी जीवन आदि समस्याएं मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. कमलेश बख्शी, नया मोड़,पृ. क्रं.82
2. वही, पृ. क्रं. 85
3. कमलेश बख्शी, मर्यादा, पृ. क्रं. 158

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी साहित्य निर्माण में महिला साहित्यकारों का योगदान

प्रा. भाग्यश्री रमेश चव्हाण

एस.पी.डी.एम. वरिष्ठ कला महाविदयालय, शिरपुर (धुळे)

सारांश

यदि हम एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जो न्याय, समानता और मानवीय मूल्यों पर आधारित हो, तो उस समाज के निर्माण में नारी की समान सहभागिता और अधिकार सुनिश्चित करना अनिवार्य हो जाता है। समाज की आधी जनसंख्या होने के बावजूद नारी सदियों से परंपराओं, रूढ़ मान्यताओं और सामाजिक बंधनों के बोझ तले दबी रही है। आज भी वह अनेक रूपों में शोषण, उपेक्षा, असुरक्षा और असमानता का सामना कर रही है। ऐसी परिस्थितियों में नारी ने अपनी चुप्पी को साहित्यिक अभिव्यक्ति में रूपांतरित किया। साहित्य उसके लिए केवल सृजन का माध्यम नहीं रहा, बल्कि आत्मसंरक्षण, आत्मपहचान और प्रतिरोध का सशक्त उपकरण बना। नारी लेखन के माध्यम से उसकी पीड़ा, संघर्ष, आकांक्षाएँ और चेतना मुखर हुईं, जिसने समाज की चेतना को झकझोरने का कार्य किया। हिंदी साहित्य की परंपरा में नारी की रचनात्मक उपस्थिति अत्यंत प्राचीन, निरंतर और प्रभावशाली रही है। उसने साहित्य को संवेदनशील दृष्टि, मानवीय करुणा और सामाजिक सरोकारों से समृद्ध किया है। इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के विकास और उसकी वैचारिक ऊँचाइयों में नारी का योगदान विशिष्ट, मौलिक और अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मुख्य शब्दः आत्मसंरक्षण, उपेक्षा, आत्मनिर्भर , संवेदनशील ,आत्मसम्मान, अस्तित्व, आकांक्षा , पितृसत्तात्मक

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के आरंभिक चरणों से ही समाज की संरचना पुरुष-केंद्रित रही है, जहाँ सत्ता, निर्णय और वर्चस्व के केंद्र में पुरुष रहा और नारी को हाशिये पर धकेल दिया गया। सामाजिक व्यवस्था ने नारी को स्वतंत्र, शिक्षित और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करने के स्थान पर उसे परावलंबी बनाए रखने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप नारी को अक्सर उपभोग, मनोरंजन और वैभव-विलास की वस्तु के रूप में देखा गया, न कि एक संवेदनशील और सृजनशील मनुष्य के रूप में। भारतीय समाज में परंपरा और रूढ़ियों के आवरण में स्त्री-शोषण की अनेक अमानवीय व्यवस्थाएँ विकसित होती रहीं। सतीप्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा-विवाह निषेध और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों ने नारी जीवन को पीड़ा, भय और असुरक्षा से भर दिया। इसके साथ ही घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, बलात्कार, छेड़छाड़ और मानसिक प्रताड़ना जैसी घटनाओं ने स्त्री के अस्तित्व और आत्मसम्मान को गहरे स्तर पर आहत किया। इन सभी कारकों ने नारी को न केवल सामाजिक रूप से बल्कि मानसिक और भावनात्मक रूप से भी जकड़ने का प्रयास किया। इसके बावजूद नारी चेतना को पूर्णतः दबाया नहीं जा सका। समाज के इसी दमनकारी वातावरण में नारी

साहित्यकारों की लेखनी प्रतिरोध का स्वर बनकर उभरी। उन्होंने अपने अनुभवों, संवेदनाओं और संघर्षों को शब्द देकर स्त्री जीवन की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत की।

मूल आलेख

नारी लेखन ने पुरुष-प्रधान मानसिकता, असमान सामाजिक ढाँचों और स्त्री-विरोधी सोच को चुनौती दी और यह स्पष्ट किया कि नारी केवल सहनशील नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक भी है। महिला साहित्यकारों ने अपने समय की विषम परिस्थितियों को गहराई से आत्मसात कर साहित्य को सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम बनाया। उनके लेखन में नारी की पीड़ा के साथ-साथ उसकी चेतना, आत्मसम्मान और मुक्ति की आकांक्षा भी अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार नारी साहित्य ने न केवल स्त्री के अनुभवों को स्वर प्रदान किया, बल्कि समाज को यह सोचने के लिए विवश किया कि समानता, सम्मान और न्याय के बिना किसी भी सभ्यता का विकास संभव नहीं है।

"स्त्री को लेकर भारतीय साहित्य, दर्शन एवं धर्मशास्त्रों में चिन्तन की सुदीर्घ परम्परा रही है जहाँ स्त्री की सम्पूर्ण सत्ता को भोग्या, अबला, ललना, कामिनी, रमणी आदि विशेषणों के साथ हेय एवं पुरुष सापेक्ष रूप में चित्रित किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन सभी रचयिता एवं टीकाकार पुरुष थे। दूसरे, मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अपदस्थ होने के बाद से समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विधान रहा है। फलतः स्वाभाविक था कि पुरुष के सन्दर्भ में पुरूष दृष्टि द्वारा स्त्री को देखा जाता। इसलिए पुरुष की श्रेष्ठता, सम्मान, स्थान, शक्ति, अधिकार और स्वार्थ की रक्षा के लिए धर्मशास्त्रों ने अनेक ऐसे आप्तवचनों, सूत्रों, श्लोकों की रचना की जिन्होंने स्त्रियों के जीवन को अनेक सामाजिक-नैतिक अर्गलाओं में बाँध दिया।"[1]

हिन्दी साहित्य के जिस भक्तिकाल को स्वर्णयुग की संज्ञा दी जाती है, उस दौर में अनेक संत कवयित्रियों का उदय हुआ, किंतु कालांतर में उनके नाम इतिहास के प्रवाह में विलुप्त होते चले गए। इन कवयित्रियों ने अपने काव्य में पुरुषप्रधान समाज द्वारा दी गई शारीरिक और मानसिक यातनाओं का सजीव चित्रण करते हुए उसके विरुद्ध स्वर उठाया तथा नारी मुक्ति की चेतना को स्पष्ट दिशा प्रदान की। कृष्ण भक्ति परंपरा की प्रमुख कवयित्री मीरा का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट और अमूल्य योगदान है। मीरा के पद अपने युग की नारी-अभिव्यक्ति के सशक्त प्रतीक हैं, जिनमें सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों के विरुद्ध संघर्ष की स्पष्ट झलक मिलती है। उनके पदों ने न केवल राजस्थान क्षेत्र में, बल्कि शोषित-पीड़ित वर्गों के बीच भी व्यापक स्वीकृति प्राप्त की, जिसके परिणामस्वरूप वे लोकमानस में रच-बसकर कालजयी बन गए। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मीराबाई को हिन्दी साहित्य की प्रथम स्त्री विमर्शकार के रूप में स्वीकार किया जाए। उनके काव्य में नारी की आत्मचेतना, स्वतंत्रता और प्रतिरोध की जो सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है, वह मध्यकालीन समाज की जड़ मान्यताओं को चुनौती देती है। ऐसा भी माना जाता है कि कबीर के साथ उनकी पत्नी लोई ने काव्य-रचना में सहभागिता की थी। इसी क्रम में यह कहना भी संगत प्रतीत होता है कि तुलसीदास की जीवन-संगिनी रत्नावली साहित्यिक अभिरुचि रखती थीं और काव्य-संवेदना से परिचित थीं।

"मीरा का काव्य स्त्री-मानस की पीड़ा को शब्द देता है। मीरा के युग में स्त्री आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्र नहीं थी। वह पुरूष के उपयोग-उपभोग के लिए थी और पुरूष की दृष्टि से देखी जाती थी। स्त्री सुख-दुख, अपने आकांक्षाएँ, वर्तमान-भविष्य उसके अपने भीतर निहित नहीं थे, पुरुष समाज द्वारा प्रत्यारोपित किए जाते थे। इसलिए स्त्री की नजर से स्त्री-मानस को पढ़ने का संस्कार और आवश्यकता मध्ययुग में कहीं दिखाई नहीं देती।"[2]

हिन्दी साहित्य की समृद्ध परंपरा को विकसित और सशक्त बनाने में महिला साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। प्राचीन एवं मध्यकाल से लेकर आधुनिक युग तक अनेक कवयित्रियों और लेखिकाओं ने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से साहित्य को नई दिशा दी। आधुनिक हिन्दी साहित्य के कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जीवन-सहचरी शिवरानी देवी भी इस परंपरा से अछूती नहीं रहीं। उन्होंने न केवल साहित्य-सृजन किया, बल्कि स्त्री जीवन के अनुभवों को शब्दों में ढालकर साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के विकास में स्त्रियों की रचनात्मक उपस्थिति भले ही ऐतिहासिक रूप से उपेक्षित रही हो, किंतु उनका योगदान बहुत मूल्यवान है। सुमति, शोभा, सीता, झाली, उमा, प्रभुता, भतियानी, उबीठा, गोपाली, कुंवरि, गंगा, गौरी, गणेश देवरानी, कला लखा, कृतगढ़ी, मानुमति, सुचि, सतभामा, जमुना, कोली, रामा, मृगा, देवा, देभक्तन, विश्रामा, जुगजेवा की कमला, देवकी, हीरा हरिचेरी पोषे, मीरा, लल्लेश्वरी और जनाबाई जैसी कवयित्रियों ने अपने काव्य के माध्यम से नारी अनुभूति, भक्ति, विद्रोह और आत्मस्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की। आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी महिला रचनाकारों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, इस्मत चुगताई, जना बेगम, अमृता प्रीतम, मृदुला सिन्हा, इंदिरा दांगी, चित्रा मुदगल, शोभा डे, मृणाल पाण्डे, निर्मला देशपाण्डे, अलका सरावगी, मैत्रयी पुष्पा, ऊषा प्रियवंदा, मालती जोशी, कृष्णा अग्निहोत्री, कृष्णा सोबती, सुधा अरोड़ा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मेहरून्निसा परवेज, लता अग्रवाल, निर्मला भुडारिया, डॉ. कामिनी, मीनाक्षी स्वामी, प्रभा खेतान, राजी सेठ और गीता श्री जैसी लेखिकाओं ने अपनी रचनात्मक ऊर्जा से हिन्दी साहित्य को वैचारिक गहराई और संवेदनात्मक विस्तार प्रदान किया। विशेष रूप से मन्नू भंडारी, ऊषा प्रियवंदा और कृष्णा सोबती छठे दशक से निरंतर साहित्य-सृजन में सक्रिय रही हैं। मन्नू भंडारी की कहानियाँ अपनी सहजता और जीवन-सत्य की प्रामाणिक अनुभूति के लिए जानी जाती हैं। ऊषा प्रियवंदा के कथा-संसार में शिल्प की सजगता तथा विषय-वस्तु की व्यापकता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है, जबकि कृष्णा सोबती स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं और यौन-संवेदनाओं को निर्भीक एवं सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए विशेष रूप से चर्चित हैं। इसी क्रम में मृदुला गर्ग का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपने लेखन से समकालीन साहित्य को नई दृष्टि और साहसिक संवेदना प्रदान की है। इस प्रकार महिला साहित्यकारों ने न केवल हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय सरोकारों से भी गहराई से जोड़ा।

"प्रेम-वासना से लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन, बालमन, मन की सतह इन लेखिकाओं ने खोल दी..... उन में चिंतन की गहराई है, बौद्धिकता है। वे आधुनिक संस्कृति और संस्कारों को परख सकती हैं। राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक जीवन उनसे अछूता नहीं है। नारी मनोविज्ञान से जुड़े हुए यथार्थ कथानक भी उन्होंने सँवारे हैं।"[3]

नारी संवेदनाओं और स्त्री-अनुभवों को पुरुष-प्रधान समाज के समक्ष सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली मन्नू भंडारी का हिन्दी साहित्य में योगदान अत्यंत विशिष्ट और अविस्मरणीय है। एक इंच मुस्कान, आपका बंटी, महाभोज और स्वामी जैसे उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक विडंबनाओं, पारिवारिक तनावों और स्त्री-जीवन की जटिलताओं को गहराई से उकेरा। इसके अतिरिक्त उनके सात कहानी-संग्रह, नाटक बिना दीवारों का घर तथा आत्मकथा एक कहानी यह भी उनकी रचनात्मक चेतना और वैचारिक ईमानदारी के प्रमाण हैं। मन्नू भंडारी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल अपने समय से संवाद किया, बल्कि अपनी पीढ़ी की स्त्री-आकांक्षाओं को भी सार्थक स्वर प्रदान किया। समकालीन महिला साहित्यकारों में तीव्रता से उभरता हुआ नाम गीताश्री का है, जिनकी रचनाएँ स्त्री-अस्मिता, सामाजिक विसंगतियों और वैचारिक प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं।

मन्नू भंडारी, ऊषा प्रियंवदा तथा कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य के उस सशक्त स्त्री-लेखन की प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने लगभग छठे दशक से निरंतर सृजन करते हुए साहित्य को समृद्ध किया है। यह अत्यंत संतोष का विषय है कि दीर्घ साहित्यिक यात्रा के पश्चात् भी उनकी रचनात्मक ऊर्जा अक्षुण्ण बनी हुई है। मन्नू भंडारी की कहानियाँ अपनी सहजता, संवेदनशीलता और जीवनानुभव की प्रामाणिकता के कारण विशेष महत्त्व रखती हैं। वहीं ऊषा प्रियंवदा के कथा-संसार में शिल्पगत सजगता के साथ विषय-वस्तु की व्यापकता दृष्टिगोचर होती है। दूसरी ओर कृष्णा सोबती स्त्री–पुरुष संबंधों, विशेषतः लैंगिक चेतना और मानवीय संबंधों को साहसिक एवं निर्भीक अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए जानी जाती हैं। इसी क्रम में मृदुला गर्ग का नाम भी अत्यंत प्रभावशाली एवं सशक्त कथाकार के रूप में आदरपूर्वक लिया जाता है। इसके अतिरिक्त सूर्यबाला अपनी कहानियों में जीवन के गहन यथार्थ और मानवीय संबंधों की सूक्ष्म परतों को उजागर करती हैं। उनका कथा-संसार हिन्दी साहित्य में अमरबेल की भाँति निरंतर विस्तार पाता हुआ अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहा है। हिन्दी साहित्य के आकाश को अपनी कालजयी रचनाओं से आलोकित करने वाली महान महिला साहित्यकारों में सुभद्राकुमारी चौहान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म इलाहाबाद एक संपन्न ठाकुर परिवार में हुआ था। सुभद्राजी ने मुख्यतः दो रस अंकित किए हैं - 'वीर' तथा "वात्सल्य"।[4]

उनके साहित्य में एक ओर नारी-सुलभ ममता और कोमल संवेदना है, तो दूसरी ओर पद्मिनी के जौहर जैसी प्रखर साहसिक चेतना भी विद्यमान है। उन्होंने अपने कथा-संसार में पारिवारिक जीवन के सजीव, आकर्षक और यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। साथ ही 'झाँसी की रानी' जैसी रचना के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रभक्ति, वीरता और बलिदान की अनुपम गाथा को सफलतापूर्वक साहित्य में रूपायित किया। 'मुकुल', 'त्रिधारा', 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', 'सीधे-साधे चित्र', 'झाँसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा हो बसंत' उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। प्रसिद्ध महिला साहित्यकार डॉ. मृदुला सिन्हा हिन्दी साहित्य की सशक्त कथाकार एवं निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके आठ उपन्यास, पाँच निबंध-संग्रह तथा सात कहानी-संग्रह सहित अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके साहित्य का मूल उद्देश्य समाज-जागरण एवं लोकमंगल की भावना से

अनुप्राणित है। राजकीय दायित्वों की व्यापक व्यस्तता के बावजूद वे जीवन के शाश्वत मूल्यों तथा सांस्कृतिक मान्यताओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपनी सृजनशील लेखनी को निरंतर सक्रिय बनाए हुए हैं।

"सम्मानीया मृदुला सिन्हा का मूल अभिप्रेत समाज जागरण एवं लोकमंगल है और इस हेतु उनकी लेखनी सतत् गतिशील है। राजकीय कार्यों की असीम व्यस्तता के बाद भी वह जीवन के शाश्वत मूल्यों तथा सांस्कृतिक मान बिन्दुओं के संरक्षण संवर्द्धन निमित्त अपने सृजनधर्मी व्यक्तित्व को निरंतर सक्रिय बनाए हुए हैं।[5] अपने अमर कथा एवं उपन्यास साहित्य के माध्यम से समाज और नारी के पारस्परिक एवं अन्योन्याश्रित संबंधों को अत्यंत गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करने वाली कृष्णा सोबती ने भी हिन्दी साहित्य के यज्ञ में अपनी अमूल्य एवं पवित्र आहुति प्रदान की है।

"हिंदी कथा साहित्य में गीताश्री एक परिचित नाम है। हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं-हंस, नया ज्ञानोदय, पाखी, कथादेश, इरावती, बहुवचन, लमही, निकट, संबोधन, आऊटलुक, शुकवार आदि में आपकी कहानियां निरंतर प्रकाशित और चर्चित हुई हैं। अब तक गीताश्री के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं: 'प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानिया' (2013) 'स्वप्न', साजिश और स्त्री' (2015) और 'डाउनलोड होते हैं सपने' (2017)"[6] आरंभिक काल से लेकर आधुनिक युग तक नारी साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य को अपने निरंतर और रचनात्मक योगदान से समृद्ध किया है। इसके बावजूद साहित्यिक जगत में उन्हें वह सम्यक् सम्मान और स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, जिसकी वे वास्तविक अधिकारिणी हैं। तथापि, तमाम उपेक्षाओं और बाधाओं के बीच भी स्त्री-लेखन की परंपरा निरंतर सक्रिय, जागरूक और संघर्षशील बनी हुई है। स्त्री लेखन के संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि पुरुष समाज प्रायः अपनी बौद्धिक और साहित्यिक महानता का निर्माण स्वयं रचित शब्द-जाल के माध्यम से करता रहा है। अपने प्रभावशाली नेटवर्क के सहारे वह स्त्री-चेतना को नियंत्रित और निर्देशित करने का प्रयास करता है। शोधकर्ताओं, इतिहासकारों और आलोचकों द्वारा पुरुष-लेखन पर जितना श्रम और विमर्श किया गया है, उसकी तुलना में स्त्री-लेखन पर अपेक्षाकृत बहुत कम ध्यान दिया गया है। यही असंतुलन साहित्यिक इतिहास में स्त्री-लेखन की उपेक्षा का प्रमुख कारण रहा है।

"स्त्रियों ने कभी नहीं सोचा कि पुरुष अपनी महानता को गढ़ता है, अपने शब्दजाल से वह मसीहा का भ्रम निर्मित करता है। यह पुरुष का अपना नेटवर्क है, जिसकी बदौलत वह स्त्री की प्रोग्रामिंग करता है, उसका संचालन करता है। शोधकर्ता, इतिहासज्ञ, आलोचकवृन्द जितनी मेहनत पुरुष-लेखन पर करते हैं, उतनी स्त्री-लेखन पर कभी नहीं करते। कबीर पर जितने शोधकार्य हुए, मीरा पर नहीं हुए। सात्र को फ्रांसिसी साहित्यिक जगत में ज्यादा सम्मान मिला, मगर सीमोन द बोउवा की उपेक्षा की गई। निराला पर चर्चा अधिक है, लेकिन महादेवी श्रद्धा की पात्र होते हुए भी अतीत हो गई हैं। स्त्री के प्रति यह उपेक्षा पितृसत्तात्मक समाज की बुनावट में अन्तर्निहित है।"[7]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के निर्माण, विकास और समृद्धि में नारी की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण रही है, बल्कि वह सदैव प्रेरणास्रोत और दिशा-निर्देशक

भी रही है। नारी ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज और परिवार को आदर्श मूल्यों से जोड़ने का प्रयास किया तथा करुणा, प्रेम, त्याग, सहनशीलता और संवेदनशीलता जैसे मानवीय गुणों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। साथ ही, नारी साहित्यकारों ने पुरुषप्रधान समाज की संकीर्ण, दोहरी और भेदभावपूर्ण मानसिकता के विरुद्ध सशक्त वैचारिक प्रतिरोध दर्ज किया। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के शोषण, उपेक्षा और पीड़ा को उजागर करते हुए न केवल सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया, बल्कि आत्मसम्मान, स्वाधीनता और समानता की चेतना भी विकसित की। यह साहित्य मात्र विरोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि रचनात्मक, सकारात्मक और सृजनात्मक दृष्टि से समाज में परिवर्तन की भूमि तैयार करने वाला सिद्ध हुआ। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में नारी का योगदान केवल साहित्यिक सौंदर्य और भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित न होकर सामाजिक जागरण और वैचारिक क्रांति का वाहक रहा है। नारी साहित्य ने समाज को नई दृष्टि दी, संवेदनाओं को विस्तार दिया और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ किया। अतः यह कहना पूर्णतः समीचीन है कि हिन्दी साहित्य में नारी का योगदान अविस्मरणीय, अमूल्य और सदैव वंदनीय

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल रोहिणी साहित्य का स्त्री-स्वर वर्ष साहित्य भण्डार इलाहाबाद - पृष्ठ 7 2015
2. वही - पृष्ठ 30
3. नीहार मीते स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप पृष्ठ 10
4. चौबे संतोष, कथा मध्यप्रदेश: खण्ड-1, विरासत, वर्ष 2017 विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, जिला रायसेन - पृष्ठ 12
5. तोमर जगदीश इंगित लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार डॉ. मृदुला सिन्हा की सृजन दृष्टि वर्ष 2015 अविनाश साहू, ग्वालियर - पृष्ठ 7
6. होता अरुण, हंस वर्ष-2017, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली - पृष्ठ. 72
7. खेतान प्रभा औरत अस्तित्व और अस्मिता महिला लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली हमारी भूमिका वर्ष 2013 पृष्ठ. 17

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समाज एवं संस्कृति के बदलते मूल्य

डॉ. विमुख उत्तमभाई पटेल

आर.के. देसाई कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, वापी (गुजरात)

सारांश

भारत की संस्कृति में सब कुछ है जैसे विरासत के विचार, लोगों की जीवन शैली, मान्यताएं, रीति रिवाज, मूल्य, आदतें, विनम्रता, ज्ञान, आदि। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता है जहां लोग अपनी पुरानी मानवता की संस्कृति और परवरिश का अनुकरण करते हैं। संस्कृति दूसरों से व्यवहार करने का, सौम्यता से चीजों पर प्रतिक्रिया करने का, मूल्यो के प्रति हमारी समझ का, न्याय, सिद्धांत और मान्यताओं को मानने का एक तरीका है।

पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी संस्कृति और मान्यताओं को नई पीढ़ी को सुनते हैं। इसलिए सभी बच्चे यहां पर अच्छे से व्यवहार करते हैं क्योंकि उनकी यह संस्कृति और परंपराएं पहले से ही उनके माता-पिता और दादा-दादी से मिले होते हैं। यहां प्रत्येक चीज में भारतीय संस्कृति की झलक है, जैसे नृत्य, संगीत, कला, व्यवहार, भोजन हस्तशिल्प, वेशभूषा, आदि। भारत एक बड़ा पिघलने वाला बर्तन है जिसके पास विभिन्न मान्यताएं और व्यवहार है जो कि अलग-अलग संस्कृतियों को यहां जन्म देता है।

भारतीय संस्कृति पर भूमंडलीकरण का गहरा प्रभाव होता जा रहा है। विरासत के रूप में मिली संस्कृति के तत्व बदलते जा रहे हैं। विश्व में अनेक संस्कृतियों है जो एक दूसरे पर प्रभाव डालती है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। विश्व की कई संस्कृतियों भौतिकता के पीछे पागल होती जा रही हैं इसलिए दमन और अत्याचार उनका स्वभाव बनता जा रहा है।

प्रस्तावना

भूमंडलीकरण के इस दौर में भारतीय समाज की परंपराएँ, मूल्य और स्थानीय संस्कृतियाँ व्यापक वैश्विक प्रभावों से टकरा रही हैं। भारतीय संस्कृति अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत के लिए जानी जाती रही है, अब उपभोक्तावाद, बाज़ार की ताक़तों और पाश्चात्य संस्कृति की छाया में अपनी पहचान के संकट से जूझ रही है।

आज का युग वैश्विक संचार, व्यापार, प्रवासन, सूचना-प्रौद्योगिकी तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान का युग है। इस प्रक्रिया को हम सामान्यतः Globalization अर्थात भूमंडलीकरण कहते हैं। भूमंडलीकरण ने न केवल अर्थव्यवस्था और राजनीति को प्रभावित किया है, बल्कि समाज और संस्कृति के मूल्यों में भी गहरा परिवर्तन लाया है। सामाजिक जीवन के मूल्य-विधान, सांस्कृतिक प्रतीक-प्रथाएँ, जीवन-शैली एवं मान्यताएँ अब उन सीमाओं में नहीं बंधी रहीं जो कभी परंपरागत रूप से सुदृढ़ थीं। इस शोध-पत्र में यह विश्लेषित किया जाएगा कि भूमंडलीकरण के प्रभाव में समाज और संस्कृति के मूल्य कैसे बदल रहे हैं, किन कारकों से प्रेरित हैं, तथा इसके सकारात्मक और नकारात्मक परिणाम क्या हैं।

उद्देश्य

1. भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को संक्षिप्त रूप से समझना।
2. यह अवलोकन करना कि समाज (सामाजिक संरचना, जीवन-शैली, संबंध-प्रकार) और संस्कृति (मान्यताएँ, परंपराएँ, सांस्कृतिक व्यवहार) में भूमंडलीकरण के कारण कौन-कौन से परिवर्तन आए हैं।
3. समाज एवं संस्कृति के बदलते मूल्यों का विश्लेषण — विशेषकर व्यक्तिगत विमुखता, उपभोक्तावाद, पारंपरिक एवं आधुनिक मूल्य-संयोजन, स्थानीय-वैश्विक पहचान।

- **सामाजिक मूल्यों में बदलाव**

भारत की संस्कृति को सुरक्षित करने वाली तीन विशेषताएं हैं-दीदी छाता, लोकतंत्र तथा समाज का माहौल द्यदुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में प्रसिद्ध भारत की विविधता में एकता, भाईचारा अहिंसा, सच्चाई, धर्मनिरपेक्षता आदि भी सराहनीय रहे द्य भारतीय संस्कृति नैतिकता, धर्म, दर्शन, साहित्य, काला और जीवनशैली में जुड़ी होती है। लेकिन आज पूंजीवादी सभ्यता से रिश्ता जोड़ने के कारण उसकी निजता में मिलावट आ गया है। इससे भारतीय संस्कृति में मौलिक परिवर्तन आ गया है। उपभोग वादी संस्कृति हमारी राष्ट्रीय संस्कृति को नष्ट करने का कारण बन रही है। जो संस्कृति हमें स्वाधीनता आंदोलन और फिर राष्ट्र निर्माण के प्रयासों से विरासत के रूप में मिली थी, आज की अवस्था में एक संस्कृति शून्य सा पैदा हो रहा है और उसने अंधा बाजारवाद, उपभोक्तावाद, वगैरह बढ़ रहा है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का उपन्यास 'अकाल संध्या' (2006) में ग्रामीण समाज में मजदूरों और निम्नवर्गीय लोगों के बदलाव एवं विकास की कहानी है। गांव के मजदूर लोग आर्थिक विकास एवं आत्मसम्मान के लिए शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं जिस कारण से पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था बदल गयी जहाँ निम्न जाति के लोग सवर्णों के घर खेती, मजदूरी करते और घर की स्त्रियाँ झाड़ू, गोबर, करसी का काम करती थी, फिर भी उनको आत्मसम्मान नहीं मिल पाता था। "दिल्ली, पंजाब, हरियाणा से लेकर जम्मू तक काम की तलाश में निकलने वाले इन मजदूरों के कारण गांव की कृषि व्यवस्था चरमरा गई है। बनी बनाई समाज की व्यवस्था भी दरक गई है। गांव में कोई रहना नहीं चाहता। बूढ़े, कमजोर और कुछ निकम्मे बचे हैं या तो कोई छोटा-मोटा काम कर लेते है या अपनी बाड़ी-झाडी और खेती-पथारी। इनके घर की औरत भी रोपनी डोभनी, कमौनी-कटनी करना नहीं चाहती। बेटा, पति या भाई-भतीजे बाहर से मनीआर्डर भेजते ही हैं तो क्यों जाए मेहनत-मजूरी।"[1] आर्थिक आत्मविश्वास आ जाने से निम्न वर्ग के घर भी घास फूंस की जगहों पर पक्के मकान और अपनी स्वयं की जमीन हो गयी।

महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में भागीदारी बढ़ने से परिवार-सम्बंधी, सामाजिक भूमिका-प्रारूप बदल रहे हैं। इससे सामाजिक मूल्य जैसे-परंपरागत पुरुष-प्रधानता, घरेलू प्रधानता आदि प्रभावित हुए हैं। इंटरनेट, मोबाइल, सोशल-मीडिया ने मनुष्यों के संबंध-प्रकार तथा सामाजिक सहभागिता को बदल दिया है। इससे सामाजिक संपर्क का स्वरूप बदल गया है— प्रत्यक्ष मेल-जोल कम, वर्चुअल संवाद अधिक।

शहरों में रहने वालों की संख्या बढ़ने, वैश्विक जीवन-शैली अपनाने वालों की प्रवृत्ति से ग्रामीण-स्थानीय जीवनशैली को चुनौतियाँ मिली हैं। उपभोक्तावाद, ब्रांड-उन्मुख जीवनशैली आदि बढ़े हैं।

पारंपरिक समाज में समूह, परिवार, जात-पंथ की भूमिका प्रमुख थी; अब व्यक्ति-सशक्तिकरण, व्यक्तिगत चुनाव की प्रवृत्ति बढ़ी है। आज समय-मानक तेजी से बदलते हैं, इसलिए जीवन-शैली, करियर, संबंध सब परंपरागत रूप से स्थापित नहीं रहते।लोक-संजाल, स्थानीय सामाजिक मूल्य कम, वैश्विक प्रेरणाएँ अधिक। सामाजिक प्रतिस्पर्धा, निजी लाभ, उपभोक्ता-मानक बढ़े हैं। जात-पंथ, धार्मिक टोली से कहीं अधिक शिक्षा-रोजगार-शहरीकरण महत्वपूर्ण हुआ है।

संस्कृति में बदलते मूल्य

लोककला, लोकगीत-नृत्य, स्थानीय रीति-रिवाज़ अब वैश्विक जीवनशैली में पीछे छूटने लगे हैं। युवा-पीढ़ी में लोक-स्मरण कम हो रहा है। अंग्रेजी भाषा, ग्लोबल मीडिया की प्रमुख भाषा बनी है। इससे स्थानीय भाषाओं, बोलियों का प्रयोग कम हो रहा है। वैश्विक ब्रांड्स, विज्ञापन, मीडिया-प्रचार ने उपभोक्तावादी जीवन-शैली को प्रोत्साहित किया है। इससे भोग-उन्मुखता बढ़ी है और जीवन के साधारण/संगठित मूल्य पीछे छूटे हैं। सोशल-मीडिया, ग्लोबल म्यूजिक/फैशन ट्रेंड्स ने युवाओं में एक वैश्विक-युवा-संस्कृति की उत्पत्ति की है, जो पारंपरिक आयोजनों-परंपराओं से स्वतंत्र है।

लोकप्रिय संस्कृति एवं वैश्विक संस्कृति का संघर्ष उत्पन्न हुआ है—कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक समूह अपनी पहचान बचाने हेतु प्रतिक्रियाएँ दे रहे हैं। परंपरागत रीति-रिवाज़ में बदलाव आया है, नया-विचार स्वीकार किया जा रहा है। विभिन्न संस्कृतियों का संयोजन, क्रॉस-कल्चरल आदान-प्रदान बढ़ा। व्यक्ति और समाज दोनों की सांस्कृतिक पहचान अब गतिशील है—स्थायी नहीं। धार्मिक और सांप्रदायिक सीमाएँ ज़रूरत से अधिक लचीली हुई हैं, लेकिन इससे कुछ सामाजिक तनाव भी बढ़े हैं।

संस्कृति सार्वकालिक नहीं होती है। प्रत्येक समाज का अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है, और उस समाज की अपनी संस्कृति होती है। अत अलग-अलग का एक दूसरे से भिन्न एक सांस्कृतिक बनावट होती है। उदाहरण के तौर पर पाश्चात्य समाज का सांस्कृतिक बनावट तथा भारतीय संस्कृति की बनावट, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, खान-पान, पहनावा-ओढ़ावा में अन्तर पाया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात होती है कि संस्कृति में अनुकूलन का गुण होता है। समय और आवश्यकताओं के अनुरूप संस्कृति समय के सापेक्ष में अनुकूलित हो जाती है। संस्कृति समाज तथा वातावरण के सापेक्ष होती है। उस समाज के वातावरण और परिस्थितियों में परिवर्तन होता है तो उस समाज की संस्कृति और माहौल में भी परितर्वन होना सम्भव हो जाता है। परिवर्तनशीलता संस्कृति का एक गुण है। संस्कृति एक प्रकार से संतुलित रूप का परिचय देती है। प्रत्येक देश तथा समाज की एक सांस्कृतिक पहचान होती है, लेकिन मानवीय संबंधों में प्रत्येक समाज के लोग मानवीय संवेदनाओं का पालन करते हुए सांस्कृतिक रूप से सर्व धर्म सम्भाव्य की संस्कृति का अनुसरण करते हैं। अतः मनुष्यों में दया और करूणा के भावनाओं का समावेश है। अतः मनुष्यों में दया और करूणा के पर्यावरण के रक्षार्थ एक मंच पर साथ-साथ उपस्थित होकर विश्व कल्याण की संस्कृति का पालन करते हैं।

संस्कृति एक निरन्तर प्रवाहमान धारा है, संस्कृति और सभ्यताओं के अन्तर तथा संबंध पर काफी विवेचन होता रहा है। यहाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दी गई व्यवहार परिभाषा को मानकर हम आगे चलेंगे। प्रायः सूत्र रूप में आचार्य

हजारी प्रसाद जी की परिभाषा इस प्रकार है- **"सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहजलभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत अन्तर आनन्द की अभिव्यक्ति ।"**[2] सभ्यता में व्यापकता अधिक पायी जाती है तथा संस्कृति में गहराई अधिक होती है। तभी संस्कृति का विवेचन दार्शनिक उपक्रम है तथा सभ्यताएँ इतिहास के प्रकरण में आती है। सभ्यताओं का विवेचन हम ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को आधार मानकर करते हैं। पहले ही यह कहा जा चुका है कि संस्कृति एक निरन्तर प्रवाहमान धारा है। भारतीय सन्दर्भ में संस्कृति की प्रारम्भिक धारा आर्य संस्कृति की रही है, जिसमें कई आर्येत्तर संस्कृतियाँ मिलती हैं। द्रविड़ संस्कार का प्रवाह, जैन और बौद्धों का सुधार आन्देलन आदि। बाहर से आने वाले प्रवाहों में इस्लाम और ईसाई धर्म के तत्व धूल-मिल जाते हैं, तथा साथ ही सुधार भी सम्मिलित होते चले जाते हैं।

आज भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय संस्कृति और जनमानस पर पाश्चात्य संस्कृति तथा उनके रीति-नीति का प्रचुर प्रभाव देखा जा सकता है। यह संस्कृतियों के टकराव का समय है। अपने आपकों आधुनिकता के दिखावा में लोग पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अनुसरण में अपने-आप को ढकेलते जा रहे हैं। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी मेंटकराहट भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के बीच थी। आज भारतीय संस्कृति का पश्चिम की संस्कृति से नहीं अपितु अमेरिकी संस्कृति और सभ्यता के साथ है। आज टकराहट जीवन-मूल्य की नहीं है बल्कि जीवन पद्धति के और उनकी जीवन-शैली को लेकर है। सन् 1986ई० में रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" नामक पुस्तक में उपर्युक्त के विषय में लिखा है- "संस्कृतियों के संघर्ष में, जिसका नवीनतम उदाहरण उन्नीसवीं शदी का पुनर्जागरण है, उसमें विरूद्धों का सामनजस्य किया। वहाँ संघर्ष चैतन्य शक्ति से था। अबः इस नयी टकराहट में पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता सामने है जो अपनी प्रकृति में जड़ है। शायद यहाँ बचाव की मुद्रा में समन्वय साधना की शैली अधिक फलप्रद होगी।"[3] वर्तमान संघर्ष में हमारे सामने पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता है जो उपभोक्तावाद तथा बाजारवाद को बहुत बढ़ावा देती है, क्योंकि उस सभ्यता (यांत्रिक) ने वहाँ पश्चिम में ही संस्कृति के मूल्यों के दूर तक आक्रान्त कर रखा है। बहरहाल, उपर्युक्त निदान को किंचित संशोधित करते हुए कहना होगा कि सभ्यता के स्तर पर बचाव से समन्वय की नीति अपनाना ठीक है पर संस्कृति के सन्दर्भ में निश्चय ही अभी अवशिष्ट है। साथ ही वैश्वीकरण का बहाना लेकर पूँजी का तथा अपनी सांस्कृतिक बनावट का उपनिवेश तथा उसका उपनिवेशीकरण कर रहे हैं। वैश्वीकरण स्थानीयताओं को सांस्कृतिक स्तर पर उसमें उद्वेलन पैदा कर रहा है।

संचार क्रांति के इस युग में सांस्कृतिक गतिविधियां मास मीडिया के माध्यम से संचालित हो रही हैं। ये माध्यम सूचनाओं, तथ्यों एवं संदेशों के प्रसार के लिए उच्च विकसित तकनीक का बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे हैं। मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि इनके कार्यक्रम वर्तमान में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के प्रसार के मुख्य हथियार सिद्ध हुए हैं। इसके द्वारा आर्थिक एवं राजनैतिक हित साधे जा रहे हैं। "इन दिनों मीडिया जनमत तैयार करता और निगमों की विचारधारा को निरंतर मजबूत करता रहता है। बड़े व्यवसाय समूहों के पक्ष में खबरें गढ़ता है। खबरों को उनके पक्ष में 'घुमा देता' है इससे बड़ी बात है कि परेशान करने वाली बड़ी घटनाओं को दरकिनार कर देता है। या फिर उन्हें तोड़ मरोड़ कर पेश करता है। इस तरह वह दुनिया की ऐसी तस्वीर पेश करता है जो बड़ी पूंजी को पसंद आए। चाहे यह तस्वीर हमारी रोज व रोज की जिदंगी से कितनी भी दूर क्यों न हो।"[4]

भूमंडलीकरण के अंतर्गत मीडिया का लक्ष्य भूमंडलीय संस्कृति की स्थापना है। अर्थात् पुराने को प्रतिस्थापित कर नई संस्कृति की पैठ बनाना। यह नवीन सांस्कृतिक वर्चस्ववाद आर्थिक शक्तियों से संचालित है। जिसे आजकल अनेक नाम

दिए जा रहे हैं, यथा- साम्राज्यवाद, अतिसाम्राज्यवाद, नवसाम्राज्यवाद, सांस्कृतिक नव-साम्राज्यवाद। यह बात बार-बार कही जा रही है कि उपनिवेशवाद का अवसान हो चुका है लेकिन साम्राज्यवाद अब भी रूप बदलकर अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है। विभिन्न माध्यमों द्वारा वह अपना विस्तार जारी रखे हुए है।

निष्कर्ष

भूमंडलीकरण ने समाज एवं संस्कृति के मूल्यों को व्यापक रूप से बदल दिया है। सामाजिक संरचना, जीवनशैली, मान्यताएँ, सांस्कृतिक व्यवहार — सभी में परिवर्तन हुआ है। सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य अब उस स्थिर रूप में नहीं रहे जो कभी थे; बल्कि वे गतिशील, मिश्रित और चुनौतियों से भरे हैं। आज व्यक्ति की पहचान, सांस्कृतिक संबद्धता और सामाजिक सहभागीकरण पहले से कहीं अधिक जटिल हो गया है।

भूमण्डलीकरण की उपभोगवादी संस्कृति ने हमारे समाज में वहुत बदलाव कर दिया है। हम पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौध की दुनियाँ में फँसते जा रहे हैं। जहाँ हमारे समाज में परिवारवाद चलता था। परिवार का बड़ा आदमी अथवा बुजुर्ग ही घर का प्रमुख होता था, आज परिवार की बजाय समाज व्यक्तिवादी दुनियाँ की तरफ बढ़ रहा है। परंतु यह परिवर्तन स्व-स्वरूप बुरा अथवा अच्छा नहीं है — यह अवसर एवं जोखिम दोनों प्रस्तुत करता है। यदि हम विवेकपूर्ण दृष्टि अपनाएँ, तो आधुनिकता एवं परंपरा के बीच संतुलन बना सकते हैं। स्थानीय संस्कृतियों को संरक्षित एवं संवर्धित करके, वैश्विक सांस्कृतिक आदानों-प्रदान की प्रक्रिया को सकारात्मक रूप से उपयोग में लाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. http://www.shabdkosh.com
2. रामधारी सिंह 'दिवाकर' अकाल संध्या, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ०सं०-97
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी,पृष्ठ-212
4. वही, 229
5. अमित भादुड़ी, समाधान ही समस्या है, फिलहाल ट्रस्ट, पटना, अप्रैल 2015, पृ. 24

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आंबेडकरी साहित्य (दलित साहित्य) और भारतीय संविधान

[1]आयु. महेंद्र अर्जुन आखाड़े, [2]डॉ. महेंद्रकुमार आर. वाढे

हिंदी अनुसंधान विभाग: श्री. शि. वि. प्र. संस्था का भाऊसाहब
ना.स. पाटील साहित्य एवं मुल्ला फिदा अली, मुल्ला अब्दुल अली वाणिज्य महाविद्यालय देवपुर, धुले

प्रस्तवाना :

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त लोकतांत्रिक संविधान की नींव रखी गई। विश्व में भारत की पहचान सबसे बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में परिलक्षित होती है तथा वर्तमान समय में लोकतांत्रिक राष्ट्र भारत राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चुनौतियों से गुजर रहा है इस दृष्टि से वर्तमान परिपेक्ष में दलित साहित्य और भारतीय संविधान को समझना तथा जानना चुनौतीपूर्ण कार्य है। भारतीय संविधान और दलित साहित्य का गहरा अंतर्संबंध रहा है। भारतीय संविधान अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, राष्ट्र की एकता एवं अखंडता में सामाजिक न्याय में विश्वास रखता है यही भारतीय लोकतंत्र की खूबी है, यह खूबी दलित साहित्य को मजबूती के साथ संघर्ष करने का बल देती है तथा बहुत प्रिय भी है, प्रिय क्यों न होगी भला दलित साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत संविधान के प्रमुख निर्माता डॉ. बाबासाहब आंबेडकर रहे है। सदियों से दलितों, वंचितों के साथ सामाजिक अन्याय किया गया है। हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था और जातीय भेदभाव की कुप्रथाएं अभिन्न अंग रही है। मनुष्य को मनुष्य न समझना जैसी घिनौनी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण मनुवाद की देन रही है। पिछड़े, दलित, स्त्रीया एवं आदिवासी हजारों वर्ष से जातियता, दासता और गुलामी के दंश को झेलते रहे है। महात्मा ज्योतिबा फूले और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि के सामाजिक सुधार एवं राजनीतिक संघर्ष से दलितों और वंचितों में ऊर्जा का स्रोत निर्माण हुआ। दलित साहित्य प्रथम मराठी भाषा में ६० के दशक में आक्रोश और प्रतिरोध के साथ सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया। उसके पश्चात ८० के दशक में हिंदी साहित्य में तथा अन्य भारतीय भाषा में परिलक्षित होता है । वर्तमान में दलित साहित्य सामाजिक आंदोलन के रूप में भारतीय मुख्य साहित्य प्रवाह में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने का संघर्ष कर रहा है साथ ही संवैधानिक अधिकार एवं मानवीय अधिकारों के प्रति सचेत एवं जागरूक है इस दृष्टि से वर्तमान परिपेक्ष में दलित साहित्य और भारतीय संविधान की चुनौतियों को लेकर संघर्ष तथा विमर्श करना आलेख का उद्देश है।

वर्तमान दलित साहित्य विमर्श :

साहित्य में 'दलित' शब्द व्यापक अर्थ रखता है, जिसमें शोषित, श्रमिक और भूमिहीन, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य, असहाय , बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आदि सभी शामिल हैं, जो सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। आज दलित साहित्य को एक परिपक्व परिभाषा में अभिव्यक्त करना तथा बांधना शेर की खाल खींचने जैसा है। स्वानुभूति बनाम सहानुभूति, दलित साहित्य या आंबेडकरवादी साहित्य,

कला कला के लिए या भोगे हुए यथार्थ से, वर्तमान समय में अनेक प्रश्न दलित साहित्य को घेरे हुए है फिर भी दलित साहित्य भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए समता, स्वतंत्रता, बंधुता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना करने का भरसक यत्न करता है तथा अपनी अस्मिता को, आत्म सम्मान को एवं अपनी पहचान को एक नया आयाम देने में काफी सफल रहा है।

इक्कीसवीं सदी के बाजारवाद और भूमंडलीकरण के दौर में सूचना और संचार के माध्यम ने विश्व को अपने ओर समेट लिया है जाहिर है दलित साहित्य इससे अछूता नहीं रह सकता। आए दिन समाज को अछूतपन का, दलित उत्पीड़न का दंश झेलना पड़ रहा है अपितु जिस तरह दलित साहित्य सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया है वह काफी हद तक अपनी अस्मिता को, अपनी पहचान को विश्व पटल पर रखने में कामयाब हुआ है। कामयाबी की यह सीडी दलित साहित्य की पहिली पीढ़ी से लेकर आज की इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के चलते भरपूर संघर्ष करना पड़ा है और संघर्ष जारी है। पहिली पीढ़ी के सामने जो चुनौतियां थी।उससे भी ज्यादा चुनौतियों का सामना आज की पीढ़ी के सामने है इन चुनौतियों से उभरने के लिए बहुत कड़े परिश्रम की जरूरत है। वर्ण व्यवस्था , जातिवाद, धार्मिक गुलामी, शिक्षा का बाजारीकरण, आर्थिक समस्याएं, बंधुआ मजदूरी, राजनीतिक बिखराव आदि अनेक प्रश्न वर्तमान दलित साहित्य के सामने बिखरे पड़े हैं इससे उभरना चुनौती पूर्ण कार्य दलित साहित्य को करना है। विख्यात दलित साहित्यकार माता प्रसाद का मानना है कि- "दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य और असहाय है, पर साहित्य की रचनाएँ हैं, वही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इसमें बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती हैं। दलित साहित्य वेदना, चीख और छटपटाहट का साहित्य है।"१ वर्णव्यवस्था, जातिवाद, धार्मिक गुलामी, आर्थिक पिछड़े, शिक्षा से वंचित, दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य, असहाय , बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आदि संभावनाएं मानवता की अवहेलना की कड़ियां हैं। मनुष्य को मनुष्य न समझना असंवेदनशील और प्रकृति के विरुद्ध है, यह छटपटाहट दलित साहित्य में चीख और वेदना के साथ प्रतिरोध करती है तथा इससे निजात पाना और जीवन की जिजीविषा दलित साहित्य की सर्वोच्च मांग है जो न्यायपरक प्रतिकार से मनुष्य जीवन को सफल बना सकती है। शरणकुमार लिंबाले का मानना है कि जिस प्रस्थापित विषम व्यवस्था ने दलितों का शोषण किया है, उस व्यवस्था को दिया गया यह नकार है। इस। नकार का स्वरूप दुधारी है यह विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की मांग करने वाली सोच है। इसलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि दलित साहित्य में नकार – यथार्थपरक विधायक दृष्टि न्यायपरक प्रतिकार है।२

दलित साहित्यकार आंबेडकरवाद को दलित चेतना की प्रेरणा है मानते हैं। दलित चेतना सत्य, न्याय और नीति के विजय की चेतना है। आज की सर्जक चेतना मानवद्रोही, राष्ट्रद्रोही एवं धर्मद्रोही ब्राम्हणवादी कठोर अनुभवों से जन्मी है। दलित चेतना अर्थात अन्याय के विरुद्ध आक्रोश। अत्याचार का विरोध परंपरा से विद्रोह

तथा सांप्रत समाज की विषमताओं से जन्मी स्वान्यभूति संवेदना जो कि निर्माणकारी जागरूकता की जिसमे दलित, पीड़ित, शोषित जन की यातनाएं है, वेदना है व्यथा है, संघर्ष है, आक्रोश है, विद्रोह है सामाजिक उत्कर्ष की प्रक्रिया एवं नूतन क्रान्ति का बीजारोपण है। दलित साहित्य मनुष्य को केंद्र बनाता है। मनुष्य को महानता प्रदान करता है। इस दलित चेतना के गर्भ में वसुधैव कुटुंबकम् सबै भूमि गोपाल की अथवा विश्वबंधुत्व की भावना निहित है।३

हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, तुलसी राम, श्यौराज सिंह 'बेचैन', शरण कुमार लिंबाले, भगवान दास, डी. आर. जाटव, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर, माताप्रसाद, सोहनलाल सुमनाक्षर, कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, उर्मिला पवार, दयानंद बटोही, रजनी तिलक, रजत रानी मीनू, असंगघोष, चंद्रभान, मलखान सिंह, रतनकुमार सांवरिया, कुसुम वियोगी, अनिता भारती जैसे कई साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण और अमूल्य योगदान दिया है, जो दलित जीवन के यथार्थ, पीड़ा और संघर्ष को आवाज देता है ।इन साहित्यकारों ने दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अनुभवों को अपनी कहानियों, कविताओं, आत्मकथाओं और नाटकों के माध्यम से दुनिया के सामने रखा, जिससे समाज में बदलाव की चेतना बढ़ी ,इन्होंने दलित विमर्श को सिर्फ़ गद्य तक सीमित नहीं रखा, बल्कि कविता, आत्मकथा, कहानी, नाटक और आलोचना जैसे विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का प्रतिरोध करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरण कुमार लिंबाले जैसे विद्वानों ने 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' विकसित कर दलित लेखन को एक सैद्धांतिक आधार प्रदान किया है तथा आज भी कई नए लेखक इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे है और दलित साहित्य लगातार विकसित हो रहा है।

वर्तमान में संविधान विमर्श :

भारतीय संविधान हम भारत के लोगों का जीवन विशाल एवं समृद्ध बनाने के लिए तथा नागरिक के व्यक्तित्व के विकास और गरिमा की रक्षा करने हेतु संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद १२ से लेकर ३५ तक में मौलिक अधिकार दिए गए हैं, इन्हें 'भारत का मैग्नाकार्टा' भी कहा जाता है, जिनमें समानता, स्वतंत्रता, शोषण के विरुद्ध, धार्मिक स्वतंत्रता, संस्कृति और शिक्षा संबंधी और संवैधानिक उपचारों के अधिकार शामिल हैं। साथ ही संविधान के अनुच्छेद 51 'क में मौलिक कर्तव्य भारत के नागरिक का नैतिक कर्तव्य है जो राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित करते है।

वर्तमान में भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, नागरिकता और मूलभूत ढांचे जैसे विषयों को लेकर चर्चाएं चल रही है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी राष्ट्र है। समाजवादी' और 'पंथनिरपेक्ष' शब्दों को हटाने की बहसें चल रही है साथ ही हिन्दू राष्ट्र का ढोल पीटा जा रहा है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर हिंदू राष्ट्र को राष्ट्र के लिए एक अभिशाप के रूप में देखते हैं तथा लोकतांत्रिक ढांचे के लिए सबसे बड़ा खतरा मानते हैं अगर हिन्दू राज हकीकत बनता है, तब वह इस मुल्क के लिए सबसे बड़ा अभिशाप होगा। हिन्दू कुछ भी कहें, हिन्दू धर्म स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के लिए खतरा है। इन पैमानों पर वह लोकतन्त्र के साथ मेल

नहीं खाता है। हिन्दू राज को किसी भी कीमत पर रोका जाना चाहिए। (पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इण्डिया, पृ.338) दलित आंदोलन के परिपेक्ष में आज की सबसे बड़ी लड़ाई हिन्दू राष्ट्र को रोकना तथा संविधान को बचाना है। "हिंदू राष्ट्र के मायने क्या है? स्त्रियों, दलितों और वंचितों को ब्राह्मणवादी व्यवस्था में विवेकहीन और असहाय गुलाम बनाना। इसलिए आज की सबसे बड़ी लड़ाई संविधान को बचाने की लड़ाई बन गई है। संविधान के प्रति सम्मान ही नहीं, बल्कि उसकी सुरक्षा करना असली दायित्व है।"४

प्रौद्योगिकी में निजीकरण का बढ़ता प्रभाव तथा आरक्षण को लेकर भी चिंताएं व्यक्त की जा रही है। आरक्षण में क्रिमिलियर को लेकर भी सवाल उठ रहे है। सदियों से सताएं गए मानव समूह को एक सामाजिक न्याय प्रदान कर लोकतंत्र का बुनियादी ढांचा विकसित करना है। आरक्षण कोई गरीबी हटाव योजना नहीं है। लोकतांत्रिक मूल्य सामाजिक न्याय के तहत आरक्षण एक प्रतिनिधित्व है। प्रोफेसर रविकांत का मानना है "जहां तक आरक्षण की बात है, तो आरक्षण कोई ख़ैरात नहीं है और न ही यह ग़रीबी उन्मूलन का कार्यक्रम है. इसके पीछे जो दो मूल कारण थे, वह थे शैक्षिक और सामाजिक पिछड़ापन. एक तो ईडब्ल्यूएस (आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग) लागू करके संविधान के ख़िलाफ़ काम किया गया है, और दूसरा वर्गीकरण का मामला है, जो कहीं न कहीं प्रश्नांकित होता है।"५

वर्तमान समय में संविधान को लेकर अनेक प्रश्न चिन्हित किए जा सकते है। संविधान लागू होने के तीन दिन बाद ही दक्षिणपंथियों ने संविधान अभारतीय होने के दोषारोपण किए थे, तब से लेकर आज 75 वर्ष के बाद भी उनके द्वारा बहुत कमजोर करने के प्रयास किए गए हैं फिर भी उनके हाथ असफलता लगी है। लोकतांत्रिक व्यवस्था से ही देश मजबूत और शक्तिशाली राष्ट्र बना है। समता, स्वतंत्रता एवं बंधूता ही मानव जीवन में खुशहाली लाएगी। दलित, आदिवासी, पिछड़े, स्त्रीयों आदि के जीवन में जो बदलाव और परिवर्तन हुआ है यह सब संविधान की वजह से संभव हो पाया है, समानता, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्रों में, जैसे अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17), आरक्षण (अनुच्छेद 16(4)), शिक्षा में विशेष प्रावधान (अनुच्छेद 15(4)), और SC/ST (अत्याचार निवारण) अधिनियम जैसे कानूनों के माध्यम से, जिससे उन्हें सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण के अवसर मिले हैं, इस लिए हमारे सबसे बड़े लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाए रखना हम सब की जिम्मेवारी है।

दलित साहित्य और संविधान अंतर्संबंध :

भारतीय संविधान और दलित साहित्य का गहरा संबंध है। बीबीसी हिन्दी के साप्ताहिक कार्यक्रम, 'द लेंस' में कलेक्टिव न्यूज़रूम के डायरेक्टर ऑफ़ जर्नलिज़्म मुकेश शर्मा के सवालों पर चर्चा में दिल्ली विश्वविद्यालय की असिस्टेंट प्रोफ़ेसर अदिति नारायणी पासवान ने कहा की, "हमारे लिए संविधान का मतलब है हमारी पहचान।" उन्होंने आगे कहा, "सबके लिए संविधान का मतलब है अस्पृश्यता का उन्मूलन। हम सबके लिए संविधान का मतलब है अवसर की समानता और संविधान हम सबके लिए आरक्षण है, जिसके कारण आज सभी पिछड़े, शैक्षिक रूप से पिछड़े या सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों की आवाज़ को हम सुन पा रहे हैं। ६

संविधान के निर्माता डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के सामाजिक आंदोलनों ने तथा लेखनी ने दलित चेतना को जगाया। संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय जैसे मौलिक अधिकार देकर दलितों के लिए एक वैधानिक मंच प्रदान किया, जो दलित साहित्य के आंदोलनों का आधार बना। विख्यात साहित्यकार चंद्रभान प्रसाद लिखते है कि "भारतीय समाज, खासकर उसकी राजनीतिक शाखा, द्वारा अंबेडकर द्वारा रचित संविधान को स्वीकार किए जाने के बाद, दलितों का एक बड़ा हिस्सा राष्ट्रीय मुख्यधारा में एकीकृत महसूस करता है। यह कहा जा सकता है कि संविधान ने भारत को समता के एक नए युग में प्रवेश करने का अवसर दिया, भले ही सैद्धांतिक रूप से ही सही।"७

संवैधानिक अधिकारों के बावजूद ब्राम्हणवादी मानसिकता दलितों के साथ आए दिन जातीय भेदभाव और उत्पीड़न करती हैं। बीबीसी हिन्दी के साप्ताहिक कार्यक्रम, 'द लेंस' में कलेक्टिव न्यूज़रूम के डायरेक्टर ऑफ़ जर्नलिज़्म मुकेश शर्मा के सवालों पर चर्चा में लोकसत्ता के संपादक गिरीश कुबेर ने कहा "मैं पूरी तरह से सहमत हूं कि वह संवैधानिक भावना जो एक देश में होनी चाहिए, वह अभी तक हमारे यहां नहीं हुई है।"८ दलित साहित्य इसी अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है। दलित साहित्य अब केवल दलितों के लिए नहीं, बल्कि व्यापक समाज के लिए लिखा जा रहा है, जो मानवतावादी दृष्टिकोण संजोए हुए है जो दलित राष्टवाद की परिभाषा से व्याख्यायित किया जा रहा है। वर्तमान दौर में दलित साहित्य अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। दलित आंदोलन का प्रभाव कम हो रहा दलित राजनेता हिन्दू राष्ट्र की पालकी ढो रहे हैं यह बहुत बड़ी चिंता का विषय है। वागर्थ की परिचर्चा, बहस में सुपरिचित लेखक और इतिहासकार हितेंद्र पटेल ने कहा कि "हिंदू राष्ट्रवाद के बढ़ते प्रभाव के साथ ही दलित आंदोलन का प्रभाव पहले से कम हुआ है। ग्लोबलाइज़ेशन के वर्तमान दौर में हिंदू राष्ट्रवादी राजनीतिक अभियान इतना प्रभावी बना कि बहुत सारे दलित वर्ग के बुद्धिजीवी भी उसके साथ हो गए हैं। ऐसे में दलित राष्ट्रवाद का प्रोजेक्ट तो अब बिखर गया लगता है।"९ अपितु वर्तमान में नए दलित रचनाकार संवैधानिक मूल्य स्थापित करने के लिए तथा सामाजिक आंदोलन को परिपक्व बनाने के लिए संकल्प कृत है। श्री चंद्रकुमार वरठे ने माना है – " दलित साहित्य वह विचार है जो मानव को प्रतिष्ठित करना चाहता है, देश धर्म जाति से ऊपर उठ कर महानता प्रदान करना चाहता है। दलित साहित्य का आंदोलन एक ऐसा आंदोलन है जो क्रांति के माध्यम से समता, स्वतंत्रता, बधुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों की स्थापना के लिए कृत संकल्प है।१०

निष्कर्ष:

दलित साहित्य एक अपनी अलग पहचान बना चुका है तथा मुख्यधारा का साहित्य और दलित साहित्य में अभी भी टकराव की स्थितियां बनी हुई है साथ ही दलित साहित्य सामाजिक आंदोलन के तौर पर संघर्षरत हैं यह कार्य चुनौति से भरा है। दलित साहित्य और संविधान का गहरा अंतर्संबंध है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में परिवर्तन को लेकर संविधान पर बहसें चल रही है और चलती रहेगी। संविधान एक ऐतिहासिक जीवंत दस्तावेज है जो लोकतंत्र को विकसित करने के लिए बहसें और चर्चाएं महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करती है साथ ही हिन्दू राष्ट्र मांग को लेकर खतरा मंडरा रहा है, इससे दलित चेतना और राष्ट्रद्रोही चेतनाओं में

टकराव की स्थितियां बनी रहती है यह देश के लिए खतरनाक है। दलित साहित्य ने संविधान को लेकर समाज मन को जागृत करने का व्यापक प्रयास किया है तथा समता, स्वतंत्रता, बंधूता और सामाजिक न्याय दलित साहित्य की मूलचेतना है जो विश्व मानवता को दिग्दर्शित करने का निर्वहन करती है।

संदर्भ सूची:

1. **https://m.sahityakunj.net///blog/hindi-sahity-aur-dalit-vimarsh**
2. शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. ४३
3. नरसिंहदास वनकर, दलित विमर्श, पृ. ४१ ४)https://www.forwardpress.in/2024/10/news-congress-rahul-gandhi-constitution/
4. https://www.bbc.com/hindi/articles/c70kxwj54d6o
5. **https://www.bbc.com/hindi/articles/c70kxwj54d6o**
6. द इकोनॉमिक टाइम्स, 17 नवंबर 2015 ८)**https://www.bbc.com/hindi/articles/c70kxwj54d6o**
7. https://vagartha.bharatiyabhashaparishad.org/
8. चंद्रकुमार वरठे, दलित साहित्य आंदोलन, पृ.७६

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

इक्कीसवी शती का विमर्शमूलक हिंदी साहित्य : बदलते परिप्रेक्ष्य में 'किन्नर विमर्श' (तिसरी ताली के संदर्भ में)

डॉ. भारती वळवी (वाघ)

प्रोफेसर

एस.पी.डी.एम. महाविद्यालय, शिरपूर जि. धुलियाँ, महाराष्ट्र – पिन- 425405

प्रस्तावना :

इक्कीसवी शती में हिंदी साहित्य में लेखन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ | इस युग में साहित्य में नये-नये विमर्श सामने आये | बदलते परिप्रेक्ष्य में साहित्यकारोंने विविध विमर्श पर अपनी लेखनी चलाकर समाज में नये प्रतिमान रखे | इक्कीसवी शती के संदर्भ में इस वाक्य से यह पता चलता है कि नये विमर्श साहित्य में किस प्रकार से उभरकर सामने आये-

("बीसवी सदी के साहित्यिक आंदोलन एवं विमर्श समाप्त हो चुके है, कुछ समाप्ति की ओर बढ़ रहे है एवं कुछ जोर भी पकड़ रहे है | इसी बात को अस्विकार नहीं किया जा सकता है कि इस दिशा में कुछ नये विमर्श भी उभर रहे है |")

वर्तमान युग को विमर्शों का युग कहेंगे तो अतिशयोक्ति नहीं होंगी | इस युग के साहित्य में हर उस घटक के संदर्भ में चर्चा हो रही है जो हाशिए पर है | साहित्य और समाज का अटूट संबंध होने के कारण साहित्य में हर उस उपेक्षित समुदायों पर चर्चा एवं लेखन किया जाने लगा एवं समाज को इस समुदायों से परिचित कराके उनके संघर्ष संबंधी सोचने पर विवश किया |

साहित्य में नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, मुस्लिम विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि विमर्श के साथ-साथ किन्नर विमर्श पर भी यथार्थ रुप से चर्चा की गयी | किन्नर विमर्श पर लेखनी चलानेवाले साहित्यकारों का यहीं उद्देश्य था कि किन्नर विमर्श पर चर्चा करते समय समाज की मानसिकता एक उनका किन्नरों के प्रति जो दृष्टिकोण है उसे बदलना आवश्यक है | अतः जिस दिन समाज का किन्नर की तरफ देखने का दृष्टिकोण बदलेंगा उसी दिन सही मायने में किन्नर विमर्श यथार्थ के साथ साहित्य में चित्रित होंगा |

विषय विवेचन :

किन्नर अर्थात तृतीय लिंगी जो न तो नर होता है और ना ही नारी | हिन्दी भाषा में इसके कई पर्यायवाची नाम है जैसे- शिखण्डी, खोजा, हिज़डा, छक्का आदि | हिज़डा उर्दू शब्द है जो अरबी भाषा के हिज्र शब्द का रुप है जिसका अर्थ है- अपने कबीले को छोड़ना अर्थात अपने घर, परिवार एवं समाज से विमुक्त होना |

देखा जाए तो पौराणिक काल में किन्नर की अवधारणा हुई है | जैसे-महाभारत का शिखंडी और अर्जुन का ब्रहन्नला रुप | वर्तमान युग में इस उपेक्षित वर्ग को समाज में सम्मानजनक बर्ताव के कारण किन्नर इस

शब्द का प्रयोग किया जाने लगा | इस वर्ग संबंधी साहित्य में नव-नवीन विचार रखे जाने लगे और यह वर्ग भी समाज का ही एक रुप है इस संदर्भ में जागृति निर्माण करने का प्रयास किया जाने लगा |

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श पर आधारित कई उपन्यास लिखे गए जैसे-यमदीप, मै भी औरत हूँ, किन्नर कथा, में पायल, पोस्ट बॉक्स नं. २०३, नालसोपारा, दरमियाना, अस्तित्व आदि |

प्रदीप सौरभ द्वारा लिखित 'तीसरी ताली' किन्नर विमर्श पर आधारित एक सशक्त उपन्यास है | जिसमें किन्नर और समलैंगिक समाज को केन्द्र में रखकर लेखन ने इस उपन्यास को रचा है | प्रदीप सौरभ एक पत्रकार होने के कारण समाज के कई घटको से उनका परिचय होने के कारण एवं उनके अनुभवों के कारण उन्होंने जो भी लिखा वह यथार्थ के धरातल पर खरा उतरता है |

'तीसरी ताली' सन २०१४ में प्रकाशित किन्नर विमर्श का आधुनिक उपन्यास है | इस उपन्यास संदर्भ में सुधीर पचौरी लिखते है-

("यह उभयलिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरकस हिज़डो, लौंडो, लौंडेबाजो, लेस्बियनों और विवृत्त-प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिन्दगी जीती है|")

तीसरी ताली उपन्यास का कथानक दिल्ली की 'सिद्धार्थ एन्क्लेव' हाऊसिंग सोसायटी से प्रारंभ होता है| तीसरी ताली में कई पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया गया है | किन्नर पात्र में डिम्पल जो किन्नरों के डेरों की प्रमुख है | बिंदिया, राजा उर्फ रानी, सुनयना, सुंदरी, कलामौसी, पिंकी, निकिता, नीलम, मनीषा जो महंत है, मुमताज, जरोना, बाबी जो फरीदाबाद के हिजड़ो की गद्दी की मालकीन है | विनीत से बनी विनीता आदि पात्रों के माध्यम से लेखक ने किन्नर समाज की व्यथा एवं दुर्दशा को चित्रित किया है |

विनीता जिसका जन्म सेंट्रल सेक्रेटेरियट में यूडीसी रहे गौतम साहेब के यहाँ हुआ | तीन बेटियों के बाद जब उन्हें पुत्र हुआ तब उनकी खुशी सातवें आसमान पर थी परंतु उन्हें जब पता चला की यह बच्चा न तो लड़का है और ना ही लड़की तब वे निराश हो गये | विनीत का बदलाव देखकर परेशान रहने लगे | विनीत बड़ा होकर ब्युटिशियन का कोर्स करता है| उसके पार्लर में बड़े-बड़े लोक, टी.वी. कलाकार, बड़े उद्योगपतियों के बच्चे आने लगते अपने बेटे की तरक्की से गौतम साहब जिन्हें अपना बेटा एक किन्नर है इस बात से जो पहले शर्म महसूस करते थे आज उन्हें उस पर गर्व होने लगता है |

विनीत से विनीता बनने पर अब वह अपना घर बसाना चाहती है| विजय नाम फोटोग्राफर से वह प्यार करने लगती है | विनीता के संदर्भ में लिखा गया है-

("'तीसरी ताली' का महत्वपूर्ण चरित्र विनीता है | जिसका उपन्यासकार ने बड़े मनोयोग से चित्रण किया है और उसके माध्यम से किन्नर के सशक्तिकरण का संकेत दिया है |"२)

डिंपल किन्नर की मानी हुई बेटी जो एक पूर्ण स्त्री है मंजू वह भी विजय से प्यार करती है | मंजू जब अपने प्यार का इजहार करती है तब विजय बेबसी से कहता है-

("दुनिया के दंश से अपने-आपको बचाने के लिए मैंने लगातार लड़ाई लढी है और खुद को स्थापित किया | मै नाचना-गाना नहीं, कमाना चाहता था | भगवान राम के उस मिथक को झुठलाना चाहता था, जिसके कारण तीसरी योनि के लोग नाचने गाने के लिए अभिशप्त है----परिवार और समाज से बेदखल है |"३)

'तीसरी ताली' उपन्यास में किन्नर समाज से जुड़ी समस्याओं का चित्रण तो मिलता ही है परंतु साथ-साथ उनके जीवन में कई ऐसे प्रसंगों को भी लेखक ने उद्घाटित किया है जिसमें राजनीति के संदर्भ में उनके विचार भी दिखायी देते है | किन्नर की गुरु जो चेन्नई से आयी है कलावती जब कानपुर में सब किन्नर एकत्रित होते है तब राजनीति संदर्भ में वह कहती है-

("हम राजनीति में घुस जायेंगे तो शादियों में गाना कौन गायेगा ? राजनीति एक दो साल ! उसके बाद तो हमें तालियाँ ही बजानी है |"4)

अर्थात किन्नर समाज अपने आपको बदलने को तैयार नहीं है | उसने अपने जिवनयापन के लिए जो जीवन चूना है वहीं उसे सही लगता है | परंतू वर्तमान में किन्नर समाज की स्थिति अगर देखे तो वह अपने आपको बदलने की प्रयास जरुर कर रहा है | 'तीसरी थाली' उपन्यास का किन्नर विजय इस मत से प्रभावित है | किन्नर समाज के तरफ देखने का नजरियाँ अगर बदल गया तो यह समाज भी अपने आपको बदलने की कोशिश जरुर करेंगा | किसन नाम का व्यक्ति जो बाबी किन्नर को हमदर्दी दिखाकर अपने घर में जगह देता है तो उसने परिवार के किसन से नफरत करने लगतेहै तबकी उसकी पत्नि भी उसे छोडकर चली जाती है | गाँव वाले किसन के खिलाफ पंचायत बिठाते है तब किसन उन्हें करारा जबाब देते हुए कहता है-

("हिजड़े कोई हिंसक जानवर नहीं है, जो गाँव में रहेंगे तो लोगों को मार खा जाएँगे | उन्हें भगवान ने ही बनाया है | तुम लोगों की तरह वे हुक्का गुडगुडाते और ताश पीटते नहीं बैठे रहते |---- हिजड़े मेहनत करते है | नाच-गाकर कमाते है| दूसरों के लिए दुआएँ माँगते है |"5)

किसन की इस बात से पंचायत नाराज हो जाती है और रात को किसन की झोपडी को आग लगा दी जाती है जिसमें किसन और किन्नर बाबी जलकर मर जाते है |

अर्थात अपने आपको सभ्य समझने वाला समाज जिसकी सोच बिल्कूल घटिया है वह किसी दूसरे समाज को बदलने का मौका ही नहीं देना चाहता | और शायद इसलिए जिस घर में किन्नर का जन्म होता है वह समाज इन बच्चों को घर से बेदखल कर देते है | 'तीसरी ताली' उपन्यास का पात्र सोनिया इस बेदर्दी के कारण घर से निकाल दी जाती है | सब किन्नर उसे मौसी कहते है | उसकी व्यथा इस प्रकार से दिखायी देती है –

("उनकी माँ आई.ए.एस.अधिकारी और पिता भी बड़े सरकारी पद पर है | उनकी दो बहने ब्रिटेन में और एक अमेरिका में रहती है| परिवार से बेदखल किये जाने का उन्हें दुख है |"6)

किन्नर समाज की एक ओर समस्या यह होती है कि डेरे का सर्वेसर्वा बनने के लिए उनमें एक होड़ होती है जिस कारण वह एक दूसरे से मार-पीट करना, हत्या जैसा जुर्म भी वह गद्दी के लिए करते है | किन्नर समाज के अपने नियम होते है जिस आधार पर ही वह जिवनयापन करते दिखायी देता है |

निष्कर्ष :

साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण हर उस घटक पर साहित्य ने विचार किया है जो उपेक्षित एवं शोषित है | वर्तमान युग तो साहित्य के लिए विमर्श का युग माना गया है | नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि के साथ-साथ वृद्ध विमर्श, मुस्लिम विमर्श पर भी कई परिसंवाद, संगोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है | परंतू इन सब घटकों से अलग किन्नर समुदाय जो उपेक्षित एवं शोषित भी है उस पर थोड़ी-बहुत मात्रा में वर्तमान में लिखना आरंभ हुआ है |

'तीसरी ताली' प्रदीप सौरभ का किन्नर विमर्श पर आधारित उपन्यास है लेकिन यहाँ उन्होंने ने किन्नर के साथ-साथ समाज की दूसरी समस्याओं का भी चित्रण किया है | 'तीसरी ताली' उपन्यास में किन्नर पात्रों के साथ-साथ अन्य पात्रों के संदर्भ में भी लिखा गया है | परंतु प्रदीप सौरभ ने किन्नर समाज के संदर्भ में जो भी लिखा है वह यथार्थ के धरातल पर खरा उतरा है | इस समाज की वास्तविक छबी उन्होंने समाज के सामने रखी है | किन्नर जीवन से जुड़ी हर उस घटना का चित्रण प्रदीप सौरभजी ने किया है | किन्नर शोषण समलैंगिकता, देह व्यापार के साथ-साथ राजनीति में उनका समावेश आदि का चित्रण भी इस उपन्यास में मिलता है |

किन्नर समाज की जिवनयापन करने का तरीका उनकी अपनी-अपनी सोच के अनुसार होता है | कई भीख मांगकर जिवनयापन करते है, कई नाचगाकर, देहव्यापार करके या फिर कई समाज कसे छुपकर किसी बड़े पद पर भी कार्यरत होते है | उपन्यास की पात्र मणिकलिता इस शर्मनाक जिंदगी से आगे की सोचती है | गुरु अनंत कुमार के स्कूल में कत्थक सीखकर गंधर्व महाविद्यालय में डायरेक्टर पद कर काम करने लगती है | विजय भी फोटोग्राफर बन जाता है | विनीता बडी ब्युटिशियन बन जाती है | अर्थात यह समाज बदलने की कोशिश कर रहा है परंतू इससे अलग समाज जो अपने आपको सभ्य कहता है वह इन्हें बदलने का मौका नहीं देना चाहता और उसकी उपेक्षा करता है | समाज के कई लोग अगर इनसे हमदर्दी दिखाऐ तो समाज उन्हें भी जीने नहीं देता और इसलिए उपन्यास का पात्र किसन जो एक हिजडे का सहारा देता है तो उसे गाँव के लोग एवं सरपंच जिंदा जला देते है |

अतः इस समाज को अगर समाज के प्रवाह में लाना हो तो पहले समाज का दृष्टिकोण इनके संदर्भ में जो है उसे बदलना होगा | किन्नर समाज ने भी अपने-आपको भिक्षा का सहारा लेकर अन्य समाज के साथ समाज में अपनी गर्दन उठाकर जीना चाहिए | कई किन्नर अपने समाज को खुद ही बदनाम करते है जिस कारण भी अन्य समाज इनसे घृणा करता है | परंतू इस सोच को बदलने का प्रयास अगर किया जाए तो यह समाज भी अन्य समाज में आसानी से घुल-मिल जायेंगा |

संदर्भ सूची :

1. २१ वी सदी के साहित्यिक विमर्श- संपादक लेफ्टिनेंट डॉ. विष्णु देवसिंह मल्लिक, विकास प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१३ (पृ.५(भूमिका से)
2. हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श- डॉ. मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१८ (पृ.६८)
3. वहीं (पृ.७४)
4. तीसरी ताली- प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०११, (पृ.१९५)
5. वहीं (पृ.१३५)
6. वहीं (पृ.९४)
7. वहीं (पृ.१३७)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

21 वीं सदी की लेखिका शरद सिंह कृत 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास में नारी विद्रोह

प्रा. डॉ. नटवर संपत तडवी

हिंदी विभागाध्यक्ष

संत जगनाडे महाराज शिक्षण मंडल, श्री बापू साहेब व्ही. सी. चौधरी कला व वाणिज्य वरिष्ठ महाविद्यालय
खापर ता. अक्कलकुवा जि. नंदुरबार

सारांश (Abstract):

21वीं सदी की लेखिका शरद सिंह नारीवादी बदलते जीवन मूल्यों को 'कस्बाई सिमोन' इस उपन्यास के जरिए परिलक्षित करती है। कृष्णा सोबती और मृदुला गर्ग जैसी बोल्डनेस महिला लेखन परंपरा का प्रतिनिधित्व लेखिका करती है। उत्तर आधुनिक युगीन सामाजिक जीवन के बदलते स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास की नायिका सुगंधा विवाह संस्था का, पुरुषी व्यवस्था का और कई संकीर्ण प्रथा एवं परंपराओं का विरोध विद्रोही तेवर में करती है। नायिका सुगंधा शोषित, पीड़ित एवं परंपरागत भारतीय नारी जीवन के बजाए 'लिव इन रिलेशन' के संबंधों को स्वीकारती है। वह स्वच्छंदतावादी, मुक्त एवं बिना बाधित जीवन के साथ ही यौन स्वतंत्रता जैसे मूल्य पर विश्वास करने वाली नारी है। और यही उसके विद्रोही मूल्य आज के नारी जीवन को अभिव्यक्त करते हैं। इसी कारण शरद सिंह का स्त्रीवादी लेखन के बदलते मूल्यों को विद्रोही रूप में परिलक्षित करने वाला उनका उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' है।

बीज शब्द (keyword): नारी विद्रोह, यौन स्वतंत्रता, स्वच्छंदता, कस्बाई सिमोन, लिव इन रिलेशन, विवाह संस्था, पुरूषी व्यवस्था, संकीर्णता, सुगंधा, घरेलू हिंसा।

1)प्रस्तावना (Introduction):

आधुनिक युगीन सामाजिक परिवर्तन की लहर और साथ सामाजिक सुधारकों के सामाजिक आंदोलन के कारण नारी को अपने 'स्व' का अहसास हुआ। शिक्षा, संवैधानिक अधिकार और आर्थिक स्वावलंबन से नारी 'स्व' अस्तित्व के प्रति सचेत होने लगी। नारी जीवन में आए हुए इस परिवर्तन का परिणाम साहित्य, संस्कृति और समाज जीवन पर भी पड़ा और नारी में नई प्रेरणा का विकास हुआ। सृष्टि के निर्माण और संचालन में पुरुष और नारी दो मूलभूत तत्व है। लेकिन पुरुष को मनुष्य और मानव रुप में देखा जाता है, तो नारी की पहचान भी नारी ना होकर मानवी रुप में होनी चाहिए। पुरुष की जननी होकर भी समाज में उसका स्थान दूसरे दर्जे का रहा और यही दोहरेपन की स्थिति सदियों से भारतीय समाज में पनपती रही। सामाजिक स्थान, दर्जा और अस्तित्व के स्तर पर उसका अपमान किया गया। लिंगभेद नीति के साथ ही संकीर्ण सामाजिक परम्पराओं के आधार पर सिर्फ नारी को ही प्रताड़ित किया गया। स्वाभाविक जीवन से उपेक्षित रखने के साथ ही उसके मानवीय अधिकारों से भी उसे वंचित रखा गया। सदियों से नारी को विषमतावादी संस्कृति की बेड़ियों में कैद करके उसे अबला जीवन जीने पर मजबूर किया गया। डॉ. रामकुमार गडकरी के अनुसार, "सेक्स, समाज और

संस्कृति इन तीनों की बंदूक की नोंक पर पुरुष ने स्त्री को अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए दबा रखा था। इसी दबाव के नीचे रहना वह अपना कर्तव्य समझती थी। इसलिए नारी के मन में उत्पन्न असंतोष और विद्रोह को आज खुली चुनौती दी जा रही है।"[1] डॉ. शरद सिंह ने इसी दृष्टि से नारी विद्रोह को **'कस्बाई सिमोन'** इस उपन्यास में अंकित किया है।

2) विद्रोह किसे कहते हैं?

'विद्रोह' मूलतः संस्कृत शब्द है। उसका अर्थ है - "किसी के प्रति किए जाने वाला द्रोह अर्थात शत्रुता पूर्ण कार्य विशेषता राज्य या शासक के प्रति अविश्वास उत्पन्न होने पर उसकी आज्ञा विधान आदि के विरुध्द किए जाने वाला उपद्रव।"[2] डॉ. आ. ह. साळुंखे अपने 'विद्रोही तुकाराम' ग्रंथ में विद्रोही शब्द का अर्थ लिखते हैं- "विद्रोही इस शब्द का अर्थ 'द्रोह' इस अर्थ से नहीं है। यह तो क्रांति की परिभाषा करता है। उसी से मिलता-जुलता यह शब्द विद्रोह है।"[3] अर्थात

विद्रोह उसे कहते हैं, जब कोई व्यक्ति या समूह किसी स्थापित सत्ता, शासन, नियम या व्यवस्था के खिलाफ खुलकर विरोध करता है और उसे बदलने या गिराने का प्रयास करता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो, जब लोग अन्याय, दमन या गलत नियमों के कारण सरकार या अधिकार रखने वालों के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं, तो उसे विद्रोह कहा जाता है।

3) शोध- पत्र का उद्देश:

1. नारी विद्रोह के सामाजिक तथा सैद्धांतिक स्वरूप को जानना।
2. उपन्यासकार शरद सिंह के विचारधारा को समझना।
3. 21वीं सदी के परिवेश में 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास को समझना।
4. 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास में चित्रित नारी विद्रोह के सरोकारों को समझना।

4) शोध- पत्र की परिकल्पनाएं:

1. स्त्रीवादी लेखिका शरद सिंह बाल्डनेस शैली में लिखने वाली उपन्यासकार है।
2. शरद सिंह कृत 'कस्बाई सिमोन'यह उपन्यास नारी विद्रोह के विविध विमर्श पर प्रकाश डालता है।
3. प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु तथा परिवेश नारी विद्रोह को ही परिलक्षित करता है।
4. उपन्यास की नायिका पुरुषी व्यवस्था तथा परंपरागत सामाजिक संकीर्ण बंधनों का विरोध करती है।
5. उत्तर आधुनिक जीवन मूल्य के परिप्रेक्ष्य में नायिका यौन स्वतंत्रता और स्वच्छंदता वादी मूल्यों की पैरवी करती है।
6. नारी विद्रोह को समता, न्याय, स्वातंत्र्य और सामाजिक सरोवर की दृष्टि से रोका जा सकता है।

5) 'कस्बाई सिमोन' और नारी विद्रोहः

'कस्बाई सिमोन' यह उपन्यास नारी विद्रोह को केंद्र में रखकर ही डॉ. शरद सिंह ने इसे लिखा है। क्योंकि उपन्यास की कथावस्तु केंद्रीय रुप में 'लिव इन रिलेशन' जीवन चित्रण विवाह संस्था को ही नकारने वाला है। यह नारी का सबसे बड़ा विद्रोह है। नायिका सुगंधा को विवाह बंधन पुरुषी संस्कृति द्वारा डाली गयी बेड़ी लगती है। जिस कारण नारी अपनी स्वतंत्रता खो देकर पति रुपी पुरुष की दासी बनकर ही रह जाती है। सुगंधा ने अपनी माँ का प्रताड़ित वैवाहिक जीवन अपनी आखों से देखा था। इसलिए विवाह एक भले ही सामाजिक संस्कार हो, लेकिन उसमें विषमताओं और नारी अन्याय-अत्याचार की पीड़ा ही होती है ऐसा उसका मानना होने के कारण वह विवाह का विरोध करते हुए कहती है कि "उफ! ये विवाह की परिपाटी। गढ़ी तो गई स्त्री के अधिकारों के लिए जिससे उसे और उसके बच्चों को सामाजिक मान्यता, आर्थिक संबल आदि आदि मिल सके किंतु समाज ने ही इसे तमाशा बना कर रख दिया। मैं इस तमाशे को नहीं जीना चाहती थी। मैंने सोच रखा था कि मैं कभी विवाह नहीं करूँगी। फिर भी विवाह न करने का निर्णय मेरा अपना था। इसमें प्रत्यक्षतः किसी का दबाव नहीं था। हाँ, अप्रत्यक्ष में वे सारी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं जिन्होंने मुझे रिश्तों को घुटन भरा बंधन मानने को विवश कर दिया।"[4] सुगंधा स्वतंत्रता और स्व में जीने वाली आज की उत्तर आधुनिक युगीन नारी है। इसी परिप्रेक्ष्य में विवाह जैसी सामाजिक संस्था का और संस्कार का विरोध करती है। परिणाम वह अपना विद्रोही तेवर रितिक नामक लड़के के साथ 'लिव इन रिलेशनशिप' (सहजीवन) में रहने से दिखिती है। वैसे देखा जाए तो,विवाह का मूल उद्देश स्त्री-पुरुषों की लैंगिक इच्छाओं की तृप्ति ही तो होती है। उसी दृष्टि से सुगंधा रितिक के साथ 'लिव इन रिलेशनशिप' में अपने लैंगिक भावनाओं को तृप्त करने की कल्पना के बारे में खुल कर कहती है कि, "बिना विवाह किए किसी पुरुष के साथ पति-पत्नी के रुप में रहने की कल्पना ने मुझे रोमांचित कर दिया था। इसमें मुझे अपनी स्वतंत्रता दिखाई दी।"[5] अर्थात वह अपना जीवन बंधन मुक्त और खुले विचारों से छिना पसंद करने वाली आज की नारी है। सामाजिक मान्यता के विरोध में जाकर जब सुगंधा रितिक के साथ बगैर शादी करके पति-पत्नी जैसे शारीरिक संबंध बनाने लगती है और एक साथ सहजीवन के रुप में रहने लगती है, तो उसके मोहल्ले वाले लोंग उसकी शिकायत उसके कार्यालय में कर देते हैं, लेकिन कार्यालय द्वारा सुगंधा को रितिक के साथ विवाह करने का सुझाव देते हैं, ताकि समाज का मुँह बंद रहें। ऐसे सामाजिक सुझाव का सुगंधा विरोध करती है - "वाह! यह भी खूब रही, लोग चाहते हैं तो आप शादी कर लीजिए, लोग चाहते हैं तो आप तलाक ले लीजिए, लोग चाहते हैं तो आप ज़िंदा रहिए, लोग चाहते हैं तो आप मर जाइए, मेरा अपनी जिंदगी पर कोई अधिकार है या नहीं?.... इस समाज में किसी भी औरत को युवा होते ही किसी न किसी पुरुष के नाम का पट्टा अपने गले में डाल लेना चाहिए।"[6] इतने तीखे और विद्रोही शब्दों में वह समाज की संकीर्ण सोच का विरोध करती है। लेकिन वह समाज के सुझाव पर कभी नहीं चलती है। पत्नी बनना याने अपने अधिकारों को खो देना और पति की सेवा करके उसके हिंसा का शिकार भी होना ऐसा सुगंधा मानती है - "पति बनते ही पुरुष अधिकारों से इस तरह भर जाता है कि उसके विचारों का आकार-प्रकार ही बदल जाता है। जिस औरत पर वह जान छिडकता था, जिस औरत के पाँव में काँटा चुभने पर टीस उसके दिल में उठती थी, उसी औरत को मारने-पीटने का

अधिकार उसे मिल जाता है और वह इस अधिकार का प्रयोग करने से भी नहीं चूकता है।"[7] इतनी अशोभनीय पुरुषी सोच होती है। जिसका परिणाम नारी जीवन पर ही पडता है। जिसके चलते घरेलु हिंसा की शिकार कई महिलाएँ होती है; कारण है पुरुषी अहंकार और संकीर्ण पुरुष प्रधान संस्कृति। जिसके कारण पुरुष अपने अधिकारों का गलत फायदा लेकर बहू, बेटियों पर अन्याय करता है। सुगंधा ऐसी सोच का और ऐसी सामाजिक नीति का विरोध करते हुए पुरुषों की घरेलु भूमिका का पर्दा फाश करते हुए कहती है- "अरे हाँ! जब किसी बहू को जलाया जाता है तो उस समय उसके ससुर और पति जैसे पुरुषों की क्या भूमिका रहती है? उस समय उनका पौरुष कहाँ चला जाता है कि वे अपनी बीवी या माँ को किसी को जलाने या मारने से रोक नहीं पाते हैं। क्या ऐसे पुरुषों का पौरुष सिर्फ उनकी जंघाओं के बीच ही सीमित रहता है।"[8] अर्थात पुरुष के खोखले पौरुषत्व पर सुगंधा तीखा वार करके अपना विद्रोह पुरुषी परिवेश और उनकी अन्यायी नीति के ख़िलाफ़ करती है। उसका मानना है कि अकेली औरत को रखने वाले कई पुरुष मिल जायेंगे, लेकिन उसे घर देने वाला कोई नहीं मिलेगा। दूसरी औरत के चक्कर में पुरुष अपनी पत्नी को पीड़ित बनाने का ढोंग करके कई औरतों को अपनी वासना का शिकार बनाता है। क्योंकि पुरुष अपनी वासना पर संयम नहीं रख सकता है। और ऐसे चरित्रहीन पुरुष अपनी पत्नी से चरित्र की कामना करतेे हैं। ऐसे दोहरे जीवन का लेखिका ने सुगंधा के द्वारा विरोध किया है।

भारतीय समाज में यौन शिक्षा जैसे विषयों पर विमर्श करना पाप माना जाता है। इसलिए स्वाभाविक काम जीवन को रोकने हेतु धार्मिक एवं अध्यात्मिक दर्शनों का सहारा भारतीय समाज में लिया जाता है। सुगंधा सिमोन बोउआर के कदमों पर चलने वाली एक उत्तर आधुनिक युग की युवती है। इसलिए यौन शिक्षा और यौन-स्वतंत्रता जैसे अहम मुद्दों पर वह भारतीय समाज दर्शनों के साथ ही भारतीय सोच का विरोध करते हुए कहती है - "हम राधा-कृष्ण की उपासना करते हैं और प्रेम को ही अपराध मानते हैं।" [9]अर्थात हम भारतीय लोग शिवलिंग की पूजा करते हैं और यौन शिक्षा पर चुप्पी साधने में ही धन्यता मानते हैं। इसलिए सुगंधा स्त्री-स्वातंत्र्य की बाते करते-करते स्त्री की यौन स्वातंत्र्य के लिए भी आवाज उठाती नजर आती है।

6)निष्कर्ष(conclusion):

निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो, शरद सिंह 'कस्बाई सिमोन' इस 21 वीं सदी के इस हिंदी उपन्यास के माध्यम से नारी विमर्श का विद्रोही स्वरूप चित्रित किया है। जो उत्तर आधुनिक जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नारी विद्रोह को सिमोन बोउआर के विचारों से प्रभावित होकर परिलक्षित किया है। कथावस्तु की विद्रोही नायिका सुगंधा आज के नारी जीवन का प्रतिनिधित्व चरित्र है, जो यौन स्वतंत्रता, स्वच्छंदता, पुरुषी विषमतावादी सोच का विरोध करती है। इतना ही नहीं सामाजिक संकीर्ण रुढ़ी, प्रथा, परंपरा और रीति-रिवाजो का विरोध भी करती है। सुगंधा- रितिक के 'लिव इन रिलेशन' (स्त्री-पुरुषों का सहजीवन) चित्रित करके लेखिका ने विवाह संस्था पर ही सवाल खड़ा किया है। सदियों से भारतीय संस्कृति में वैवाहिक संबंधों के द्वारा ही स्त्री पुरुषों के संबंधों को सामाजिक मान्यता देने की संस्कारशील परंपरा रही है। लेखिका ने इस परंपरा को बंधन मानते हुए आज की नारियां स्वतंत्र रूप से सहजीवन जीने के लिए तैयार है। इसका वास्तव चित्रण प्रस्तुत उपन्यास

में लेखक ने किया है। पुरूषी व्यवस्था, सामाजिक संकीर्णता के परिप्रेक्ष्य में आज की नारी बंधनों के बजाय मुक्त होकर जीना चाहती है। इसलिए उसका विद्रोह उसके आजादी के लिए और आजाद ख्यालों में जीने के लिए है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह विद्रोह नैतिकता की दृष्टि से अटपटा लगने लगता है। इससे सामाजिक संस्कार एवं अधिष्ठान की दृष्टि से सामाजिक सरोकार के लिए आज खतरा मंडरा रहा है। इस खतरे की और भी लेखिका ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। स्त्री पुरुषों को मिलकर ही या उनमें उचित विमर्श के कारण ही यह खतरा टला जा सकता है। अन्यथा सामाजिक उन्नति का चक्र थम जाएगा।

अतः सुगंधा का चरित्र पूरा विद्रोही चरित्र है, जो डॉ. शरद सिंह ने उसके द्वारा विवाह संस्था को विरोध करके ही उस पर कई सवाल खड़े किए हैं। और पाठकों को सोचने पर मजबूर किया कि क्या यासदियों से चली आ रही विवाह संस्था आज समाज का स्वास्थ ठीक नहीं रख पाएगी?

7)संदर्भ सूची (reference):

1. संपा. डॉ. भीमराव रामकिशन घोडगे, महिला सशक्तिकरण एक चुनौती, मनोगत से, आर.के. पब्लिकेशन मुंबई,
2. प्रथम सं. 2018
3. विधाते विकास कुंडलिक, मोहनदास नैमिशराय के उपन्यासों में विद्रोह,पृ. सं. २८
4. डॉ. आ. ह. साळुंके, विद्रोही तुकाराम,
5. पृ. सं. ०१
6. . डॉ. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, सामाजिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2014,
7. पृ. सं. १३
8. वही, पृ. सं. ३१
9. वही,पृ. सं. ६७,६८
10. वही,पृ. सं. ६४
11. वही,पृ. सं. १०४
12. वही,पृ. सं. ११९

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'तुम्हारी क्षय' कृति में चित्रित संवैधानिक मूल्य और सामाजिक–आर्थिक विसंगतियाँ'

[1]प्रो. डॉ. हर्षवर्धन दामोदर जाधव, [2]प्रा.सुनील रमेश सपकाळे

[1]प्रभारी प्राचार्य तथा विभाग प्रमुख, [2]सहाय्यक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
प्रताप स्वशासी महाविद्यालय, अमलनेर, जि. जलगाव, महाराष्ट्र

भूमिका

राहुल सांस्कृत्यायनजी देश और दुनिया के एक सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक थे। राहुल सांकृत्यायन को दुनिया की छब्बीस भाषाओ की जानकारी थी तथा ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखाओ और साहित्य में उनको महारत हासिल थी। उनका पुरा जीवन संघर्षपूर्ण तथा लोगो के आर्थिक सामाजिक शोषण के खिलाफ आंदोलन मे गया। राहुलजी देश की शोषित पीडित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद करने के लिए विविध विषयों पर अधिकार पूर्वक लेखन करते थे। राहुल सांस्कृत्यायनजी द्वारा भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन-दिग्दर्शन, तुम्हारी क्षय, वैज्ञानिक भौतिकवाद, सिंह सेनापती आदी रचनाओं का लेखन किया गया। राहुल सांकृत्यायन की वैचारिक एवं प्रगतिशील कृति 'तुम्हारी क्षय' भारतीय समाज की आंतरिक विडंबनाओं, शोषणकारी संरचनाओं और मूल्यगत पतन का सशक्त दस्तावेज़ है। यह रचना समाज, धर्म, जाति, अर्थव्यवस्था, नैतिकता और सत्ता-संरचनाओं की गहन आलोचना करते हुए उस आर्थिक- सामाजिक 'क्षय' को रेखांकित करती है, जो मनुष्य को उसके मौलिक अधिकारों और मानवीय गरिमा से वंचित करता है। प्रस्तुत शोधालेख का उद्देश्य 'तुम्हारी क्षय' में निहित विचारों का विश्लेषण भारतीय संविधान में निहित मूल्यों समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, बंधुत्व और गरिमाके संदर्भ में करना है। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कृति में चित्रित सामाजिक–आर्थिक विसंगतियाँ केवल साहित्यिक यथार्थ नहीं, बल्कि संवैधानिक आदर्शों के समक्ष खड़ी व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं।

जाति-व्यवस्था, वर्ग-विभाजन, धार्मिक पाखंड, लैंगिक भेदभाव और आर्थिक शोषण ने समाज को असंतुलित बनाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल्यों के माध्यम से एक लोकतांत्रिक और समतामूलक समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा। किंतु सामाजिक यथार्थ में इन मूल्यों का पूर्ण क्रियान्वयन आज भी अधूरा है। राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय' इसी सामाजिक यथार्थ का निर्भीक और तर्कसंगत विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यह कृति समाज के उन पक्षों को उजागर करती है, जहाँ संवैधानिक मूल्य व्यवहार में विफल होते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत शोधालेख में यह विवेचना की गई है कि 'तुम्हारी क्षय' किस प्रकार संवैधानिक चेतना के साथ संवाद स्थापित करती है। इसलिये प्रस्तुत कृती पर संशोधक अपने शोधालेख के माध्यम से राहुल सांस्कृत्यायनजी की 'तुम्हारी क्षय' कृति में निहित संवैधानिक मूल्योंपर,सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का आलोचनात्मक अध्ययन तथा संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक यथार्थ के बीच अंतर्विरोधों का विश्लेषण आदीपर प्रकाश डाला जायेगा.

शोधालेख के उद्देश्य

प्रस्तुत शोधालेख के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1) 'तुम्हारी क्षय' कृति में निहित संवैधानिक मूल्यों की पहचान करना

2) कृति में चित्रित सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का आलोचनात्मक अध्ययन करना

3) संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक यथार्थ के बीच अंतर्विरोधों का विश्लेषण करना

4) 'तुम्हारी क्षय' की समकालीन प्रासंगिकता को स्थापित करना

'तुम्हारी क्षय' : संरचना और विषयवस्तु

तुम्हारी क्षय' विभिन्न खंडों में विभक्त एक विचारात्मक रचना है, जिसमें समाज, धर्म, ईश्वर, नैतिकता, जाति और आर्थिक व्यवस्था की आलोचना की गई है। कृति का केंद्रीय भाव 'क्षय' है अर्थात् सामाजिक, नैतिक और मानवीय मूल्यों का पतन। यह क्षय किसी एक संस्था तक सीमित नहीं, बल्कि पूरे सामाजिक ढांचे में व्याप्त है।

1.'तुम्हारी क्षय' कृति में निहित संवैधानिक मूल्य

राहुल सांकृत्यायन की वैचारिक कृति 'तुम्हारी क्षय' केवल सामाजिक आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतीय संविधान में निहित मूल मूल्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति भी है। इस कृति में लेखक ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उन संवैधानिक आदर्शों को रेखांकित किया है, जिन पर एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना की गई है। सबसे प्रमुख संवैधानिक मूल्य समानता है। 'तुम्हारी क्षय' में वर्ग, जाति और आर्थिक आधार पर उत्पन्न असमानताओं की तीखी आलोचना की गई है। लेखक यह स्पष्ट करता है कि समाज में ऊँच–नीच, अमीर–गरीब और शोषक–शोषित का भेद मानवता के विरुद्ध है। यह दृष्टि संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता के अधिकार से सीधा संवाद स्थापित करती है। दूसरा महत्वपूर्ण संवैधानिक मूल्य सामाजिक और आर्थिक न्याय है। कृति में किसान, मजदूर और निम्नवर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए यह दर्शाया गया है कि आर्थिक शोषण सामाजिक अन्याय की जड़ है। यह विचार संविधान की समाजवादी भावना तथा नीति-निर्देशक तत्वों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

स्वतंत्रता का मूल्य भी 'तुम्हारी क्षय' में स्पष्ट रूप से उभरता है। लेखक धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास और परंपरागत रूढ़ियों की आलोचना करते हुए व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता पर बल देता है। यह दृष्टिकोण संविधान द्वारा प्रदत्त विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त, कृति में बंधुत्व और मानवीय गरिमा का भाव भी अंतर्निहित है। जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर विभाजित समाज को लेखक 'क्षयग्रस्त' मानता है और एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ मनुष्य को मनुष्य के रूप में सम्मान मिले। यह भावना संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित बंधुत्व और गरिमा के सिद्धांत को सुदृढ़ करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'तुम्हारी क्षय' में निहित संवैधानिक मूल्य समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय,

बंधुत्व और मानवीय गरिमा कृति को केवल साहित्यिक रचना नहीं, बल्कि संवैधानिक चेतना से युक्त एक वैचारिक दस्तावेज़ बनाते है

- **समानता का संवैधानिक मूल्य और वर्गीय असमानता**: भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 समानता के अधिकार की घोषणा करता है। *'तुम्हारी क्षय'* में लेखक यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक यथार्थ में समानता केवल एक आदर्श बनकर रह गई है।किसान और मजदूर, जो वास्तविक संपत्ति के उत्पादक हैं, सबसे अधिक शोषित हैं। दूसरी ओर ज़मींदार, पूँजीपति और अभिजात वर्ग बिना श्रम के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीते हैं। यह वर्गीय असमानता संवैधानिक समानता के प्रतिकूल है। लेखक का मत है कि जब तक आर्थिक ढाँचा असमान रहेगा, तब तक समानता केवल संवैधानिक शब्दावली में सिमटी रहेगी।

- **सामाजिक न्याय और आर्थिक शोषण**: संविधान सामाजिक न्याय को लोकतंत्र की आधारशिला मानता है। *'तुम्हारी क्षय'* में आर्थिक शोषण के विविध रूप चित्रित हैं भूमि पर असमान अधिकार, न्यून मजदूरी, बेरोज़गारी, भुखमरी और असुरक्षित जीवन। लेखक यह स्थापित करता है कि आर्थिक विषमता सामाजिक अन्याय की जड़ है। जब श्रम करने वाला वर्ग ही दरिद्र रहेगा, तब सामाजिक न्याय एक खोखला नारा बन जाएगा। यह विचार संविधान की समाजवादी भावना से पूर्णतः मेल खाता है।

- **स्वतंत्रता और वैचारिक दमन**: भारतीय संविधान व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। *'तुम्हारी क्षय'* में यह स्वतंत्रता धर्म और परंपरा के नाम पर बाधित दिखाई देती है। धर्म का उपयोग गरीबी को भाग्य बताने, शोषण को ईश्वरीय व्यवस्था सिद्ध करने और विद्रोह को पाप घोषित करने के लिए किया जाता है। यह स्थिति व्यक्ति की बौद्धिक स्वतंत्रता का दमन करती है और संवैधानिक स्वतंत्रता के मूल उद्देश्य को नष्ट करती है।

- **धर्म, पाखंड और संवैधानिक मूल्य**: संविधान धार्मिक स्वतंत्रता देता है, किंतु धर्म का राजनीतिक और सामाजिक दुरुपयोग संवैधानिक मूल्यों के विरुद्ध जाता है। *'तुम्हारी क्षय'* धर्म को मानव-निर्मित संस्था के रूप में देखती है, जो सत्ता और शोषण का औज़ार बन चुकी है। लेखक धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा, कट्टरता और असहिष्णुता की तीखी आलोचना करता है। यह आलोचना संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत से जुड़ती है।

- **जाति व्यवस्था और समानता का प्रश्न**: जाति व्यवस्था भारतीय समाज की सबसे बड़ी विसंगति है। *'तुम्हारी क्षय'* में जाति को मानवीय गरिमा के विरुद्ध सबसे बड़ी बाधा माना गया है। जन्म के आधार पर ऊँच-नीच मनुष्य की क्षमताओं और संभावनाओं का क्षय करती है। लेखक का मत है कि जाति व्यवस्था न केवल सामाजिक अन्याय है, बल्कि राष्ट्रीय प्रगति में भी बाधक है। यह विचार संविधान के अनुच्छेद 15 और 17 की भावना के अनुरूप है।

- **स्त्री प्रश्न और लैंगिक असमानता**: *'तुम्हारी क्षय'* में स्त्री की स्थिति सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का महत्वपूर्ण आयाम है। बाल-विवाह, वैधव्य, यौन नैतिकता के दोहरे मानदंड और स्त्री की स्वतंत्रता पर

नियंत्रण—ये सभी स्त्री के संवैधानिक अधिकारों का हनन करते हैं। संविधान लैंगिक समानता की घोषणा करता है, किंतु सामाजिक संरचना स्त्री को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाए रखती है। लेखक इस विरोधाभास को स्पष्ट करता है।

- **शिक्षा, प्रतिभा और सामाजिक अवरोध: संविधान शिक्षा को सामाजिक उन्नति का साधन मानता है। *'तुम्हारी क्षय'* में यह दिखाया गया है कि गरीबी और जाति के कारण असंख्य प्रतिभाएँ नष्ट हो जाती हैं। प्रतिभाशाली किंतु निर्धन बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, जबकि अयोग्य किंतु संपन्न वर्ग आगे बढ़ता है। यह स्थिति समान अवसर के संवैधानिक सिद्धांत का उल्लंघन है।**

- **बंधुत्व की अवधारणा और सामाजिक विघटन**: संविधान की प्रस्तावना में बंधुत्व को विशेष महत्व दिया गया है। *'तुम्हारी क्षय'* में बंधुत्व का अभाव सामाजिक विघटन के रूप में सामने आता है।धार्मिक, जातीय और वर्गीय विभाजन मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना देते हैं। लेखक का मानना है कि बंधुत्व के बिना लोकतंत्र केवल एक ढांचा बनकर रह जाता है।

- **'तुम्हारी क्षय' और संविधान की समाजवादी चेतना**: *'तुम्हारी क्षय'* में निहित समाज-आलोचना संविधान की समाजवादी और लोकतांत्रिक चेतना से गहराई से जुड़ी है। कृति एक ऐसे समाज की परिकल्पना करती है, जहाँ श्रम का सम्मान हो, संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण हो और प्रत्येक व्यक्ति को गरिमामय जीवन प्राप्त हो।

2. कृति में चित्रित सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय' भारतीय समाज की उन सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का सशक्त और निर्भीक दस्तावेज़ है, जो समाज की प्रगति में बाधक बनी हुई हैं। लेखक इन विसंगतियों को केवल सतही रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उनके मूल कारणों और प्रभावों का तर्कपूर्ण विश्लेषण करता है। इस दृष्टि से यह कृति सामाजिक आलोचना का महत्वपूर्ण उदाहरण है। सबसे प्रमुख सामाजिक–आर्थिक विसंगति वर्गीय असमानता और आर्थिक शोषण है। कृति में यह स्पष्ट किया गया है कि समाज का श्रमजीवी वर्ग किसान, मजदूर और निम्नवर्ग अथक परिश्रम के बावजूद निर्धनता और अभाव में जीवन व्यतीत करता है, जबकि संपन्न वर्ग बिना श्रम के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीता है। यह स्थिति आर्थिक असंतुलन और शोषणकारी व्यवस्था को उजागर करती है, जो समाज के नैतिक और मानवीय मूल्यों का क्षय करती है।

दूसरी महत्वपूर्ण विसंगति जाति-व्यवस्था है। 'तुम्हारी क्षय' में जाति को जन्म-आधारित असमानता की वह व्यवस्था माना गया है, जो व्यक्ति की योग्यता, श्रम और प्रतिभा को नकार देती है। जाति के कारण सामाजिक बहिष्कार, अपमान और अवसरों का अभाव उत्पन्न होता है, जिससे समाज की रचनात्मक शक्ति का विनाश होता है। लेखक के अनुसार यह व्यवस्था सामाजिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास भी कृति में एक गंभीर सामाजिक विसंगति के रूप में उभरते हैं। धर्म का उपयोग शोषण को

वैध ठहराने, गरीबी को भाग्य बताने और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष को दबाने के लिए किया जाता है। इससे व्यक्ति की चेतना कुंठित होती है और समाज में वैचारिक जड़ता उत्पन्न होती है।

कृति में स्त्री की स्थिति भी सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों का महत्वपूर्ण पक्ष है। स्त्री को पुरुष-प्रधान समाज में आर्थिक रूप से परनिर्भर और सामाजिक रूप से अधीन बनाए रखने वाली संरचनाओं की लेखक तीखी आलोचना करता है। स्त्री के साथ होने वाला भेदभाव न केवल सामाजिक अन्याय है, बल्कि समाज के नैतिक पतन का भी संकेत है।

इसके अतिरिक्त, शिक्षा और अवसरों की असमानता भी 'तुम्हारी क्षय' में स्पष्ट रूप से चित्रित है। निर्धन और वंचित वर्ग शिक्षा से वंचित रह जाता है, जबकि संपन्न वर्ग को सभी अवसर सहज उपलब्ध होते हैं। इससे प्रतिभाओं का क्षय होता है और सामाजिक असंतुलन और गहराता है।

इस प्रकार 'तुम्हारी क्षय' में चित्रित सामाजिक–आर्थिक विसंगतियाँ केवल समस्याओं का विवरण नहीं, बल्कि एक चेतावनी हैं। राहुल सांकृत्यायन इन विसंगतियों के माध्यम से समाज को आत्मालोचन के लिए प्रेरित करते हैं और एक न्यायपूर्ण, समतामूलक एवं मानवीय सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता पर बल देते हैं।

3. संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक यथार्थ के बीच अंतर्विरोधों का विश्लेषण

भारतीय संविधान स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुत्व जैसे उच्च मानवीय आदर्शों पर आधारित है। ये आदर्श एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान, अवसर और न्याय प्राप्त हो। किंतु राहुल सांकृत्यायन की कृति 'तुम्हारी क्षय' यह स्पष्ट करती है कि संवैधानिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ के बीच एक गहरा अंतर्विरोध विद्यमान है। लेखक इसी अंतर्विरोध को केंद्र में रखकर समाज की आलोचना करता है। संविधान समानता का अधिकार प्रदान करता है, परंतु 'तुम्हारी क्षय' में वर्णित समाज वर्ग, जाति और आर्थिक आधार पर विभाजित दिखाई देता है। व्यवहार में जन्म और संपत्ति व्यक्ति के सामाजिक स्थान को निर्धारित करते हैं, न कि उसकी योग्यता या श्रम। यह स्थिति संवैधानिक समानता को केवल सैद्धांतिक बनाकर छोड़ देती है। इसी प्रकार संविधान सामाजिक और आर्थिक न्याय की बात करता है, जबकि सामाजिक यथार्थ में श्रमिक वर्ग शोषण, गरीबी और असुरक्षा से घिरा हुआ है। कृति में यह स्पष्ट किया गया है कि उत्पादन करने वाला वर्ग ही सबसे अधिक वंचित है, जबकि संसाधनों पर अल्पसंख्यक वर्ग का नियंत्रण है। यह आर्थिक संरचना संविधान की समाजवादी भावना के प्रतिकूल है। स्वतंत्रता भी संविधान का एक प्रमुख आदर्श है, किंतु सामाजिक यथार्थ में यह स्वतंत्रता धर्म, परंपरा और अंधविश्वास के कारण सीमित हो जाती है। 'तुम्हारी क्षय' में लेखक दिखाता है कि धार्मिक पाखंड और रूढ़ियाँ व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता को बाधित करती हैं। इस प्रकार संवैधानिक स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवहार के बीच स्पष्ट विरोधाभास उत्पन्न होता है।

संविधान बंधुत्व और मानवीय गरिमा की स्थापना पर बल देता है, परंतु सामाजिक यथार्थ में जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर भेदभाव और घृणा व्याप्त है। 'तुम्हारी क्षय' में यह विभाजन समाज को विघटित करता

हुआ दिखाई देता है, जिससे बंधुत्व की भावना कमजोर पड़ जाती है। इस प्रकार 'तुम्हारी क्षय' संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक यथार्थ के बीच मौजूद अंतर्विरोधों को उजागर करती है। राहुल सांकृत्यायन यह संकेत देते हैं कि जब तक संवैधानिक मूल्यों को सामाजिक जीवन में वास्तविक रूप से लागू नहीं किया जाएगा, तब तक समाज 'क्षय' की अवस्था से बाहर नहीं आ सकेगा। यह कृति संविधान को एक जीवंत सामाजिक संकल्प के रूप में समझने की प्रेरणा देती है।

समकालीन प्रासंगिकता

राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय' अपने रचनाकाल की सीमाओं को लाँघकर आज के समाज में भी गहरी प्रासंगिकता रखती है। यह कृति जिन सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक विसंगतियों की ओर संकेत करती है, वे समस्याएँ वर्तमान समय में भी भिन्न रूपों में विद्यमान हैं। इसलिए 'तुम्हारी क्षय' केवल ऐतिहासिक या साहित्यिक दस्तावेज़ न होकर एक समकालीन चेतावनी और मार्गदर्शक के रूप में सामने आती है।समकालीन समाज में आर्थिक असमानता लगातार बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रभाव में संपत्ति का केंद्रीकरण कुछ हाथों में सिमटता जा रहा है, जबकि श्रमिक वर्ग आज भी असुरक्षा और शोषण का शिकार है। 'तुम्हारी क्षय' में वर्णित वर्गीय विषमता आज के संदर्भ में और अधिक तीव्र रूप में दिखाई देती है, जिससे कृति की प्रासंगिकता सिद्ध होती है।जाति-आधारित भेदभाव संविधानिक निषेध के बावजूद आज भी सामाजिक जीवन का हिस्सा बना हुआ है। सम्मान, अवसर और न्याय अब भी अनेक बार जन्म के आधार पर निर्धारित होते हैं। इस संदर्भ में 'तुम्हारी क्षय' जाति व्यवस्था पर जो तीखा प्रहार करती है, वह आज के समाज को आत्मालोचन के लिए प्रेरित करता है।धार्मिक कट्टरता और वैचारिक असहिष्णुता वर्तमान समय की एक गंभीर समस्या है। धर्म का उपयोग आज भी राजनीतिक और सामाजिक वर्चस्व स्थापित करने के लिए किया जाता है, जिससे व्यक्ति की स्वतंत्र सोच और सामाजिक सौहार्द प्रभावित होता है। 'तुम्हारी क्षय' में धर्म और अंधविश्वास की आलोचना आज के लोकतांत्रिक समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।इसके अतिरिक्त, स्त्री अधिकार, शिक्षा और समान अवसर जैसे प्रश्न आज भी पूर्णतः हल नहीं हो पाए हैं। स्त्री के प्रति भेदभाव, शिक्षा में असमानता और बेरोज़गारी जैसी समस्याएँ कृति में चित्रित सामाजिक 'क्षय' को वर्तमान समय से जोड़ती हैं।अतः कहा जा सकता है कि 'तुम्हारी क्षय' समकालीन समाज के लिए एक वैचारिक दर्पण है। यह कृति हमें यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि क्या हम संवैधानिक मूल्यों को व्यवहार में उतार पाए हैं। इस प्रकार 'तुम्हारी क्षय' की समकालीन प्रासंगिकता इसे आज भी सामाजिक चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए आवश्यक बनाती है।

निष्कर्ष

देश और विदेश के जाने माने प्रसिद्ध विद्वान और समाज शास्त्री तुम्हारी क्षय' रचना द्वारा अगर कोई बात रखते है, तो उसको कोई तो दुनियाद होगी! यह आधार और बाते उन्होने आजादी की भारत को सामने रख कर उस समय का भारतीय समाज और उनकी आर्थिक स्थिती, सामाजिक स्थिति बहुत गंभीर थी इस आधार पर उन्होने लोगो को सतर्क कराने के लिए और नई दिशा देने के लिए यह रचना लिखी है! अब आजादी के

75 साल बाद भी बहुत सारे देशवासी उसी चक्रव्यूह मे फसे है! गरीब और गरीब बनता जा रहा है और अमीर और अमीर बनते जा रहे है! काश सांस्कृत्यायन की यह बात देश ने स्वीकार्य होती निश्चित रूप से समाजवाद देश मे विकसित होता! यह बात नेहरूजी भी चाहते थी और देश के बाकी मूर्धन्य नेता भी चाहते थे,लेकिन ऐसा नही हो पाया! लोगो की सीमित सोच और स्वार्थी वृती इसके लिए जिम्मेदार है! इसलिये आज भी यह कृती प्रासंगिक है!

प्रस्तुत शोधालेख के समग्र अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राहुल सांस्कृत्यायनजी की 'तुम्हारी क्षय' यह कृती आजादी के पूर्व जनता को सामाजिक आर्थिक शोषण के तथा अन्याय ते खिलाफ उजागर करने का काम करती है। प्रस्तुत रचना आजादी की पहले राहुल सांस्कृत्यायनजी द्वारा छपरा के जेल मे लिखी गई थी किंतु आज भी आधुनिक समाज जीवन मे प्रस्तुत कृती मे निहित आर्थिक और सामाजिक विसंगतियाँ' प्रचलित है! इसके परिणाम स्वरूप आज भी भारतीय समाज में जनता के बीच आर्थिक क्षय, सामाजिक श्रेय, वैज्ञानिक क्षय, धार्मिक क्षय आदी की अनुभूती होती है! इससे देश की आजादी के बाद भी यह रचना सामाजिक–आर्थिक विसंगतियों को उजागर करते हुए भारतीय संविधान में निहित मूल्यों समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, बंधुत्व और मानवीय गरिमा के पक्ष में सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप करती है।

शोध से यह स्पष्ट होता है कि कृति में चित्रित जाति-व्यवस्था, वर्गीय विषमता, आर्थिक शोषण, धार्मिक पाखंड और स्त्री-असमानता जैसी समस्याएँ संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ है। 'यह भी निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राहुल सांकृत्यायन का दृष्टिकोण तर्क, मानवतावाद और प्रगतिशील चेतना पर आधारित है। वे सामाजिक 'क्षय' को अपरिवर्तनीय नहीं मानते, बल्कि उसे मानवीय प्रयासों और वैचारिक जागरूकता के माध्यम से दूर किए जाने योग्य मानते हैं। इस दृष्टि से 'तुम्हारी क्षय' एक निराशावादी नहीं, बल्कि परिवर्तनकामी और आशावादी कृति है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'तुम्हारी क्षय' भारतीय समाज को आत्मावलोकन की प्रेरणा देती है और संवैधानिक मूल्यों को व्यवहार में उतारने की आवश्यकता पर बल देती है। यह शोधालेख इस तथ्य को स्थापित करता है कि साहित्य सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम है तथा लोकतांत्रिक, न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के निर्माण में इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि 'तुम्हारी क्षय' भारतीय संविधान की आत्मा के अनुरूप सामाजिक न्याय और मानवीय मुक्ति का वैचारिक घोषणापत्र है।

संदर्भ

1. राहुल सांकृत्यायन : *तुम्हारी क्षय*
2. भारतीय संविधान
3. प्रगतिशील साहित्य आंदोलन : आलोचनात्मक अध्ययन

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी कथा साहित्य में चित्रित वृध्द विमर्श

[1]सरिता संतोष माली, [2]प्रो. डॉ. योगेश गोकुल पाटील

[1]शोध छात्रा,हिंदी विभाग,अनुसंधान केंद्र, [2]उपप्राचार्य एवं हिंदी विभागअध्यक्ष
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय धुले, महाराष्ट्र

प्रस्तावना

वृद्धावस्था एक प्राकृतिक अवस्था है। इसका शाब्दिक अर्थ पका हुआ और परिपक्व है। आज के आधुनिकीकरण समाज में पारिवारिक जीवन की बड़ी हानि हुई है। इस कारण संयुक्त परिवार का रूपांतरण एकल परिवार में होने लगा। एक समय ऐसा था कि परिवार में वृद्ध व्यक्तियों को श्रद्धा का स्थान दिया जाता था किंतु अब वे लोग परिवार में उपेक्षित होने लगे हैं। कुछ परिवार में वृद्ध व्यक्तियों का स्थान घर के केंद्र से निकलकर घर के कोने में होता गया। आज के आधुनिक युग में बच्चे होते हुए भी बुजुर्ग माता-पिता को वृद्धाश्रम में रखा जाता है। समाज के लिए यह बहुत ही लज्जास्पद बात है। इस प्रकार से परिवार में हुए बदलाव का चित्रण कथा साहित्य में देखने को मिलता है। वृद्ध विमर्श यानी वृद्ध व्यक्तियों की परिस्थितियों का अभ्यास करके उसे समझना, उनसे संबंधित घटनाओं का मनन, चिंतन करना और उनकी समस्याओं को समझकर उसका समाधान निकालना है। आज के आधुनिक युग में एकल परिवार, परिवार में बढ़ता अजनबीपन, एकाकीपन, नैतिक मूल्य का पतन और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव आदि समस्याएं बढ़ती जा रही है। परिवार में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में हमेशा संघर्ष होता दिखाई देता है इस कारण हम लोग एक दूसरे से बिछड़ते जा रहे है ।

विश्व में बुजुर्ग व्यक्तिओं की समस्याओं पर ध्यान आकर्षित करने का काम अर्जेंटीना ने किया है। अर्जेंटीना ने बुजुर्ग व्यक्तिओं की समस्याओं को लेकर संयुक्त राष्ट्र महासभा का ध्यान खींचा। संयुक्त राष्ट्र संघ में इसकी पहल की है। वैश्विक स्तर पर वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं पर विचार विमर्श होते रहे। परिणाम स्वरूप वृद्ध व्यक्तियों पर हो रहे अन्याय और अत्याचार को दूर करने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए जन चेतना के उद्देश्य से 14 दिसंबर 1990 को निर्णय लिया गया कि हर साल 1अक्टूबर को 'अन्तर्राष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस' मनाया जाएगा। विश्व का पहला अन्तर्राष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस 1 अक्टूबर 1991 में मनाया गया। इस परीक्षित मे वृद्ध व्यक्तियों का खयाल रखा गया और सुख सुविधा मुहैया कराई गई। हमारे भारत देश में माता-पिता के भरण पोषण, वृद्धों की चिकित्सा, सुविधा की व्यवस्था, वृद्धाश्रम की स्थापना, वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के प्रावधान के लिए 2007 में "माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक भरण- पोषण विधेयक" संसद में पारित किया गया।

कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श

ममता कालिया जी का 'दौड' उपन्यास आधुनिकीकरण और भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है। इस उपन्यास में विघटित होते संस्कार, बदलते मानवीय मूल्य, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और वृद्ध माता-पिता के भय, दुख, तनाव, चिंता को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में नायिका रेखा और उसका पति राकेश है। उनके दो बेटे पवन और सघन है। माता-पिता अपनी पूरी कमाई बेटों के पढ़ने लिखने में लगा देते हैं और उनको पढ़ लिखकर काबिल बनते हैं। बेटे पढ लिखकर नौकरी के लिए घर से बाहर निकलते हैं और अपना करियर बनाते हैं। पवन अपने पिता से करता है - "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है कैरियर है। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूंगा।"[1] इस प्रकार यहां पर नई पीढ़ी अपने करियर को ज्यादा महत्व देती है। माता-पिता उनके सामने कुछ मायने नहीं रखते है।

रेखा और राकेश का दूसरा बेटा सघन भी सॉफ्टवेयर कंपनी में नौकरी के लिए ताइवान चला जाता है। उनके बुढ़ापे के अभिशप्त जीवन का मार्मिक चित्रण ममता जी ने इस उपन्यास में किया है। अपने करियर के चक्कर में बेटों के पास अपने माता-पिता के लिए वक्त नहीं होता है। जब राकेश की मौत हो जाती है तब उनके दोनों बेटे उनका दाह संस्कार

करने के लिए उपस्थित नहीं रहते। क्योंकि दोनों बेटो के पास वक्त नहीं रहता है। इसी उपन्यास में अन्य पात्रों के माध्यम से बुढ़ापे में अकेले और बेबस रहने वाले परिवारों का चित्रण लेखिका ने यहां पर किया है। सोनी साहब का बेटा न्यूयॉर्क में रहता है। जब सोनी साहब की मृत्यु हो जाती है तो उनका बेटा दाह संस्कार के लिए नहीं आ पाता। पड़ोसी को वह सलाह देता है कि, "आप ऐसा कीजिए इस काम के लिए किसी ना किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरा दिन रुकना मुश्किल होगा आप सब काम पूरा करवा लीजिए।"[2]

ममता कालिया जी ने इस उपन्यास के जरिए राकेश और रेखा को एक चेहरा दिया है जो कि सब बुजुर्ग माता-पिता का प्रतिनिधित्व करती है और इस समस्या से गुजर रहे हैं। यहां पर लेखिका स्वयं कहती है - "यह सब कामयाब संतानों के मां-बाप थे। हर एक के चेहरे पर भय और आशंका के साए थे। बच्चों की सफलता उनके जीवन में सन्नाटा बोल रही थी।"[3] इस प्रकार से 'दौड़' उपन्यास में ममता जी ने बुजुर्गों की समस्या को चित्रित किया है।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखा गया उपन्यास 'गिलिगडु' है। इस उपन्यास में उन्होंने बुजुर्गों की समस्या को मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। गिलिगडु का अर्थ चिड़िया है। इस उपन्यास में चित्रा जी ने गिलिगडु शब्द का प्रयोग वृद्ध पात्र कर्नल स्वामी की जुड़वा पोतियों के लिए किया है। चित्रा मुदगल जी ने गिलिगडु उपन्यास में तेरह दिनों के वृद्धों के जीवन को केंद्र में रखा है। यह उपन्यास आज के सभ्य जीवन की पोल खोलता है। जो की वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं की जड़ में है। समाज में सुखी परिवार उसे कहां जाता है जहां पर परिवार के वृध्द व्यक्तियों को आदर, सम्मान और सुख देने के साथ ही उन्हें खुश रखना उनके अपने संतानों का परम कर्तव्य है। किंतु आज वर्तमान समय में इसका अभाव हमें दिखाई देता है। डॉ. अर्चना मिश्रा का कथन है-

"गिलिगडु उपन्यास में चित्र जी ने वृद्ध की बेचारगी संवेदनशीलता और जीवन शैली को विस्तार दिया है। पुस्तक के फ्लैप पर लिखी इबारत में भी इस उपन्यास की आधारभूमि की ओर संकेत किया गया है। गिलिगडु चित्रा जी का आकार में छोटा परंतु संवेदनशीलता में कहीं गहरा उपन्यास है। इस उपन्यास में सेवानिवृत्त बुजुर्ग की एक रेखीय कहानी नहीं, जीवन के रंग बहुआयामी रूपों में उभर कर आये हैं।"

अपने लोगों के बीच अकेला होने की त्रासदी और पूरे परिवार में अपने आप को उपयोग विहीन मानने की बेचैनी बाबू जसवंत सिंह को घरवालों से तोड़ती रहती है। नाते रिश्तो में जब अपनापन, प्यार खत्म हो जाता है तो रिश्तो को जिया नहीं जाता है तो ढोया जाता है। वह रिश्ता बोझ बन जाता है। बाबू जसवंत सिंह का उनके बेटे - बहू और बेटी का रिश्ता कुछ ऐसा ही बन जाता है। "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं एक टॉमी दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निसंदेह उनकी बनिसबत मजबूत है।"[4] बाबू जसवंत सिंह अपने आप को बेजान घर के कोने में पड़ी रहने वाली चीज मानने को तैयार नहीं है। जसवंत जी अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहने वालों में से एक है। इस काम में उन्हें हौसला मिलता है। कर्नल स्वामी से जो कहते है- "मौत जब आएगी, आ जाएगी। किसी भी शक्ल में आ जाएगी। रागडेगी, हफ्ता, महीना, साल या अचानक झपाटे से उठा लेगी। उठा ले, मगर उन कुछेक कष्टकर दिनों की कल्पना में रात- दिन अधमरे होकर जीना जिंदगी का मजाक उड़ाना नहीं।"[5] घरवालों की उपेक्षा एवं खोखले रिश्ते की कसक उसकी पीड़ा पर मरहम लगाने का काम सनगुनिया करती है।

काशीनाथ सिंह जी का 'रेहन पर रग्घू' इस उपन्यास में भूमंडलीकरण से गांव में परिवर्तन के साथ बिगड़ते मानवीय मूल्यों का चित्रण वृद्ध पात्र रग्घु के माध्यम से किया है। वृद्ध रघु जी कॉलेज में प्राध्यापक की नौकरी करते हैं। वहां की स्थानीय राजनीति से परेशान होकर उन्हें कॉलेज से इस्तीफा देना पड़ता है। गांव में गुजरी हुई जिंदगी बुढ़ापे के समय में पूरी तरह से बदल जाती है। रग्घू जी के दो बेटे और एक बेटी हैं। बड़ा बेटा संजय सक्सेना की बेटी सोनम से विवाह कर शहर में रहता है। मझला बेटा धनंजय अपनी उम्र से ज्यादा किसी विधवा लड़की के साथ शादी कर लेता है। और बेटी सरल नौकरी की वजह से घर से बाहर रहती है। रग्घू जी की पत्नी का देहांत हो चुका था। बेटे -बहु, बेटी से भरा पूरा परिवार होने के बावजूद उन्हें गांव में अकेले रहना पड़ता है। रग्घू का बेटा संजय अपनी पत्नी को छोड़कर अमेरिका में किसी

गुजराती लड़की से शादी कर वही बस जाता है। यह बात सुनकर रग्घू जी को बहुत दुख होता है और वह अपनी बहू के साथ गांव में रहते हैं। सोनम भी अपने पुराने मित्र के साथ शादी कर लेती है और उसका कन्यादान रग्घूजी करते हैं। मेरे परिवार वालों को मेरी कितनी फिक्र है यह जानने के लिए रग्घू खुद को धमकाने के लिए आए हुए गुंडो से अपने आप को किडनेप करवाते हैं और कहते है-

"मुझे ले चलो! अगवा करो मुझे और फिरौती मांगो दो लाख!"

"कौन देगा तुम्हारे जैसे सडे गले बुड्ढे को दो लाख?"

"सिर्फ दो लाख इसलिए की रकम नहीं अखरेगी देने में। मिल भी जाएंगी और हत्या से भी बच जाओगे।"

"अरे देगा कौन इस सड़े गले का?"

"सड़ा गला तुम्हारे लिए हूं, बेटों के लिए तो नहीं, बेटी के लिए तो नहीं?"

"मान लो इनमें से कोई फिरौती देने ना आए तो?"

"यही तो देखना है कि कोई आता भी है या नहीं?"

"हम भी यही कह रहे हैं कोई न आए तब?"

रघुनाथ ने क्षण पर सोचा- "तो भी चिंता नहीं। तुम्हारी 'पकड़' इतनी गई गुजरी नहीं। इतना है मेरे पास कि खुद को छुड़ा लूं!"[6] इस प्रकार से 'रेहन पर रग्घू' इस उपन्यास के माध्यम से नाते रिश्तो की वास्तविकता को दर्शाया है।

कृष्णा सोबती जी का समय सरगम यह उपन्यास 2000 में प्रकाशित हुआ है, जो कि वृद्ध व्यक्तियों को सही में ढंग से अपना जीवन जीने का सही तरीका सीखाता है। समय सरगम उपन्यास न केवल वृद्धों के साथ होने वाली पीड़ा, अवहेलना, त्रासदी और अकेलेपन को दर्शाता है, साथ ही साथ मृत्यु को नए नजरिए से देखकर जीने की कला सीखाती है। इस उपन्यास में ईशान और आरण्य वृद्ध है और एक दूसरे के पड़ोसी है। दोनों ही व्यक्ति अकेले रहते हैं और वे दोनों में अच्छी दोस्ती है। यह दोनों जीवन खूब मजे से जीने में विश्वास सकते हैं। ईशान और आरण्य इन दोनों की अपनी- अपनी समस्या है किंतु उन समस्याओं से परे अपने जीवन जीने में विश्वास रखते हैं। इन दोनों का जीवन जीने का तरीका कुसुम शर्मा के कथन से स्पष्ट होता है कि, "व्यक्ति अगर चिंतन कर अपने ही जीवन में झांककर देखें तो कभी उसे यह न लगना चाहिए कि उसने जिंदगी जी नहीं है। साथ ही मौत से घबराना भी मौत है मौत से न घबराना ही जिंदगी है।"[7] इस प्रकार से कृष्णा सोबती का 'समय सरगम' इस उपन्यास में ईशान और आरण्य जैसे पात्रों के माध्यम से वृद्ध व्यक्तियों की समस्या को चित्रित किया गया है। उनकी बेबसी, अकेलापन और पीड़ा को दर्शाने के साथ ही उन व्यक्तियों की मानसिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

मृणाल पांडे की 'धूप छांव' इस कहानी में बुजुर्ग माता का चित्रण वर्णन किया है। इस कहानी में लेखिका ने वृद्ध माता के अकेलेपन और अजनबीपन को प्रस्तुत किया है। उसका बेटा पढ लिखकर बड़ा होकर कमाने के लिए शहर जाता है। गांव में उसकी मां अकेली, बेबस और लाचार रहने के लिए मजबूर हो जाती है। इस कहानी की मां एक अनाथ बच्चों को अपने साथ रखती है। वह अनाथ बेटा छुट्टियों में घर आता है लेकिन उसे अपना घर अजनबी लगने लगता है। अपने घर की दयनीय हालत को देखकर वह सोचता है - "धूप छांव के धब्बों से ढका घर एकदम चुप था, इतना चुप कि कभी-कभी लगने लगता था कि वह घर नहीं बल्कि धूप छांव की कोई परिकल्पना घर है।"[8] इस प्रकार यहां पर वृद्ध माता की बेबसी और अकेलेपन का वर्णन किया है।

स्वाति तिवारी की कहानी 'वैतरणी के पार' इस कहानी में हमारे समाज और परिवार में पनपते पुत्र मोह की मानसिकता का वर्णन किया गया है। पुत्र मोह में माता-पिता अपने बेटियों का अनादर और अपमान करते है। किंतु जब बेटे द्वारा माता-पिता का अपमान और अनादर किया जाता है और माता-पिता को अकेला छोड़ कर चले जाते हैं तभी वही बेटियां उन्हें आश्रय देती है। इसका वर्णन लेखिका ने "वैतरणी के पार" इस कहानी में किया है। इस कहानी में लेखिका पिता के माध्यम से पुत्र मोह के चलते बेटियों पर अन्याय करने के बावजूद बेटियों द्वारा सहारा देने पर उनके मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखती है- "तू आ गई तो मेरा सम्मान बच गया, वरना मैं अपने दिए संस्कारों में ही ढूंढता रहता था कि कहां कमी रह गई। पर बेटी तूने मुझे आत्मग्लानि से बचा लिया वरना मैं सूरज की उजाले में भी उस घर में फैले अंधेरे से डरने लगा था।"[9] इस प्रकार से लेखिका ने यहां पर वृद्ध व्यक्तियों की पीड़ा, अकेलापन और बेबसी आदि समस्याओं का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध आलेख के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श आधुनिक सामाजिक यथार्थ का सशक्त और संवेदनशील प्रतिबिंब है। औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण और एकल परिवार की संरचना ने पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को कमजोर किया है, जिसके परिणामस्वरूप वृद्धजन उपेक्षा, अकेलेपन, असुरक्षा और भावनात्मक विघटन का शिकार हो रहे हैं। ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, काशीनाथ सिंह, कृष्णा सोबती, मृणाल पांडे और स्वाति तिवारी जैसे रचनाकारों ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से वृद्धों की दयनीय स्थिति, टूटते पारिवारिक संबंधों और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

इन रचनाओं में वृद्ध पात्र केवल सहानुभूति के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना को झकझोरने वाले सशक्त प्रतीक के रूप में उभरते हैं। कहीं वे उपेक्षित और अकेले हैं, तो कहीं जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखते हुए संघर्षशील भी दिखाई देते हैं। यह साहित्य न केवल वृद्धों की समस्याओं को उजागर करता है, बल्कि समाज और परिवार को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है। निष्कर्षतःकहा जा सकता है कि हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना, पारिवारिक उत्तरदायित्व की स्मृति और सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ममता कालिया, दौड, पृष्ठ 41
2. वही, पृष्ठ 35
3. वही, पृष्ठ 69
4. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृष्ठ 96
5. वही, पृष्ठ 63
6. काशीनाथ सिंह, रेहना पर रग्घू, पृष्ठ 163
7. कुसुम शर्मा, साठोत्तरी हिंदी उपन्यास: विविध प्रयोग, पृष्ठ 145
8. डॉ. प्रज्ञा तिवारी, मृणाल पांडे- व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 41
9. स्वाति तिवारी, वैतरणी के पार, पृष्ठ 110

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान

डॉ. नाना गायकवाड

प्राचार्य, सौ. रजनीताई नानासाहेब देशमुख कला
वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भडगाव. जि. जलगाव

प्रस्तावना:

हिंदी साहित्य का इतिहास महिला साहित्यकारों के सशक्त, सृजनशील और परिवर्तनकारी योगदान के बिना अधूरा और एकांगी माना जाएगा। साहित्य किसी भी समाज की संवेदना, चेतना और यथार्थ का दर्पण होता है, और जब तक उसमें समाज की आधी आबादी स्त्रियों के अनुभव, दृष्टि और संघर्ष समाहित न हों, तब तक वह संपूर्ण नहीं हो सकता। लंबे समय तक हिंदी साहित्य में स्त्री को केवल विषय, प्रेरणा या करुणा की पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ उसका चित्रण पुरुष दृष्टि से निर्धारित मानकों के भीतर सीमित रहा। स्त्री की पीड़ा, त्याग और सहनशीलता को आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया गया, किंतु उसके विचार, इच्छाएँ और आत्मनिर्णय को पर्याप्त स्थान नहीं मिला।

ऐसे साहित्यिक परिदृश्य में महिला लेखन का उदय एक महत्वपूर्ण वैचारिक परिवर्तन का संकेत है। महिला साहित्यकारों ने स्त्री को साहित्य में केवल देखे जाने वाला पात्र नहीं, बल्कि बोलने वाला, सोचने वाला और प्रश्न करने वाला स्वर प्रदान किया। उन्होंने अपने जीवनानुभवों, सामाजिक यथार्थ और ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर साहित्य रचना की, जिससे हिंदी साहित्य की संवेदना का विस्तार हुआ। स्त्री लेखन ने यह स्पष्ट किया कि स्त्री का अनुभव पुरुष अनुभव से भिन्न है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए अलग भाषा, दृष्टि और संरचना की आवश्यकता है।

विषय प्रवेश:

महिला साहित्यकारों ने अपने लेखन में केवल स्त्री जीवन की पीड़ा तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक विषमताओं, वर्गभेद, जातिगत भेदभाव, पारिवारिक जटिलताओं और नैतिक प्रश्नों को भी साहित्य का विषय बनाया। उनका लेखन निजी अनुभव से सामाजिक यथार्थ की ओर बढ़ता है। घर, परिवार, विवाह, मातृत्व, श्रम और देह ये सभी स्त्री लेखन में नए अर्थों के साथ उपस्थित होते हैं। इससे साहित्य में जीवन की वास्तविकताओं का अधिक प्रामाणिक और मानवीय चित्र उभरकर सामने आता है।

महिला साहित्यकारों का योगदान हिंदी साहित्य को अधिक संवेदनशील, लोकतांत्रिक और समावेशी बनाता है। उन्होंने पितृसत्तात्मक मूल्यों और रूढ़ सामाजिक संरचनाओं पर प्रश्न उठाए और समानता, आत्मसम्मान तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्यों को साहित्यिक अभिव्यक्ति दी। स्त्री लेखन में मौन से वाणी की ओर, सहनशीलता से प्रतिरोध की ओर और परंपरा से परिवर्तन की ओर एक स्पष्ट यात्रा दिखाई देती है। इस यात्रा ने हिंदी साहित्य को केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रखकर सामाजिक चेतना का माध्यम बनाया।

इस प्रकार महिला साहित्यकारों का योगदान हिंदी साहित्य के लिए केवल एक अतिरिक्त आयाम नहीं, बल्कि उसकी संरचनात्मक और वैचारिक समृद्धि का आधार है। उनके लेखन ने साहित्य को जीवन के अधिक निकट लाया और मानवीय मूल्यों को केंद्र में स्थापित किया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि महिला साहित्यकारों के योगदान ने हिंदी साहित्य को न केवल व्यापक बनाया है, बल्कि उसे अधिक संवेदनशील, प्रासंगिक और समकालीन भी बनाया है।

महादेवी वर्मा:

छायावादी युग में महादेवी वर्मा का योगदान हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक है। उन्हें प्रायः करुणा और वेदना की कवयित्री कहा गया है, किंतु उनका साहित्य केवल भावनात्मक संवेदना तक सीमित नहीं है। वस्तुतः महादेवी वर्मा का लेखन स्त्री की आत्मचेतना, आत्मसम्मान और स्वतंत्र अस्तित्व का सशक्त उद्घोष है, जो तत्कालीन सामाजिक संरचनाओं पर सूक्ष्म किंतु प्रभावी प्रश्न उठाता है। महादेवी वर्मा की कविताओं में नारी की पीड़ा को नियति या दैवी विधान मानकर स्वीकार नहीं किया गया है। वे स्त्री-दुःख को सामाजिक व्यवस्था, पितृसत्तात्मक सोच और ऐतिहासिक अन्याय से जोड़कर देखती हैं। उनकी काव्य-नायिका निरीह या पराजित नहीं है, बल्कि संवेदनशील होते हुए भी आत्मगौरव से युक्त है। 'नीर भरी दुःख की बदली' जैसे प्रतीकों के माध्यम से वे स्त्री जीवन की वेदना को व्यक्त करती हैं, पर यह वेदना आत्मसमर्पण नहीं, बल्कि गहन आत्मबोध की भूमि तैयार करती है। यहाँ करुणा कमजोरी नहीं, बल्कि मानवीय शक्ति बनकर उभरती है। [1]

महादेवी वर्मा के निबंध स्त्री विमर्श की दृष्टि से विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। श्रृंखला की कड़ियाँ जैसे निबंध संग्रह में उन्होंने स्त्री की सामाजिक स्थिति, शिक्षा, स्वतंत्रता और अधिकारों पर गंभीर चिंतन किया है। वे स्त्री को केवल परिवार और समाज की सेवा करने वाली इकाई नहीं मानतीं, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करती हैं। उनके विचारों में यह स्पष्ट है कि जब तक स्त्री को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं मिलेगा, तब तक समाज का नैतिक और मानवीय विकास संभव नहीं है।

महादेवी वर्मा स्त्री के आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा को केंद्रीय मूल्य मानती हैं। उनका लेखन पितृसत्तात्मक समाज द्वारा गढ़ी गई उस छवि को अस्वीकार करता है, "जिसमें स्त्री को सहनशीलता, त्याग और मौन का प्रतीक बना दिया गया है। वे स्त्री को चेतन, विचारशील और संवेदनशील मनुष्य के रूप में देखती हैं, जिसकी अपनी आकांक्षाएँ और दृष्टि है। इस अर्थ में उनका साहित्य स्त्री को 'वस्तु' या 'आदर्श' से निकालकर 'व्यक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित करता है। [2]

यह भी उल्लेखनीय है कि, महादेवी वर्मा का स्त्री दृष्टिकोण आक्रामक प्रतिरोध के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक और बौद्धिक दृढ़ता के रूप में सामने आता है। वे संवेदना के माध्यम से समाज की अंतरात्मा को जगाने का प्रयास करती हैं। यही कारण है कि उनका लेखन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। महादेवी वर्मा का साहित्य हिंदी साहित्य में स्त्री दृष्टि के सुदृढ़ और सशक्त आरंभ का संकेत है। उन्होंने छायावादी युग में रहते हुए भी स्त्री को करुणा की मूर्ति से आगे बढ़ाकर आत्मचेतन, सम्मानपूर्ण और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित

किया। इस दृष्टि से उनका योगदान न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक और वैचारिक परिवर्तन का भी आधार है।

मैत्रेयी पुष्पा:

आधुनिक और समकालीन हिंदी साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री विमर्श को नई सामाजिक ज़मीन और व्यापक दृष्टि प्रदान करता है। उनका साहित्य शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय स्त्री तक सीमित न रहकर ग्रामीण और हाशिए की स्त्रियों के जीवनानुभवों को केंद्र में लाता है। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का लेखन स्त्री विमर्श को सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट पहुँचाता है और उसे अधिक समावेशी बनाता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री का जीवन उसके श्रम, संघर्ष और आत्मसम्मान के साथ उभरता है। खेत, घर, परिवार और समाज इन सभी स्तरों पर स्त्री का श्रम दिखाई देता है, जिसे लंबे समय तक अदृश्य रखा गया। उनकी स्त्री पात्र केवल पीड़ित नहीं हैं, बल्कि वे अपने श्रम के मूल्य और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं। यही अधिकार-बोध उन्हें परिस्थितियों से जूझने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है। [3] इस प्रकार उनकी स्त्रियाँ नियति-स्वीकार करने वाली नहीं, बल्कि स्थितियों को बदलने की आकांक्षा रखने वाली स्त्रियाँ हैं।

महत्वपूर्ण यह है कि, मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री पात्र न तो आदर्शीकृत हैं और न ही दयनीय। वे जीवन की जटिलताओं, विरोधाभासों और सीमाओं के भीतर रहते हुए अपनी राह खोजती हैं। उनका लेखन स्त्री को किसी आदर्श साँचे में ढालने से बचता है। उनकी नायिकाएँ गलतियाँ करती हैं, प्रश्न उठाती हैं और अपने निर्णयों की जिम्मेदारी भी उठाती हैं। इससे स्त्री का एक यथार्थवादी और मानवीय रूप सामने आता है, जो पाठक को अधिक विश्वसनीय और निकट लगता है। मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य यह स्पष्ट करता है कि स्त्री मुक्ति का प्रश्न केवल शहरी या शिक्षित स्त्रियों तक सीमित नहीं है। ग्रामीण समाज में रहने वाली स्त्रियाँ भी समान रूप से पितृसत्तात्मक शोषण, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक नियंत्रण का सामना करती हैं। "उनके उपन्यासों में जाति, वर्ग और लिंग के अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इससे स्त्री विमर्श का दायरा विस्तृत होता है और वह सामाजिक संरचना की जटिलताओं को समझने का माध्यम बनता है। [4]

स्त्री देह, मातृत्व, विवाह और पारिवारिक संबंध ये सभी विषय मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में नए अर्थों के साथ उपस्थित होते हैं। वे इन विषयों को आदर्शवाद या नैतिक उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनका लेखन स्त्री को मौन सहनशीलता से बाहर निकालकर संवाद और आत्मनिर्णय की ओर ले जाता है। मैत्रेयी पुष्पा का योगदान हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श को जमीनी यथार्थ से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास है। उन्होंने स्त्री को केवल विचारधारा का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय इकाई के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार उनका लेखन हिंदी साहित्य को अधिक संवेदनशील, यथार्थपरक और न्यायपूर्ण बनाता है तथा स्त्री लेखन को नई वैचारिक ऊँचाई प्रदान करता है।

कृष्णा सोबती:

हिंदी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती का योगदान स्त्री लेखन को निर्भीकता, वैचारिक स्पष्टता और भाषाई नवीनता प्रदान करने वाला माना जाता है। उन्होंने स्त्री को परंपरागत मर्यादाओं, नैतिक बंधनों और सामाजिक नियंत्रणों के भीतर सीमित रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति का सशक्त विरोध किया। सोबती का लेखन स्त्री को करुणा या त्याग की मूर्ति नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र, इच्छाशील और निर्णयक्षम व्यक्ति के रूप में स्थापित करता है। कृष्णा सोबती की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने स्त्री की देह, भाषा और स्वतंत्रता जैसे विषयों को बिना संकोच साहित्य में स्थान दिया। हिंदी साहित्य में लंबे समय तक स्त्री देह को या तो रहस्य, लज्जा या नैतिकता की दृष्टि से देखा गया था। सोबती ने इस दृष्टिकोण को तोड़ते हुए देह को स्त्री की पहचान और अनुभव का स्वाभाविक अंग माना। उनके लेखन में देह शोषण का प्रतीक भर नहीं, बल्कि आत्म-अभिव्यक्ति और आत्मनिर्णय का माध्यम भी बनती है। इस निर्भीकता ने स्त्री लेखन को नई वैचारिक दिशा दी।

सोबती की रचनाओं में स्त्री पात्र पारंपरिक मर्यादाओं को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं करतीं। वे विवाह, परिवार, प्रेम और समाज के स्थापित नियमों पर प्रश्न उठाती हैं। उनकी स्त्रियाँ सामाजिक नियंत्रण के विरुद्ध संघर्ष करती हुई आत्मनिर्णय की ओर अग्रसर होती हैं। यह आत्मनिर्णय केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक सीमित नहीं, बल्कि स्त्री के अस्तित्व और सम्मान से जुड़ा हुआ है। सोबती की स्त्री अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेना चाहती है चाहे वह संबंधों का चुनाव हो, जीवन-शैली हो या विचारों की अभिव्यक्ति। [5]

कृष्णा सोबती का लेखन पितृसत्तात्मक मानसिकता पर सीधा प्रहार करता है। वे उस नैतिकता को चुनौती देती हैं, जो स्त्री के लिए कठोर और पुरुष के लिए लचीली होती है। उनके साहित्य में यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक नैतिकता के नाम पर स्त्री को नियंत्रित करना वास्तव में सत्ता और वर्चस्व का साधन है। सोबती इस दोहरे मापदंड को उजागर कर स्त्री के पक्ष में एक साहसिक वैचारिक हस्तक्षेप करती हैं। भाषा के स्तर पर भी कृष्णा सोबती का योगदान उल्लेखनीय है। उनकी भाषा बोलचाल के निकट, जीवंत और आत्मीय है, जो स्त्री अनुभवों को पूरी प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त करती है। वे भाषा को केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि स्त्री की संवेदना और चेतना का वाहक बनाती हैं। इस कारण उनका लेखन पाठक को सीधे स्त्री के आंतरिक संसार से जोड़ देता है।

कृष्णा सोबती ने हिंदी कथा साहित्य में स्त्री लेखन को निर्भीक स्वर, वैचारिक साहस और सामाजिक प्रासंगिकता प्रदान की। उन्होंने स्त्री को नैतिकता के कठोर साँचे से मुक्त कर स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस दृष्टि से सोबती का लेखन न केवल स्त्री विमर्श का सशक्त पक्ष है, बल्कि हिंदी साहित्य की लोकतांत्रिक और मानवीय चेतना को भी समृद्ध करता है।

निष्कर्षतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान साहित्यिक इतिहास की एक निर्णायक और परिवर्तनकारी उपलब्धि है। उनके लेखन ने न केवल हिंदी साहित्य के विषय-वस्तु और संवेदना के क्षेत्र का विस्तार किया, बल्कि उसकी वैचारिक दिशा को भी गहराई प्रदान की।

लंबे समय तक साहित्य में स्त्री को सहनशीलता, त्याग और मौन की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया था, किंतु स्त्री लेखन ने इस एकांगी दृष्टि को तोड़ते हुए नारी को चेतन, प्रश्नशील और अधिकार-संपन्न व्यक्ति के रूप में स्थापित किया। महिला साहित्यकारों ने साहित्य को नई दृष्टि और नई भाषा प्रदान की। उन्होंने जीवन के उन अनुभवों को अभिव्यक्ति दी, जिन्हें परंपरागत साहित्य में या तो उपेक्षित किया गया या सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया था। स्त्री जीवन के निजी अनुभव जैसे देह, मातृत्व, श्रम, प्रेम, विवाह और संघर्ष स्त्री लेखन में सामाजिक यथार्थ से जुड़कर सामने आए। इससे साहित्य अधिक प्रामाणिक, मानवीय और जीवन-समीप बना। महिला लेखन ने यह स्पष्ट किया कि स्त्री का अनुभव समाज की संरचना से गहराई से जुड़ा हुआ है और उसे समझे बिना साहित्य अधूरा है।

महिला साहित्यकारों का लेखन पितृसत्तात्मक समाज की सीमाओं और रूढ़ियों को चुनौती देता है। उन्होंने समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा जैसे मूल्यों को साहित्य के केंद्र में रखा। स्त्री विमर्श के माध्यम से उन्होंने सामाजिक असमानताओं, लैंगिक भेदभाव और सत्ता-संबंधों पर प्रश्न उठाए। यह लेखन केवल विरोध या आक्रोश तक सीमित नहीं, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की आकांक्षा को भी अभिव्यक्त करता है। महत्वपूर्ण यह है कि महिला साहित्यकारों का योगदान केवल स्त्री जीवन तक सीमित नहीं रहा। उनके लेखन में समाज के व्यापक यथार्थ जैसे वर्गभेद, जातिगत असमानता, ग्रामीण जीवन, पारिवारिक संबंध और नैतिक प्रश्न भी समाहित हैं। इस प्रकार स्त्री लेखन ने हिंदी साहित्य को अधिक समावेशी और लोकतांत्रिक बनाया। यह साहित्य समाज की अंतरात्मा को झकझोरता है और पाठक को विचारशील बनने के लिए प्रेरित करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि, महिला साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य को केवल समृद्ध ही नहीं किया, बल्कि उसे समकालीन सामाजिक चेतना से जोड़ा। उनका लेखन भविष्य में भी सामाजिक परिवर्तन, मानवीय मूल्यों और लोकतांत्रिक चेतना को दिशा देता रहेगा। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान स्थायी, सार्थक और अविस्मरणीय है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. शर्मा अंकिता, महादेवी वर्मा और उनका साहित्य, पृ. क्र. 174
2. वही पृ. क्र. 176
3. चव्हाण प्रतीक, हिंदी साहित्य और मैत्रेयी पुष्पा, पृ. क्र. 23
4. वही पृ. क्र. 25
5. कांबळे आशा, कृष्णा सोबती का कथा साहित्य, पृ. क्र. 08

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

जब जंगल बोलता है : आदिवासी हिंदी कथा साहित्य में पर्यावरण विमर्श

प्रा. डॉ. सतीश दत्तात्रय पाटील

सहयोगी प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

धनाजी नाना महाविद्यालय, फैजपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध-आलेख में अस्मितामूलक आदिवासी हिंदी कथा साहित्य में निहित पर्यावरण विमर्श का समग्र अध्ययन किया गया है। आदिवासी जीवन, संस्कृति और प्रकृति के मध्य गहरे अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए यह आलेख यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास की वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करता है। हिंदी कथा साहित्य में आदिवासी अस्मिता, भूमि-अधिकार, जल-जंगल-ज़मीन, औद्योगिकीकरण के दुष्परिणाम तथा प्रतिरोध की चेतना को पर्यावरण विमर्श के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है।

मुख्य शब्द : आदिवासी साहित्य, अस्मिता, पर्यावरण विमर्श, हिंदी कथा साहित्य, प्रकृति, प्रतिरोध

1. भूमिका

भारतीय समाज की संरचना में आदिवासी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। आदिवासी समाज न केवल सांस्कृतिक विविधता का वाहक है, बल्कि प्रकृति-केन्द्रित जीवन-दृष्टि का प्रतिनिधि भी है। आदिवासी जीवन में प्रकृति केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन की सहचरी, पूज्य सत्ता और सांस्कृतिक आधार है।

हिंदी साहित्य में जब आदिवासी जीवन कथा या उपन्यास के रूप में अभिव्यक्त होता है, तब उसमें पर्यावरण एक सजीव पात्र के रूप में उपस्थित रहता है। इस संदर्भ में आदिवासी हिंदी कथा साहित्य पर्यावरण विमर्श का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरता है।

“आदिवासी जीवन में प्रकृति संस्कृति नहीं, बल्कि संस्कृति स्वयं प्रकृति है।”

— रामदयाल मुंडा

2. आदिवासी साहित्य : अवधारणा और अस्मिता

‘आदिवासी’ शब्द उन समुदायों का द्योतक है जो इस भूमि के मूल निवासी हैं और जिनका जीवन प्रकृति के साथ सहजीवन पर आधारित है। आदिवासी साहित्य मुख्यधारा के साहित्य से इस कारण भिन्न है कि वह शोषित-वंचित समुदाय की दृष्टि से लिखा गया साहित्य है।

अस्मिता-विमर्श के संदर्भ में आदिवासी साहित्य—

अपनी सांस्कृतिक पहचान की रक्षा करता है

बाहरी हस्तक्षेप का विरोध करता है

प्रकृति और मानव के सहजीवन को केंद्र में रखता है

"जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं, वह आदिवासी की आत्मा का विस्तार है।"

— महाश्वेता देवी

3. पर्यावरण विमर्श : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

पर्यावरण विमर्श आधुनिक साहित्यिक विमर्श का महत्वपूर्ण अंग है, जो प्रकृति-मानव संबंध, संसाधनों के दोहन, औद्योगिकीकरण और पारिस्थितिक असंतुलन पर प्रश्न उठाता है। आदिवासी साहित्य इस विमर्श को एक वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करता है, जहाँ विकास की अवधारणा विनाश पर आधारित नहीं होती।

"पर्यावरण विमर्श तब अधूरा है, जब उसमें आदिवासी दृष्टि शामिल न हो।"

— वंदना शिवा

4. आदिवासी जीवन और प्रकृति का सहजीवन

आदिवासी समाज में—

जंगल आजीविका का स्रोत है

नदी जीवनदायिनी माता है

भूमि अस्मिता का आधार है

हिंदी कथा साहित्य में यह सहजीवन गहरे भावनात्मक और सांस्कृतिक स्तर पर चित्रित हुआ है।

"नदी सूखी तो गाँव की हँसी सूख गई।"

यह पंक्ति पर्यावरणीय संकट और सामाजिक विघटन के संबंध को स्पष्ट करती है।

5. हिंदी कथा साहित्य में पर्यावरणीय चेतना

5.1 जंगल का मानवीकरण

आदिवासी कहानियों में जंगल एक जीवित पात्र के रूप में उपस्थित होता है। वह बोलता है, चेतावनी देता है और संरक्षण की माँग करता है।

"जंगल कटे तो आदिवासी की नस कटती है।"

5.2 भूमि और अस्मिता का प्रश्न

आदिवासी साहित्य में भूमि केवल संपत्ति नहीं, बल्कि अस्तित्व है।

“जमीन गई तो नाम गया, पहचान गई।”

खनन, बाँध और औद्योगिक परियोजनाएँ इस अस्मिता पर आघात करती हैं।

5.3 नदी और जल संकट

नदी को माँ, बहन और जीवन-स्रोत के रूप में देखा गया है। जल प्रदूषण और सूखती नदियाँ आदिवासी समाज के विनाश का संकेत बनती हैं।

6. स्त्री, प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण

आदिवासी स्त्री पात्र पर्यावरण संरक्षण की धुरी हैं। वे कृषि, जल, वन और औषधीय ज्ञान की संरक्षक हैं।

“जंगल बचा है तो बच्चों का भविष्य बचा है।”

यह कथन स्त्री, प्रकृति और भविष्य के अंतर्संबंध को उजागर करता है।

7. औद्योगिकीकरण, विकास और प्रतिरोध

आधुनिक विकास मॉडल ने आदिवासी समाज और पर्यावरण दोनों को संकट में डाला है। हिंदी कथा साहित्य इस शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ बनता है।

“आदिवासी साहित्य विकास की उस अवधारणा को चुनौती देता है जो विनाश पर आधारित है।”

— रमणिका गुप्ता

8. समकालीन संदर्भ और वैश्विक महत्व

आज जब जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास और प्राकृतिक संकट वैश्विक समस्या बन चुके हैं, आदिवासी साहित्य स्थानीय अनुभवों के माध्यम से वैश्विक समाधान प्रस्तुत करता है। यह साहित्य—

सतत विकास का मॉडल देता है

पर्यावरणीय नैतिकता सिखाता है

सामुदायिक चेतना को पुनर्स्थापित करता है

9. निष्कर्ष

अस्मितामूलक आदिवासी हिंदी कथा साहित्य में पर्यावरण विमर्श केवल साहित्यिक विषय नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिरोध की चेतना है। यह साहित्य—

प्रकृति और मानव के सहजीवन की वकालत करता है

आदिवासी अस्मिता और पर्यावरणीय अधिकारों को जोड़ता है

आधुनिक विकास की आलोचना करता है

सतत और मानवीय भविष्य की कल्पना प्रस्तुत करता है

इस प्रकार आदिवासी हिंदी कथा साहित्य पर्यावरण विमर्श को नई दिशा और गहराई प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. महाश्वेता देवी – अरण्येर अधिकार
2. रामदयाल मुंडा – आदिवासी दर्शन और जीवन दृष्टि
3. रमणिका गुप्ता – आदिवासी अस्मिता का संघर्ष
4. वीर भारत तलवार – आदिवासी साहित्य : स्वर और सरोकार
5. नामवर सिंह – दूसरी परंपरा की खोज
6. वंदना शिवा – स्टेइंग अलाइव
7. निर्मला जैन – साहित्य में पर्यावरण चेतना
8. अशोक वाजपेयी – प्रकृति और कविता
9. हंस, आलोचना, समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिकाएँ)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी के लघुकथा साहित्य में महिला लेखिकाओं की सृजनात्मकता

प्रोफेसर कल्पना राजेंद्र पाटिल

प्रताप महाविद्यालय(स्वशासी),अमलनेर

जिला -जलगांव (महाराष्ट्र)

आज समाज में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां पर महिलाएं पहुंच नहीं पाई हो जैसे-शैक्षणिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र वैद्यकीय क्षेत्र अभियांत्रिकी क्षेत्र, कानूनी क्षेत्र, बैंकिंग क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र, खेलकूद का क्षेत्र ,विज्ञापन का क्षेत्र ,संगीत का क्षेत्र, फिल्मी दुनिया ऐसे अनेक क्षेत्र है जहां महिला पहुंच न पाई हो इसी के साथ-साथ साहित्य भी एक क्षेत्र है जहां अनगिनत महिलाएं आज अनेक विधाओं में अपना लेखन कार्य सक्रिय रूप से कर रही है। महिलाएं किसी एक विधा पर अपने लेखनी न चलाकर अनेक विधाओं में वह अपना सृजन कार्य कर रही है ऐसी ही साहित्य की एक विधा है- लघुकथा | साहित्य के क्षेत्र में अनेक महिला लेखिकाएं अपना लेखन कार्य कर रही है; किंतु मैं यहां पर पवित्रा अग्रवाल, डॉ. ऋचा शर्मा, सुधा ओम ढींगरा,डॉ.शुभा श्रीवास्तव, किसलय पंचोली, शोभा रस्तोगी, नीता सिंह ,सुष्मिता पाठक आदि महिला लेखिकाओं की लघुकथाओं का परिचय देने वाली हूं जो साहित्य की अन्य विधाओं में भी अपना योगदान दे रही है और यह लघुकथाएं विशेष रूप से 2001 से आज तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है।

'वास्तुदोष' पवित्रा अग्रवाल की लघुकथा है जिसमे बताया गया है कि डागा जी जैसे लोग वास्तुदोष के कारण अपने अर्थात शुभ घर को छोडकर दुसरे घर मे निवास करने लग जाते है जब की वही वास्तुदोष किरायेदार (दुसरो) के लिये लाभदायक साबित होता है और घर मालिक वास्तुदोष को मन मे स्थान देने के कारण अपने जीवन से हाथ धो बैठते है |

'स्टेट्स' लघुकथा के माध्यम से समाज में व्याप्त भेदभाव एवं ऊंची तथा निम्न जाति पर भी प्रकाश डाला गया है कि, आज के इस दौर में मनुष्य का स्टेटस जाति से बढ़कर हो गया है, यह भी बताने का प्रयास इस लघुकथा के माध्यम से किया गया |

'जागरूकता' लघुकथा के माध्यम से लेखिका लिखती है कि जब टी.वी. पर प्रसारित कार्यक्रम को बच्चों ने देखा की छोटे बच्चों से काम नहीं करवाना चाहिए, तो उन्होंने भी काम पर जाना बंद कर दिया अर्थात उनमें भी जागरूकता आयी |

'कन्फ्यूजन' लघुकथा में आज भी बच्चों के मन में हिंदी राष्ट्रभाषा है या नहीं इसके बारे में कंफ्यूजन बना हुआ और स्वाभाविक है|

बेटे ने जब मां को टी.वी. देखते हुए पाया तो वह भूनभूनाया किंतु दूसरी तरफ बहू ने जब यह वाक्य कहा कि" मम्मी जी कहीं और तो जाती नहीं है। न ही यहां किसी को जानती है----उनके मनोरंजन का यही तो एक साधन है।" 1 इन वाक्यों को सुनकर मां को लगा यह मेरी बहू नहीं बेटी बोल रही है। 'बहू या बेटी' इस लघुकथा के माध्यम से एक समझदार बहू बेटी से भी बढ़कर होती है, इसका संकेत मिलता है।

'सूतक' लघुकथा में लेखिका ने रमा इस पात्र के माध्यम से यह संकेत दिया है कि पुराने विचारों को त्यागना होगा l तभी आज के समय में सभी कार्य समय पर तथा सुचारु ढंग से संभव हो सकते हैं।

'हमारे लिए कौन' लघुकथा इस सच्चाई की और हमारा ध्यान आकृष्ट करती है कि हर कोई अपना मतलब सीधा करना चाहता है जैसे इस लघुकथा की बेटी का यह वाक्य "मां एक खुशखबरी है आप फिर नानी बनने वाली है आपको 5-6 महीने के लिए यहां आना पड़ेगा |" इन वाक्यों को सुनकर मां आने के लिए मना करती है क्योंकि उन्हें पता है कि बुढ़ापे में कोई भी उनका साथ नहीं देगा | उन्हें अपनी नैय्या स्वयं पार करनी होगी |

'पर क्या करूं' पवित्र अग्रवाल जी की लघुकथा जिस ससुराल में चींटी को मारना पाप समझा जाता है वही सास, बहू को पोते के लिए गर्भ में पल रही बेटी को मारने में पाप नहीं समझती और बहू से कहती है –"सब सोच के ही तो कह रही हूं कि किसी को बताना नहीं– – मैं जानती हूं यह सब ठीक नहीं पर क्या करूं? " 2

'अगर मगर' लघुकथा में पवित्रा अग्रवाल जी ने एक सामान्य व्यक्ति को अच्छी सीख दी है कि, हम दो हमारे दो ही काफी है | पिताजी कहते हैं इसलिए एक के बाद एक बच्चे को जन्म दिलवाकर उनकी अच्छी परवरिश ना करना सही नहीं है ; इस बात को वह सामान्य व्यक्ति भी मान्य कर लेता है |

'प्यार पर प्रश्न चिन्ह' लघुकथा में यह दर्शाया गया है कि मां चाहे अपने बेटे को कितना ही भला बुरा क्यों ना कहे लेकिन वह उससे मिलना नहीं छोड़ सकता। चाहे पत्नी प्यार पर क्यों ना प्रश्न चिन्ह लगा दे।

'तूने क्या दिया' लघुकथा के माध्यम से जो प्रश्न एक पति ने पत्नी के सामने रखे हैं वह अत्यंत महत्वपूर्ण है हमेशा एक औरत दूसरे औरत से अपनी सास के बारे में बातें करती है कि उसने हमें क्या दिया किंतु कभी यह नहीं बोलती कि हमने अपनी सास को और ननंद को क्या दिया है |

'छोटी जाति बड़ी जाति' इस लघुकथा के माध्यम से यह तथ्य सामने आता है कि आज कामवाली बाई भी अपनी ही जाति के यहां काम करना पसंद करती है अगर उससे छोटी जाति का घर मिला तो वह वहां काम नहीं करना चाहती।

'शुभ दिन' पवित्रा अग्रवाल जी की लघुकथा है जिसमें बताया गया है कि हर एक दिन शुभ होता है अगर हम शुभ और अशुभ के पीछे पड़े रहे तो रमेश जैसे व्यक्ति की मिली मिलाई नौकरी भी दांव पर लग सकती ह

सुधा ओम ढींगरा की लघुकथा 'अनुत्तरित' के माध्यम से लेखिका बताना चाहती है, कि सुमित जो अन्य देश में नौकरी कर रहा था जैसे ही उसने कान लगाकर बॉस की फोन पर चलने वाली बातचीत को सुना तो वह अनुत्रित हो गया क्योंकि फोन पर कहा जा रहा था- "सर हटा दें इस पद को | यह बड़ी महंगी पोजीशन है, कंपनी के खर्चे बहुत बढ़ जायेंगे और काम तो सुमित से करवा लेंगे, मेरे पर छोड़िए |" 3 इस वाक्य को सुनकर सुमित आश्चर्यचकित रह जाता है |

'अनुसरण' लघुकथा में मां अपने बेटे के व्यवहार को देखकर परेशान हो जाती है और ऐसा किसी भी माँ का परेशान होना स्वाभाविक है और जब वह अपने पति से इस बारे में बात करती है तो पति टाल देता है लेकिन माँ एक दिन अचानक बच्चे के कमरे में चले जाती है और तब उसे पता चलता है कि बच्चा जो साइट देख रहा था वह बहुत ही बुरी थी जब मां ने बच्चों से कहा की अपना होमवर्क करो यह साइट नहीं देखते तब बच्चे ने जो उत्तर दिया " माम, डैड कई बार आधी रात को उठकर यह साइट्स देखते हैं तो मैं दिन में क्यों नहीं देख सकता?" 4 उससे पता चलता है कि बच्चे बड़ों का अनुसरण करते हैं इसलिए उन्हें भी दक्ष रहना चाहिए अर्थात सभ्य आचरण करना चाहिए |

'मर्यादा' लघुकथा में एक छोटी पोती अपनी दादी को समझाते हुए कहती है-" आप किस मर्यादा की बात करती हैं .....मर्यादा सिर्फ पुरुष की ही नहीं, औरत की भी होती है .....|" 5 इस बात को बताती हुई समाज में नारी की स्थिति को सुधारने की पहल करती हुई दिखाई देती है जो अत्यंत आवश्यक है एक औरत जो दादी है और दूसरी औरत जो मां है फिर भी दोनों एक दूसरे के सम्मान को नहीं बचा पाती ऐसे समय बेटियों को माँ के सम्मान को बचाना आवश्यक हो जाता है।

'उपरांत' इस लघुकथा के माध्यम से फूलों के जीवन को दर्शाया गया है कि फूल सभी को खुशी देते हैं लेकिन उनका जीवन क्षणभंगुर होता है, इसीलिए वह जो जीवन मिला है उसे जी लेना चाहते हैं | एक फूल दूसरे फूल से कहता है "बच गए भाई, आज तो झूम लें कल तो हमारी पंखुड़ियों में बिखरना ही है।" 6

डॉ .ऋचा शर्मा की लघुकथा 'संवेदनहीनता' उनके द्वारा प्रत्यक्ष देखी गई घटना को प्रस्तुत करती है | हमें ऐसा लगता है कि सामान्य लोग अपने बच्चों को ज्यादा महत्व देते हैं किंतु नहीं बल्कि उनमें भी संवेदनहीनता दिखाई देती है जिसे लघुकथा को पढ़ने से ज्ञात होता है |जहां बोरियों में भरे सामान को महत्व दिया जा रहा था और बच्चा बोरियों के नीचे दबा बिल-बिला रहा था, किंतु कोई भी उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था।

'मां के गीत' के माध्यम से लेखिका ने मां की स्मृतियों को उजागर किया है। मां का बेटों के प्रति प्यार, बुढ़ापे के कारण लाचार होती मां को भी। लघुकथा को पढ़ने के बाद लगता है कि मां को व्यक्त कर पाना आसान कार्य नहीं है।

'नॉट रीचेबल' समाज में बेटे और बहू के व्यवहार के कारण पिता का फोन नोट रीचेबल हो जाता है |

'साजिश' लघुकथा में आज के बूढ़े होते माता-पिता की स्थिति को दर्शाया गया है जो अपने बच्चों के लिए तो जवानी में बहुत कुछ करते हैं किंतु बुढ़ापे में जब कर्तव्य बच्चों के हिस्से में जाता है तो वह उतना न्याय नहीं दे पाते और इसीलिए शुक्ला जैसे दांपत्य स्वाभिमान से जीते हैं और अपने दर्द को कभी किसी से नहीं कहते |

'दुख में सुख' ऋचा शर्मा द्वारा लिखित लघुकथा है जिसमें उन्होंने मां की वृद्धावस्था की ओर संकेत किया है कि इस अवस्था में मनुष्य की स्मृति कमजोर होने लगती है । मनुष्य कभी-कभी कुछ बातें भूलने लग जाता है, लेकिन इस भूलने में भी मां को सुख मिलता है क्योंकि उनका कहना था- "बेटी खुश रहा करों । बातों को भूलने की कोशिश किया करो । हम औरतों के लिए बहुत जरूरी है यह । जब से हर बात भूलने लगी हूं मन बड़ा शांत है । किसी की तीखी कड़वी बात थोड़ी देर असर करती है, फिर कुछ याद ही नहीं रहता । किसने क्या कहा, क्यों कहा, क्या ताना मारा कुछ नहीं ।" 7

'गणेश चौथ' यह लघुकथा समाज में व्याप्त रूढ़ि परंपराओं को हमारे सामने रखती है किंतु लेखिका बताना चाहती है कि रूढ़ि परंपराएं मनुष्य के द्वारा ही बनाई गई है और उन्हें नया रुख देने का प्रयास हमारे द्वारा ही हो सकता है और ऐसा ही नया रुख 'गणेश चौथ' के दिन आस्था और अदिति की मां दोनों की आरती उतारकर अक्षत के दाना लगाकर टीका लगाकर करती है | जो आज के समाज के लिए एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करती है | साथ ही बेटा-बेटी एक समान इस ओर भी ध्यान आकर्षित करती है |

'रिश्तो की पहेली' किसलय पंचोली की लघुकथा में रिश्तो को अत्यंत सहजता के साथ पहेली के माध्यम से मां के द्वारा अपनी 10 वर्ष की बेटी चारु को जिस तरह से समझाया गया है; वह अत्यंत ही मार्मिक एवं रिश्तों को समझने में सहायक होता है l जैसे -चारु के द्वारा पूछा गया प्रश्न ?

"मम्मी, मेरे दादाजी ने तीन-तीन शादियां की थी क्या?

दूसरा प्रश्न -"जचकी मीन्स"

"मतलब डिलीवरी,चाइल्ड बर्थ. फिर उनकी दूसरी शादी हुई, ये थी रामू बाई जो टीबी की बीमारी में गुजर गई । अब जो दादी है, उनका नाम है सरजू बाई और इस तरह वे दादा जी की तीसरी पत्नी हुई ।" 8

आज बच्चों के मन में कौन-कौन से प्रश्न है उन्हें जान पाना आज के माता-पिता के लिए अत्यंत कठिन है समय के साथ उनके मन में अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं उन्हें समझना समर्पक उत्तर देना बहुत कठिन, किंतु नामुमकिन नहीं है |

डॉ.शुभा श्रीवास्तव की लघुकथा 'टूटे बटन' समाज के व्यवहार की ओर ध्यान आकर्षित करती है और लिखे गए वाक्य उसे पूर्णता प्रदान करते हैं जैसे -"राधा के मस्तिष्क में प्रश्न कौंध उठा कि महत्वपूर्ण क्या है? पांच मीटर का सलवार कुर्ता, टूटा बटन या फिर निगाहें ।" 9

'सहानुभूति' इस लघुकथा की लेखिका नीता सिंह है | इसमें एक चूहे की छोटी सी कथा के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है की बच्चे जब चूहे की हरकत को सुनते हैं तो उन्हें बड़ी खुशी होती है किंतु जैसे ही उन्हें पता चलता है कि चूहे को मारा गया तो उनके चेहरे की खुशी गायब हो जाती है इससे पता चलता है कि मनुष्य में प्राणियों के प्रति सहानुभूति का होना अत्यंत आवश्यक है |

'बीमार' सुष्मिता पाठक की लघुकथा वृद्धों की मानसिक स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि उन्हें एकांत या सुनापन नहीं रिश्तो की गर्माहट या गीलापन चाहिए, इसीलिए वृध्द आपरेशन के बाद भी अस्पताल से स्वस्थ होकर नहीं जाना चाहता बल्कि बीमार रहकर कुछ और दिन प्यार पाना चाहता है इसीलिए वह डॉक्टर से कहता है- "घर के उसे एकांकी अपेक्षित दिनचर्या से आपका अस्पताल कितना सुखद है ....सोचता हूं, कुछ दिन और बीमार रहता |" 10

मानवीय धर्म अर्थात पड़ोसी धर्म महत्पूर्ण होता है हम चाहे रात को नींद खराब ना भी करना चाहे पर हमारा आंतरिक मन हमें मानवता धर्म निभाने की बात कहता है यही बात शोभा रस्तोगी की लघुकथा 'आधी रात' में एक पंजाबी परिवार के पति-पत्नी के माध्यम से बताने का प्रयास लघुकथाकार करती है और पड़ोसी डॉक्टर का कर्तव्य वह निभाते हैं |

इस प्रकार अंत में कहा जा सकता है कि लघुकथा इस विधा का वास्तविक विकास आठवीं-नौवी शताब्दी से ही देखने को मिलता है जहां अनेक पत्र पत्रिकाओं ने इस विधा के प्रचार प्रसार में योगदान दिया है और इसमें अनेक लेखक उभरकर सामने आए हैं, किंतु उसी के साथ-साथ अनेक महिला लेखिकाएं भी इस विधा में अपना योगदान दे रही है यहां पर मैंने कुछ लेखिकाओं की लघुकथाओं को लिया है | इन लघुकथाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है और लेखक जो कुछ समाज में घटित होता है उसे देखते ही नहीं है तो उस पर सामाजिक चिंतन भी करते है |

इन महिला लेखिकाओं द्वारा लिखित लघुकथाओं को पढ़ने से ज्ञात हुआ कि इन लघुकथाओं के शीर्षक अर्थात विषय भिन्न-भिन्न होने के बावजूद उनमें सामाजिक चिंतन मुख्य रूप से उभर कर सामने आता है | समाज के सामने जो नव-नवीन समस्याएं आ रही है उन समस्याओं की ओर भी इन महिला लघुकथाकारों ने हमारा ध्यान न केवल आकर्षित किया है बल्कि उनका समाधान भी देने का प्रयास किया है | लघुकथाकारों ने अत्यंत सरल,सहज भाषा का प्रयोग किया है और यह लघुकथाएं मानव मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ती है, सोचने को बाध्य करती है l हर वर्ग का पाठक इसे पढ़ने में सहजता महसूस करता है ।इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी कि आज के व्यस्तता के युग में यह विधा निश्चित रूप से अपना प्रभाव छोड़ने में सफल हो रही है ।

सन्दर्भ :

1. पवित्रा अग्रवाल : समाचार पत्र दैनिक जन टाइम्स : 10 जनवरी 2026
2. पवित्र अग्रवाल : शुभ तारीख अप्रैल 2003 ,पृष्ठ 11
3. सुधा ओम ढींगरा : वाङ्मय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका : अप्रैल 2013 ,पृष्ठ 73
4. सुधा ओम ढींगरा : वाङ्मय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका :अप्रैल 2013, पृष्ठ 74
5. सुधा ओम ढींगरा : वाङ्मय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका : अप्रैल 2013 ,पृष्ठ 75
6. सुधा ओम ढींगरा ; वाङ्मय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका : अप्रैल 2013 ,पृष्ठ 75
7. ऋचा शर्मा : हंस, अगस्त 2011,पृष्ठ 126
8. किसलय पंचोली : कथादेश, मई 2008,पृष्ठ 26
9. डॉ.शुभा श्रीवास्तव : कथादेश जून 2011 पृष्ठ 16
10. सुष्मिता पाठक :कथा देश मई 2008 पृष्ठ 28

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक मूल्य और हिंदी अम्बेडकवादी(दलित)कविता : एक समालोचनात्मक अध्ययन

प्रोफेसर(डॉ) महेंद्रकुमार रामचंद्र वाढे

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र

एसएसव्हीपीएस भाऊसाहेब ना.स.पाटील साहित्य एवं मुफिमुअ वाणिज्य महाविद्यालय, धुले.(महाराष्ट्र)

भारतीय संविधान सामाजिक परिवर्तन का वह दस्तावेज़ है, जो समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल्यों के माध्यम से एक लोकतांत्रिक एवं मानवीय समाज की परिकल्पना करता है। हिंदी दलित साहित्य इन्हीं संवैधानिक मूल्यों की सामाजिक अनुभूति और जमीनी यथार्थ की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। यह शोध-पत्र हिंदी दलित साहित्य और संवैधानिक मूल्यों के बीच अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि दलित साहित्य संविधान की आत्मा का सामाजिक और वैचारिक विस्तार है। दलित साहित्य समाज-सापेक्ष है, क्योंकि इसमें मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि माना जाता है। इसी कारण परंपरागत भारतीय समाज की संरचना वर्णाधारित व्यवस्था का विरोध करने का काम दलित साहित्य कर रहा है। जाति व्यवस्था, पितृसत्ता के साथ धर्म, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, अर्थ और राजनीति की एकाधिकारता का समर्थन करने वाली ब्राम्हणवादी मानसिकता के विरोध में दलित साहित्य अपनी अभिव्यक्ति अधिक धारदार करता है। यह स्पष्ट है कि दलित साहित्य समाज में किसी भी वर्ग विशेष, जाति-प्रजाति अथवा वंश-विशेष की धार्मिक, दैवीय, वंशानुगत या अन्य किसी भी आधार पर श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता। प्रस्तुत आलेख भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में समतामूलक सामाजिक उद्देश्यों के प्रति परिवर्तनवादी महान सुधारकों की विचारधारा को केंद्र में रखकर हिंदी दलित कविता में अभिव्यक्त संवैधानिक न्याय, समता, स्वत्रंतता, बंधुता, मानविय मूल्य और धर्मनिरपेक्षता के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, वैचारिक और उद्देश्यपरक समालोचनात्मक मूल्यांकन करता है।

कुंजी शब्द (Keywords) : संवैधानिक मूल्य, शोषक, दलित साहित्य, अंबेडकरवाद, सामाजिक न्याय, समता, स्वतंत्रता, बंधुता, मानव गरिमा, धर्मनिरपेक्षता आदि।

भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना वर्ण-व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसने धार्मिक एवं सामाजिक असमानता और बहिष्करण को स्थायी रूप प्रदान किया। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने इस सामाजिक विषमता को समाप्त करने हेतु विधिक एवं नैतिक आधार प्रस्तुत किया। इसके बावजूद भी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर दलितों, पिछडों की स्थिती कमजोर ही रही है। धार्मिक, सामाजिक स्तर पर होने वाले अत्याचार संवैधानिक अधिकारों के कारण कम जरूर हुए है किन्तु छुआछुत और अत्याचारों की निरंतरता अभी भी बरकरार है। इसी सामाजिक विषमता के विरोध में दलित साहित्य विद्रोह और संघर्ष की भूमी पर अपने वैचारिक उद्देश्य की परिपूर्णता हेतु नव विमर्श के आंदोलन को लेकर खडा हुआ। दलित साहित्य के उद्देश्य को लेकर वरिष्ठ

लेखक मोहनदास नैमिशराय कहते हैं कि 'शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुत्व तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।'[1] दलित साहित्य में संवैधानिक मूल्यों का जो प्रतिबिंब है उसे अधोरेखित करते हुएं ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में कहते हैं कि, "दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है।" [2]

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संवैधानिक अधिकारों और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप दलित समाज की स्थिति गाँवों में अपेक्षाकृत सुदृढ़ होती दिखाई देती है। बावजूद सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानताएँ और भेदभाव पूर्णतः समाप्त नहीं हुए हैं। इन अंतर्विरोधों का सूक्ष्म और यथार्थपरक मूल्यांकन दलित लेखकों ने अपनी कथा, कविता और उपन्यास के साथ हि आत्मकथा जैसी महत्वपूर्ण विधा के माध्यम से किया है। जो ऊँच-नीच की जड़ जमाई हुई मानसिकता के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक हथियार है। यह अमानवीय जड़ताओं से मुक्ति का मार्ग सुझाता है, धर्म और जाति के नाम पर स्थापित सांस्कृतिक आतंक को चुनौती देता है और पाखंड व प्रपंच के आवरण को उघाड़कर सामाजिक यथार्थ को सामने लाता है।

दलित साहित्य : अवधारणा और वैचारिकी - दलित साहित्य आधुनिक हिंदी साहित्य की वह सशक्त धारा है, जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण के शिकार शोषित, वंचित, पिछडे समाज के अनुभवों, संघर्षों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है। यह साहित्य केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और परिवर्तन का वैचारिक आंदोलन है। दलित साहित्य अनुभव-केन्द्रित साहित्य है।

सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर दलित शब्द का अर्थ है—ऐसा वर्ग जो वर्ण, धर्म, समाज और आर्थिक स्थितियों से सभी स्तरों पर दबा हुआ, कुचला हुआ, शोषित और वंचित है। इस समाज की वेदना को वाणी देने वाला जो साहित्य है, वह दलित साहित्य है। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार, "दलित साहित्य वह है जिसमें दलित जीवन के यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण हो। यह साहित्य परंपरागत सौंदर्यशास्त्र को अस्वीकार करते हुए अनुभव, संघर्ष और चेतना को साहित्यिक मूल्य मानता है। इसकी वैचारिक आधारभूमि अंबेडकरवाद है, जो तर्क, समानता और मानव गरिमा पर आधारित है।" [3] लेखक कँवल भारती का कथन है कि, "दलित साहित्य वह है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को शब्दबद्ध किया है। अपने जीवन में उन्होंने जिस यातना से गुजरा उसका यथार्थ अंकन दलित साहित्य है। इस दृष्टि से यह जीवन का साहित्य है, जिजीविषा का साहित्य है।"[4] भारतीय दलित साहित्य का सुत्रपात मराठी दलित साहित्य से हुआ है। मराठी के प्रथम दलित लेखक बाबूराव बागुल के अनुसार "दलित साहित्य वह बन है, जो वर्ग-व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से तबद्ध है।"[5]

दलित साहित्य की मूलतः वैचारिकी का आधार बुध्द, चार्वाक, कबीर, रैदास, विद्रोही संत परंपरा, म. फुले, क्रांतिज्योती सावित्रीबाई फुले, रामास्वामी नायकर और दलित पैंथर आंदोलन तो है ही किन्तु तात्कालिक वैचारिकी आंबेडकरवादी विचारधारा ही है, जो सामाजिक लोकतंत्र की संकल्पना पर आधारित है। इसी कारण दलित साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की जो अभिव्यक्ति है वह केवल पीड़ा और आक्रोश की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह भारतीय संविधान में निहित मूल्यों न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का साहित्यिक रूपांतरण की अभिव्यक्ति है। डॉ. भीमराव अंबेडकर की वैचारिकी से प्रेरित दलित साहित्य संविधान को सामाजिक मुक्ति के दस्तावेज के रूप में देखता है और उसे जनजीवन से जोड़ता है। हिंदी दलित कविता में अभिव्यक्त संवैधानिक मूल्यों का अध्ययन निम्न बिंदु पर कर सकते हैं -

1. न्याय की अभिव्यक्ति - संविधान का मूल लक्ष्य सामाजिक न्याय है, जो दलित साहित्य में व्यापक रूप से प्रतिध्वनित होता है। हिंदी दलित कविता में न्याय की मांग को नैतिक नहीं, बल्कि अधिकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । यह कविता अपनी पीडा के साथ ही दलितों के शिक्षा, सम्मान और समान अवसर की आकांक्षा को अधोरेखित करती है। आठवे दशक के बाद हिंदी दलित कविता में सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष की धार और अधिक नुकीली होती गई। 'इसी सदी ने सबसे नये ऊर्जावान कवि पैदा किये। ओमप्रकाश वाल्मीकि और श्यौराज सिंह 'बेचैन' के नये कविता-संग्रह भी प्रकाशित हुए और मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, ईश कुमार गंगानिया, सुदेश तनवर, असंग घोष, सी.बी. भारती और सूरजपाल चौहान जैसे कई नये कवि भी अस्तित्व में आये। इसी दशक ने हमें मलखान सिंह जैसा सशक्त दलित कवि भी दिया और इसी दशक में दलित कविता का स्त्रीवादी स्वर भी उभरकर आया, जो एक बड़ी उपलब्धि है।'[6]

संविधान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का वादा करता है। दलित कविता अन्यायपूर्ण सामाजिक ढाँचे का पर्दाफाश करती है ।वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था पर तीखा प्रश्न उठाना एक रचनाकार का कर्म है, वही कर्म दलित कवि सतही रूप में कर रहे हैं। हिदीं दलित साहित्य के अग्रणी कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि,

मुँह चिढ़ाते हैं।

जब तक रामेसरी के हाथ में

खड़ाँग-खाँग घिसटती लौह-गाड़ी है

मेरे देश का लोकतंत्र

एक गाली है! [7]

गावों में बसे दलितों के साथ होने वाले अन्याय, अत्याचारों में धनिकों के साथ सरकारी पटवारी की भागिदारी के सच को उजागर कर दलित मजदूर, छोटे किसान की न्याय की दरख्तात को लिखते हुएं श्यौराज सिंह कहते हैं कि –

अब उसके खेत का
टुकड़ा कुतरने में लगा है भूमिधर
उसकी बरबादी का
जिम्मेदार पटवारी भी है।
वह मजूरी गांव में देखे
या भागे शहर को। [8]

यह स्पष्ट है कि हिंदी दलित कविता में न्याय एक सक्रिय, संघर्षशील और परिवर्तनकारी अवधारणा है। यह कविता सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देती है और मनुष्य की गरिमा को केंद्र में रखकर एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना प्रस्तुत करती है।

2. समानता का मूल्य - संविधान के अनुच्छेद 14 से18 में निहित समानता का सिद्धांत दलित साहित्य की केंद्रीय चेतना है। "समता स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना दलित कविताओं का मूल स्वर है, जो फुले-आंबेडकरवादी चिंतन एवं विचारधारा पर आधारित है। एक अर्थ में दलित कविता, अतीत और वर्तमान की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आलोचना भी है। वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों वर्ष के इतिहास को प्रश्नांकित कर दलित कविता ने साहित्य की अवधारणा और सौंदर्यबोध के मानदंडों को अर्थांतरित कर नवीन स्वरूप दिया है। आंबेडकरवादी दर्शन एवं विचारधारा से दलित चेतना का जन्म हुआ है।" दलित कविता जन्म आधारित असमानता का विरोध, छुआछूत, जातिगत भेदभाव और सामाजिक ऊँच-नीच पर तीखा प्रहार करती है । समानता को सामाजिक व्यवहार में लागू करने की मांग करते हुएं मोहनदास नैमिशराय अपनी कविता 'झाड़ू और कलम में सामनता के मूल्यों का प्रतिबिंबित करते हैं-

कल मेरे हाथ में झाड़ू था
आज कलम
कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गंदगी हटाता था
आज कलम से। [9]

संविधान सभी नागरिकों को समानता का अधिकार देता है। इसी आधारपर दलित कविता जाति-आधारित भेदभाव और ऊँच-नीच की व्यवस्था का तीव्र प्रतिरोध करती है। कविताओं में यह प्रश्न उभरता है कि जब संविधान सबको

बराबरी देता है, तो समाज में जातिगत असमानता क्यों बनी हुई है? जो संवैधानिक एवं सामाजिक समता के विरुद्ध है, दलित कविता उसे तोडकर समानता की माँग करती है।

पर मरना कायरों का काम है

अगली पीढ़ियों की मुक्ति के लिए

समाज की शृंखलाओं को तोड़ने के लिए

समान ओहदे के साथ जीने के लिए। [10]

भारतीय सामाज का यह यथार्थ है कि जाति शोषण को बढावा देती है, इसीलिए दलित कविता जाति को "अमानवीय व्यवस्था" के रूप में निरूपित करते हुएं सामाजिक समता के मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयासरत रहती है।

3. स्वतंत्रता की चेतना -संविधान प्रदत्त विचार, अभिव्यक्ति, जीवन की गरिमा आदि स्वतंत्रताएँ दलित साहित्य में संघर्षशील रूप में उभरती हैं। इसमें भय और मौन से मुक्ति की आकांक्षा है, विचार और आत्म-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है और दासता और मानसिक गुलामी के विरुद्ध विद्रोह है। मलखान सिंह मुझे गुस्सा आता है कवितामें लिखते हैं,

"आज/ आजादी की आधी सदी के बाद भी/

हम गुलाम हैं/ पैदायशी गुलाम हैं/

जिनका धर्म चाकरी है/

और बेअदबी पर/ कंटीले डंडे की चोट/

थूथड़ पर खाना है या/ भूखा मरना है।" [11]

इसी तरह नयी मुक्ति का आगाज करते हुएं लक्ष्मीनारायण सुधारक लिखते हैं कि,

आदमी को आदमी से जोड़ दो

इस नये युग को नया अब मोड़ दो

रूढ़ियां प्रचलित पुरानी तोड़ दो

इस नए युग को नया अब मोड़ दो। [12]

मूलतः दलित लेखन में "चुप्पी तोड़ना" स्वयं स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाता है। दलित कविता इसी स्वतंत्रता की खोज करते हुएं चुप्पी तोड़ने का साहस देती है, जो शोषण के विरुद्ध बोलने और लिखने की शक्ति प्रदान करती है। कवि 'मूक दलित' की छवि तोड़कर एक ऐसे व्यक्ति को प्रस्तुत करते हैं, जो अपने अधिकारों से परिचित है और अन्याय के सामने खड़ा होता है। नये सोच की कवयित्री सुनीता अपनी संवैधानिक स्वतंत्रता को चाहते हुएं लिखती है कि –

मैं लिखना चाहती हूँ :

लालक़िला, भाषण और आज़ादी

मेरी पूरी पीढ़ियाँ सड़ रही हैं

गाय की खाल में

हम भूखे पेट

उठा रहे हैं तुम्हारा मल। [13]

हिंदी दलित कविता में स्वतंत्रता का अर्थ सीमित नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक और मानवीय मुक्ति की समग्र चेतना है। दलित कविता सदियों की दासता, जातिगत उत्पीड़न और अपमान से मुक्ति की आकांक्षा को स्वर देती है। साथ ही यह कविता स्वतंत्रता की चेतना मानवीय गरिमा, सामाजिक समानता और वैचारिक मुक्ति की चेतना है। यह कविता न केवल पीड़ा का दस्तावेज़ है, बल्कि परिवर्तन का घोषणापत्र भी है।

4. बंधुत्व और मानवीय गरिमा - भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बंधुत्व को व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता से जोड़ा गया है। सामाजिक समता की आकांक्षा, घृणा और बहिष्कार के स्थान पर मानवीय संबंधों की स्थापना और आत्मसम्मान और अस्मिता की पुनर्स्थापना के लिए हिंदी दलित कविता निरंतर रूप से सजग है। इसीलिए दलित साहित्य बंधुत्व को करुणा नहीं, समान नागरिकता के रूप में देखता है। शोषण के धरातल पर शोषितों का एक वर्ग है जो पीडा की समानता के स्तर पर बंधुत्व के रूप में एक साथ है। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक ही पंक्ति में इसे समझाते हैं –

कितने मासूम थे वे

मेरे पुरखे

जो इंसान थे

लेकिन अछूत थे! [14]

वहि मानवीय गरिमा को बचाने के लिए लोकतंत्र के होने की दरकार करते हुएं बी गोपाल रेड्डी लिखते हैं -

लोकतंत्र के सूर्योदय से

जनता के राजनीतिक अधिकारों से

ताकिक औ' वैज्ञानिक युग से

मूढ़ाचार का तिमिर

बिखर कर हो जाएगा तितर-बितर,

मानवता के दुर्बल विश्वास मिटेंगे

जनता की समानता वांछनीय है,

वही सर्वोदय है, अन्त्योदय है

वही संपूर्ण क्रांति का नवोदय है। [15]

मनुष्य को मनुष्य के रूप में अभिव्यक्त करते हुएं दलित कविता शोषण, असमानता और भेदभाव के विरोध में आक्रोश व्यक्त करते हुए, भाईचारा और मानवीय गरिमा के लिए सभी शोषितों को एकजुट होने और क्रांति लाने का संदेश देती है ।

5. धर्मनिरपेक्षता और तर्कशीलता - हिंदी दलित कविता में धर्मनिरपेक्षता और तर्कशीलता केवल साहित्यिक प्रवृत्तियाँ नहीं, बल्कि मुक्ति-संघर्ष की चेतना हैं। यह कविता धर्म के मानवीय रूप को स्वीकार करती है और अमानवीय रूप का अस्वीकार। तर्कशीलता के माध्यम से यह समाज को सोचने, प्रश्न करने और परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाती है। इसी कारण हिंदी दलित कविता समकालीन साहित्य में नैतिक साहस और वैचारिक स्पष्टता का प्रतीक बन गई है। इसीलिए दलित कविता धार्मिक आडंबरों और कर्मकांडों की के विरोध में खडी होकर मानवतावादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन करती है। साथ ही धर्म को सामाजिक शोषण के औज़ार के रूप में प्रयुक्त होने का विरोध करती है। कवि असंगघोष की कविता धर्म ! मैं तुम्हें तिलांजलि देता हूँ इसी विचार का प्रतिपादन है।

धर्म!

तुम भी एक हो

मेरे पैदा होने के बाद

जाति के साथ.....

चिपकने वाले। तुम्हें क्यों न छोड़ूँ

लो

मैं तुम्हें तिलांजलि देता हूँ। [16]

यहाँ धर्म सामाजिक समानता का माध्यम नहीं, बल्कि बहिष्कार का उपकरण बनता है। जिसका कवि तर्कसंगत विरोध करता है। वर्तमान समय में जब धार्मिक पहचान राजनीति और समाज को विभाजित कर रही है, ऐसे समय में हिंदी दलित कविताओं में संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता की सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति हो रही हैं। दलित कविता सामाजिक न्याय की मांग को धार्मिक सीमाओं से बाहर ले जाकर मानवीय और लोकतांत्रिक धरातल पर स्थापित कर रही हैं।

6. लोकतांत्रिक चेतना और अधिकार-बोध - दलित साहित्य लोकतंत्र को केवल राजनीतिक व्यवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक लोकतंत्र के रूप में प्रस्तुत करता है। इसीलिए दलित व्यक्ति अधिकारों के प्रति जागरूकता और संविधान को परिवर्तन का साधन मानता है। उसकी इसी सोच को दलित कविता बल देती है। पराग पावन लिखते हैं कि -

इसी देश में रहेंगे बुद्ध

अपनी हथेली पर अपना सिर लिए हुए

किसी बंदूक़ किसी तोप से रोकी न जा सकेगी

कबीर के तर्कों की सेना

किसी भी राजसिंहासन से ठोस निकलेंगे

मीरा के इनकार के ऐतिहासिक फ़ैसले

और रैदास के कठवत में भर दिए जाएँगे रंग

जिससे बनाया जाएगा भारत का सबसे मज़बूत नक़्शा। [17]

दलित कविता में संवैधानिक मूल्यों की अभिव्यक्ति उसे एक संविधान-सम्मत, लोकतांत्रिक और परिवर्तनकारी साहित्य बनाती है। यह साहित्य संविधान को केवल कानूनी ग्रंथ नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति का औज़ार मानते हुए न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को जीवन-व्यवहार में स्थापित करने के लिए संघर्ष करता है। इसी कारण

दलित साहित्य भारतीय लोकतंत्र की आत्मा का सशक्त साहित्यिक प्रतिरूप है। यह स्पष्ट है कि हिंदी दलित कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि भारतीय संविधान के मूल्यों की काव्यात्मक प्रतिष्ठा है।

समता के बिना लोकतंत्र नहीं,

स्वतंत्रता के बिना मनुष्यता नहीं,

न्याय के बिना समाज नहीं,

और बंधुत्व के बिना राष्ट्र नहीं।

इस प्रकार हिंदी दलित कविता भारतीय संविधान की आत्मा को जन-जन की आवाज़ बनाकर सामाजिक परिवर्तन की सशक्त प्रक्रिया में परिवर्तित करती है। यह भी स्पष्ट है कि दलित साहित्य और संवैधानिक मूल्य परस्पर पूरक हैं। दलित कविता संविधान की आत्मा को सामाजिक यथार्थ में मूर्त करता है। यह न केवल उत्पीड़ित समुदाय की आवाज़ है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक और मानवीय समाज की सांस्कृतिक परियोजना भी है।

वस्तुतः हिंदी दलित कविता ही नही अपितु समग्र दलित साहित्य मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का संघर्ष है। जो संवैधानिक मूल्यों के आधार पर भारत को केवल भव्य ही नहीं, बल्कि वास्तव में सभ्य और संवेदनशील राष्ट्र बनाने का प्रयास है। इसकी समृद्धि में न केवल साहित्य की उन्नति निहित है, बल्कि देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और न्याय-नीति की संभावनाएँ समाई हुई हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि दलित साहित्य की समृद्धि से ही एक समतामूलक और न्यायपूर्ण भारत की परिकल्पना साकार हो सकती है। यह स्पष्ट है कि हिंदी दलित कविता केवल काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक चेतना का सांस्कृतिक प्रतिरोध है। जो भारतीय समाज की अंतर्विरोधी संरचना को उजागर कर एक मानवीय, न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ सूची -

1) मोहनदास नैमिशराय - साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल— नया पथ - जुलाई-सितम्बर, 1997, पृष्ठ. 104-105
2) ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , पृष्ठ - 16
3) शरणकुमार लिंबाले – दलित साहित्य का सौन्दर्य़शास्त्र, पृष्ठ - 106
4) कँवल भारती, युद्धरत आम आदमी, अंक 41-42, सन.1998, पृष्ठ - 41
5) सं. पुन्नी सिंह, भारतीय दलित साहित्य: परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ - 25
6) कंवल भारती - बीसवीं सदी के अंतिम दशक की दलित कविता, फारवर्ड प्रेस - नवबंर 2022
7) ओमप्रकाश वाल्मीकि - झाड़ूवाली - दलित निर्वाचित कविताएँ, संपादक : कँवल भारती, पृष्ठ - 57
8) श्यौराज सिंह बेचैन - जुल्म जारी भी है' (क्रौंच हूँ मैं - कविता संग्रह), पृष्ठ - 36

9) मोहनदास नैमिशराय - आग और आंदोलन, पृष्ठ - 57
10) बी. गोपाल रेड्डी - आंबेडकर (कविता संग्रह -लोकालोक) अनुवाद - पी. आदेश्वर राव - पृष्ठ 20
11) सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ - 40
12) सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ - 154
13) सुनीता - लिखना चाहती हूँ, हिन्दवी, पृष्ठ – वेब
14) सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ - 65
15) बी. गोपाल रेड्डी - आंबेडकर (कविता संग्रह -लोकालोक) अनुवाद - पी. आदेश्वर राव - पृष्ठ 20
16) सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ - 120
17) पराग पावन - यह सिर्फ़ एक सरकार से नाख़ुश होने का मसला नहीं था, हिन्दवी, पृष्ठ - वेब

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

विवेकी राय के उपन्यासों में प्रताड़ित स्त्री: दलित-स्त्री का दोहरा शोषण

स्नेहा नाना गायकवाड

पिटीसी द्वारा संचालित सौ. रजनीताई नानासाहेब देशमुख कला
वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय भडगाव, जि. जलगाव

प्रस्तावना:

विवेकी राय प्रेमचंद की परंपरा को निरंतर आगे बढ़ाने वाले और उसे विकसित करके समृद्ध करने वाले महत्वपूर्ण तथा सशक्त हस्ताक्षर हैं। प्रेमचंद की भाँति उन्होंने ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अपनी रचनाओं में विश्वसनीय और प्रामाणिक रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके समग्र उपन्यासों की कथा-वस्तु के केंद्र में वह गाँव है, जो दयनीय अवस्थाओं से गुजर रहा है। विवेकी राय ने अपने जीवन का अधिकांश समय गाँव में व्यतीत किया है; इसलिए वे ग्रामीण जीवन की नस-नस से भली-भाँति परिचित हैं। गाँव में रहते हुए उन्होंने जो कुछ देखा, भोगा और अनुभूत किया, उसी का सृजनात्मक रूपांतरण उनकी औपन्यासिक कृतियों में दिखाई देता है। यही कारण है कि उनके उपन्यास ग्रामीण जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज प्रतीत होते हैं। विवेकी राय अध्यापक, रचनाकार और किसान इन तीनों भूमिकाओं में सक्रिय रहे हैं, अतः इन क्षेत्रों से प्राप्त अनुभूतियों को उन्होंने अपने लेखन का आधार बनाया है। वे आजीवन ग्राम-जीवन के प्रति प्रतिबद्ध रहे, और उनका समग्र लेखन इसी प्रतिबद्धता का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

विषय प्रवेश:

प्रेमचंद के उपरांत विवेकी राय ऐसे विरले रचनाकार हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर इतनी व्यापक मात्रा में सृजन किया है। उन्होंने ग्रामीण समाज में व्याप्त समस्याओं को विस्तृत धरातल पर और गहरी संवेदनशीलता के साथ उकेरा है। उनके उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक यथार्थ का प्रामाणिक और सजीव चित्रण मिलता है। इसलिए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि विवेकी राय के उपन्यास भारतीय ग्रामीण जीवन के ज्वलंत और धधकते यथार्थ को सामने रखते हैं। विवेकी राय के उपन्यासों में अभिव्यक्त ग्रामीण यथार्थ तथा प्रेमचंद-परंपरा के निर्वाह के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, "यथार्थवाद की बुनियाद पर अवस्थित ग्राम-केंद्रित उपन्यासों की इसी कथा-परंपरा की कड़ी हैं विवेकी राय के उपन्यास, जिनमें पूर्वांचल के गाँवों का सामाजिक यथार्थ, उनके निवासियों की व्यथा-कथा, हर्ष-उल्लास, ताप-त्रास, आशाएँ-आकांक्षाएँ, तथा उनके स्वत्व-संघर्ष अपनी पूरी विविधता में चित्रित हुए हैं। [1] स्वतंत्रतापूर्व ग्रामीण कथाकारों की दृष्टि और विवेकी राय की दृष्टि में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यह अंतर परिवर्तित समय और बदलती परिस्थितियों के कारण स्वाभाविक रूप से उभरता है। विवेकी राय के यहाँ गाँव केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्षों, आर्थिक विडंबनाओं और राजनीतिक प्रभावों का जीवंत केंद्र बनकर उपस्थित होता है।

ग्रामीण समाज में स्त्रियों के शोषण की सच्चाई को विवेकी राय ने अपने समग्र उपन्यास-साहित्य में प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है। उनके उपन्यासों में अधिकांश स्त्री-पात्र जीवन भर शोषण और प्रताड़ना का सामना करते दिखाई देते हैं। इसी कारण अनेक समीक्षक यह मत व्यक्त करते हैं कि विवेकी राय के स्त्री-पात्रों का जीवन मुख्यतः जुल्म और अन्याय सहने की विवशता में ही बीतता है। यह भी सत्य है कि उनके उपन्यासों में अन्याय-अत्याचार का संगठित प्रतिकार करने वाली स्त्रियाँ तुलनात्मक रूप से बहुत कम मिलती हैं।

अपने प्रथम उपन्यास 'बबूल' में विवेकी राय ने शोषित नारी-यथार्थ को दरपनी, पलकी और सुनरी जैसे दलित स्त्री-पात्रों को केंद्र में रखकर प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में ये स्त्रियाँ दोहरे शोषण का शिकार होती हैं, पहला, स्त्री होने के कारण और दूसरा, दलित स्त्री होने के कारण। इन तीनों पात्रों की दुर्दशा से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में दलित स्त्रियों की स्थिति सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक शोचनीय और असुरक्षित है। ग्रामीण समाज की दलित स्त्रियों के संदर्भ में विमल थोरात लिखती हैं,
"अधिकांश दलित समाज की महिलाएँ खेतिहर मजदूर हैं, जो बहुत कम मजदूरी पर कार्य करती हैं। उन्हें हर रोज बेरोजगारी का सामना भी करना पड़ता है। नीची जाति से संबंधित होने के कारण आर्थिक रूप से उच्च जाति के अमीर लोगों पर आश्रित होने से उन्हें बलात्कार और सब तरह की हिंसा का शिकार भी होना पड़ता है। [2]

विमल थोरात का यह कथन विवेकी राय के स्त्री-पात्रों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक पराधीनता और हिंसा-जन्य असुरक्षा के संदर्भ में अत्यंत सटीक प्रतीत होता है। 'बबूल' में दरपनी, पलकी और सुनरी के माध्यम से लेखक दलित स्त्रियों के जीवन-संघर्ष, उनके श्रम-शोषण, सामाजिक अपमान तथा देहगत/मानसिक प्रताड़ना की बहुस्तरीय सच्चाई को सामने लाते हैं। इस प्रकार, विवेकी राय के उपन्यासों में प्रताड़ित एवं शोषित स्त्री केवल व्यक्तिगत दुख की कथा नहीं रहती, बल्कि वह ग्रामीण समाज की संरचनात्मक विषमता और जाति-लिंग आधारित प्रभुत्व-व्यवस्था का सशक्त साक्ष्य बन जाती है।

दरपनी के माध्यम से लेखक दलित स्त्री की सामाजिक असहायता और सत्ता-समर्थित हिंसा को प्रभावी ढंग से उजागर करता है। उपन्यास की स्त्री-पात्र दरपनी पति के निधन के बाद असहाय और निराधार हो जाती है, फिर भी वह पूरी तरह टूटती नहीं। वह अपने पुत्र महेसवा को देखकर जीने का साहस जुटाती है। किंतु ग्रामीण समाज उसकी सहायता करने के स्थान पर उसकी विवशता और असहायता का लाभ उठाने के लिए तत्पर दिखाई देता है। दरपनी की स्थिति इतनी दयनीय है कि उसके पास शरीर ढकने के लिए ढंग की साड़ी तक नहीं है। स्पष्ट है कि समाज ऐसी स्त्रियों के प्रति संवेदनशील होने के बजाय, अक्सर उनकी मजबूरी को अवसर में बदल देता है।

उपन्यास में दरपनी के साथ घटित एक घटना इस शोषणकारी मानसिकता को और अधिक स्पष्ट करती है। एक शाम दरपनी खेत से चने का साग खोंटकर ला रही थी। रास्ते में गाँव के भूतपूर्व ज़मींदार के युवक पुत्र मालिक बाबू से उसकी भेंट हो गई। प्रसंग इस प्रकार है, "तो उन्होंने पूछा कि कहाँ से साग ला रही है? वह

बेचारी क्या पटवारी थी जो सबका खेत जानती है, उत्तर न दे सकी। तमाचे बरसने लगे और मालिक ने आँचल खींचकर तमाम साग बिखेर दिया। गालियों की बौछार— तुम्हारे बाप का खेत है कि शाम-सवेरे मुँड लाती है? हरामजादी कहीं की। अब देखा किसी दिन अपने खेत में तो मार कर टाँग तोड़ दूँगा। बाबू की दुहाई देती बिलखती उसने घर का रास्ता लिया। खींचतान के झटके में जीर्ण साड़ी का आँचल उघड़ गया। [3] यह प्रसंग केवल व्यक्तिगत अपमान का दृश्य नहीं है, बल्कि ग्रामीण समाज में दलित स्त्री पर होने वाली सत्ता-आधारित हिंसा, जातिगत दमन और लैंगिक अपमान की संरचना को सामने रखता है। उल्लेखनीय है कि ऐसी घटनाएँ आज भी अनेक गाँवों में दलित स्त्रियों के साथ घटित होती हैं, जहाँ उनका श्रम स्वाभाविक मान लिया जाता है, लेकिन उनका सम्मान और अधिकार अस्वीकार्य बना रहता है।

इसी क्रम में विवेकी राय ने स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या को भी एक मार्मिक प्रसंग के माध्यम से उजागर किया है। पलकी, जो महेसवा की पत्नी है, वह भी गाँव के ज़मींदार के युवा पुत्र की वासना का शिकार होती है। उपन्यास में प्रसंग इस प्रकार प्रस्तुत है, "बाल कंधे पर और सिर पर बिखर गए हैं। छटा छा गयी है और सत्रह वर्ष का एक चाँद हँस रहा है। इस चाँद की एक कहानी है। गत वर्ष इस पर ग्रहण लग गया था। इसके गाँव के जवान जमींदार पुत्र ने इसे छू दिया। पेर भारी हुए तो बिरादरी के कान खड़े हुए... नवजात लड़की सात दिन में मर गई तब उदासी मिटाने के लिए वह अपने मौसी के यहाँ आई और यहाँ चारों ओर से डोरे पड़ने और कम्पे बिछने लगे।"[4] इस प्रसंग के माध्यम से लेखक ग्रामीण जीवन में स्त्रियों के प्रति व्याप्त यौन-दमन, सामाजिक संदेह, और इज्जत के नाम पर स्त्री पर ही आरोप-भार डालने की प्रवृत्ति को रेखांकित करता है। यहाँ स्त्री की पीड़ा केवल निजी त्रासदी नहीं रहती, वह सामूहिक सामाजिक व्यवस्था की क्रूरता का प्रमाण बन जाती है। परिणामतः स्त्रियाँ समाज में निरंतर असुरक्षा का अनुभव करती हैं, वे न घर में पूर्णतः सुरक्षित हैं, न खेत में, और न ही सामाजिक संरचना के भीतर। उनके चारों ओर असुरक्षा का भय एक स्थायी परछाईं की तरह उपस्थित रहता है।

विवेकी राय ने 'सोनामाटी' उपन्यास में भी स्त्रियों के शोषण की समस्या को कोइली और सुनरी इन दो असहाय तथा निराधार स्त्री-पात्रों के माध्यम से अत्यंत मार्मिक ढंग से उजागर किया है। कोइली आर्थिक अभाव और घोर गरीबी से पीड़ित एक बेसहारा स्त्री है। विवश होकर उसे अपनी छोटी बच्ची सहित हनुमान प्रसाद के रिश्तेदार सुग्रीव के हाथों मात्र चार हजार रुपये में बिकना पड़ता है। आगे चलकर जमींदार हनुमान प्रसाद उसके साथ विवाह का प्रस्ताव रखकर, वास्तव में उसे अपने अधीन कर उसका शोषण करना चाहता है। किंतु कोइली किसी प्रकार अवसर पाकर रात में वहाँ से भाग निकलती है। जब उपन्यास का पात्र रामरूप उससे मिलता है और कहता है कि वह एक खास काम से आया है, तब कोइली अपने जीवन की दुर्गति का विवरण सुनाते हुए अत्यंत कटु अनुभव व्यक्त करती है। वह कहती है, "अपने गरीब बाप के घर जवान हुई तब से हर आदमी हमारे पास खास काम के लिए ही आया है मास्टर जी यहाँ एकदम एकांत है। कहिए सेज लगा दूँ अपने को सौंप दूँ ? एक औरत और क्या कर सकती है ? यदि सुग्रीव जी की तरह आप भी कहीं और सीदा कर आये हो तो राज-सुख भोग के लिए उस पाँचवें बाबा के पास आपके साथ चलूँ ?... बोलिए चुप क्यों हो गये मास्टर जी ? हमको हुक्म दो। [5] कोइली के इस कथन से स्पष्ट होता है कि, ग्रामीण समाज में

स्त्री की स्थिति कितनी भयावह और दयनीय हो सकती है। शोषण और अपमान से बार-बार गुजरने के कारण उसकी चेतना में यह पीड़ा इतनी गहरी बैठ गई है कि सहानुभूति रखने वाला रामरूप भी उसे संभावित शोषक प्रतीत होता है। इसलिए वह अपने मन की संचित पीड़ा और भय को बिना संकोच व्यक्त कर देती है। यह प्रसंग स्त्री के जीवन में विश्वास के टूटने और असुरक्षा के स्थायी भाव को रेखांकित करता है।

इसी उपन्यास की दूसरी प्रमुख स्त्री-पात्र सुनरी भी कोइली की तरह असहाय और निराधार है; किंतु उसकी कहानी और भी अधिक भयावह रूप में सामने आती है। सुनरी समाज के विभिन्न स्तरों पर निरंतर यौन शोषण का शिकार होती है। कच्ची उम्र में ही चटाई टोला के नवीन बाबू उसे अपनी वासना का शिकार बनाते हैं, जिससे उसे एक पुत्र भी होता है। किंतु लोक भय और नवीन बाबू के दबाव के कारण वह उस बच्चे को एक रात अरहर के खेत में छोड़ने को विवश हो जाती है। बाद में वही बच्चा हनुमान प्रसाद के घर पलता-बढ़ता है और 'पावल पाण्डेय' के नाम से पहचाना जाता है। यहीं शोषण की प्रक्रिया समाप्त नहीं होती। नवीन बाबू के साथ-साथ उनका पुत्र अच्छेलाल भी सुनरी का यौन शोषण करता है। कुछ समय बाद अच्छेलाल के मित्र भी उसे शोषण की वस्तु बना लेते हैं मानो वह स्त्री नहीं, बल्कि ऐसी सार्वजनिक वस्तु हो जिसे कोई भी मनचाहे ढंग से इस्तेमाल कर सकता है। सुनरी का विवाह खुबवा से है, पर यह संबंध केवल नाममात्र का रह जाता है। उसकी नारकीय यातनाएँ, दयनीय दशा और उस पर किए जाने वाले सामूहिक अत्याचार को विवेकी राय ने प्रसंगों के माध्यम से अत्यंत तीव्रता के साथ उभारकर प्रस्तुत किया है।

सुनरी पर सामूहिक अत्याचार का प्रसंग उपन्यास में अत्यंत भयावह रूप में चित्रित हुआ है। लेखक इस घटना के माध्यम से यह दिखाता है कि किस प्रकार स्त्री विशेषकर असहाय दलित स्त्री को वस्तु की तरह समझकर उस पर सामूहिक हिंसा की जाती है। प्रसंग इस प्रकार है, "एक ने दारू की बोतल का मुँह मुँह में घुसेड़ दिया, जबरदस्ती। रस-गंध के धक्के से लगा, अब जान गयी। कलेजा चीरकर कोई चीज कितनी-कितनी बार कहाँ जाती है? जब तक होश था सुनरी असह्य को सहती रही और फिर बेहोशी के बाद क्या हुआ, उसका पता सुबह होश आने पर चला। साड़ी चिथड़े-चिथड़े हो गयी थी। उस पर जगह-जगह खून के धब्बे लगे थे। फटा ब्लाउज दूर फिका था और वह स्वयं नंगी, जगह-जगह सूजी और खरोंच भरी कलंकित देह लिये जमीन पर पड़े टाट के टुकड़े पर पड़ी थी। चारपाई की एक पाटी टूट गयी थी। उस पर खाली बोतल लुढके थे। [6] यह प्रसंग केवल एक व्यक्ति की पीड़ा नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज में स्त्री के विरुद्ध मौजूद हिंसा-संरचना, यौन-दमन, और सत्ता-समर्थित अमानवीयता का दारुण साक्ष्य बन जाता है। लेखक यहाँ यह भी संकेत करता है कि शोषण की यह प्रक्रिया केवल बाहरी पुरुष-समाज तक सीमित नहीं रहती, बल्कि स्त्री-जीवन के भीतर, परिवार और घरेलू संबंधों में भी अनेक रूपों में जारी रहती है।

वास्तव में स्त्री पर अत्याचार के संदर्भ में यह विडंबनापूर्ण सत्य भी सामने आता है कि, स्त्रियाँ भी स्त्रियों पर अन्याय-अत्याचार करती हैं। ग्रामीण परिवेश में यह स्थिति अधिक तीव्र रूप में दिखाई देती है, जहाँ आज भी अनेक बहू-बेटियाँ सास, ननद, ससुर अथवा पारिवारिक दबावों की प्रताड़ना झेलती हैं। इसलिए स्त्री केवल समाज में ही असुरक्षित नहीं है, बल्कि कई बार अपने घर-परिवार के भीतर भी वह सुरक्षित अनुभव नहीं कर

पाती। समकालीन सामाजिक यथार्थ में समाचारपत्रों और मीडिया में दहेज के लिए नवविवाहिता को जलाने, भूखा रखने, कुएँ में धकेलने, जबरन फाँसी लगाने जैसी घटनाएँ निरंतर सामने आती रहती हैं। इन घटनाओं की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि कई बार ऐसे अपराधों में परिवार के अनेक सदस्य सहभागी पाए जाते हैं। यह सामाजिक विडंबना है कि स्त्री-उत्पीड़न के कुछ रूपों में स्त्री की भूमिका भी सह-अपराधी या सह-समर्थक के रूप में उभर आती है।

अतः कहा जा सकता है की, विवेकी राय के उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री-जीवन का यथार्थ अत्यंत मार्मिक और प्रामाणिक रूप में उभरता है। 'बबूल', 'सोनामाटी' और 'मंगल भवन' में दरपनी, पलकी, कोइली, सुनरी और लक्ष्मी जैसी स्त्रियाँ आर्थिक अभाव, जातिगत दमन, यौन-हिंसा तथा पारिवारिक प्रताड़ना इन बहुस्तरीय शोषणों से जूझती दिखाई देती हैं। लेखक दिखाता है कि स्त्री केवल समाज में ही नहीं, घर के भीतर भी असुरक्षित है और कई बार स्त्री-पर-स्त्री अत्याचार भी मौजूद है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. वेदप्रकाश अमिताभ (संपादक), सर्जनात्मकता में गाँव, पृ. क्र. 28
2. ज्ञानेंद्र रावत (संपादक), औरतः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. क्र. 121
3. विवेकी राय, बबूल, पृ. क्र. 39
4. विवेकी राय, बबूल, पृ. क्र. 62
5. विवेकी राय, सोनामाटी, पृ. क्र. 133–34
6. विवेकी राय, सोनामाटी, पृ. क्र. 250

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक विमर्श को चित्रित करता हिंदी सिनेमा

श्री.बापू शिवाजी पाटील (शोधार्थी), प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन'(शोधमार्गदर्शक)

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप स्वशासी महाविद्यालय,अमलनेर, जिला-जलगांव

भारतीय संविधान और हिंदी सिनेमा का घनिष्ठ संबंध है। संविधान भारत का आत्मा है और उस आत्मा का आईना संविधान है। इसलिए संविधान में अंतर्भूत मूल्यें, अधिकार, कर्तव्य और उससे संबंधित संघर्ष का प्रतिबिंब समय-समय पर हिंदी सिनेमा द्वारा समाज के सामने प्रकट होता है। समाज परिवर्तनशील है। परिवर्तन के साथ-साथ समाज में समस्याएं भी नया रूप धारण कर कर सामने आती हैं। सामाजिक विषमता, राजनीतिक, धार्मिक, जातीयता, सांस्कृतिक परंपराएं, कुप्रथा, पाखंडता, भ्रष्टाचार, नारी समस्या, छुआछूत, बेरोजगारी, शिक्षा आदि समस्याओं का सामना पूरा देश कर रहा है। इन समस्याओं को लेकर अनेक निर्माताओं ने हिंदी सिनेमा बनायें और उसे समाज के सामने प्रदर्शित भी किया। सिनेमा केवल मनोरंजन का साधन न रहकर एक समाज प्रबोधन का माध्यम बन चुका है। अल्पावधि में पूरे देश और विश्व के पटल पर समस्या रखने का काम हिंदी सिनेमा करता है। शिक्षा संबंधी बहुत ही कम हिंदी सिनेमा प्रदर्शित हुई है। लेकिन जो भी शैक्षिक सिनेमा प्रदर्शित हुएं हैं, वह बहुत दर्जेदार है।

भारतीय संविधान में शिक्षा को मूलभूत अधिकार माना गया है। शिक्षा संबंधी कुछ महत्वपूर्ण कलमों का निर्माण संविधान में किया है, इस प्रकार है:

१) कलम 21 अ के अनुसार शिक्षा को मूलभूत अधिकार माना गया है। 6 से लेकर 14 उम्र तक के सभी भारतीय बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देना राज्यों का अनिवार्य कर्तव्य माना गया है। इसी आधार पर आरटीई जैसा कानून 2010 में पूरे भारत में लागू किया गया है।

२) कलम 45 के अनुसार 6 वर्ष के नीचे उम्र वाले बच्चों का पालन पोषण और शिक्षा की जिम्मेदारी राज्यों की हैं।

३) कलम 29 और 30 के अनुसार अल्पसंख्याक का शैक्षिक अधिकार को आबादित रखा गया है।

४) कलम 46 के अनुसार अनुसूचित जाति, जमाती और दुर्बल घटकों के शैक्षिक अधिकार की रक्षा की गई है।

५) कलम 51 के अनुसार हर एक भारतीय अभिभावक का कर्तव्य माना गया है कि, अपने 6 से लेकर 14 उम्र तक के बच्चों को शिक्षा का अवसर प्राप्त कर दें।

इस प्रकार शिक्षा से संबंधित भारतीय संविधान में प्रावधान होकर पूरे भारत में शिक्षा के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। इन शिक्षा से संबंधित 21वीं सदी में कुछ शैक्षिक सिनेमाओं का निर्माण हुआ है। मुन्ना भाई एमबीबीएस, तारे ज़मीन पर, थ्री इडियट, आईएम कलाम, पाठशाला, उड़ान, दो दूनी चार, चिल्लर पार्टी, आरक्षण, इंग्लिश विंग्लिश, युवा नीलम बटे सन्नाटा, न्यूटन, हिंदी मीडियम, चॉक एंड डस्टर, स्टूडेंट ऑफ़ द ईयर, छिछोरे आदि सिनेमाओं में शैक्षिक समस्याओं का वस्तावादी चित्रण किया गया है। इन

फिल्मों द्वारा विद्यार्थी, अध्यापक, अभ्यासक्रम, अध्यापन पद्धती, अभिभावक, प्रशासन, आर्थिक व्यवस्था, शासन, समाज, तंत्रज्ञान आदि को लेकर जो समस्या निर्माण हुई है, उनको हिंदी सिनेमा द्वारा उजागर किया गया है।

"तारे ज़मीन पर"यह आमिर खान द्वारा निर्मित हिंदी सिनेमा छात्रों की मानसिकता पर आधारित है। डिस्लेक्सिया से पीड़ित ईशान अवस्थी की यह कहानी है। ईशान अवस्थी मां बाप और समाज द्वारा प्रताड़ित छात्र है। शिक्षा का अधिकार उससे छीन लिया जाता है। लेकिन राम शंकर निकुंभ नामक अध्यापक उसकी मानसिकता का अध्ययन करके ईशान को अध्ययन के प्रभाव में लाता है।

"आई एम कलाम"इस फ़िल्म में पिछड़े और अभावग्रस्त वर्ग की शिक्षा के अभिलाषा, शिक्षा के मार्ग में निर्माण समस्या, आर्थिक दुर्बल घटक, इन प्रयोजनों से शिक्षा से वंचित छोटू का चित्रण किया गया है। वह 12 साल का लड़का है, लेकिन अपना परिवार चलाने के लिए उसे ढाबे पर काम करना पड़ता है। बाल मजदूरी की समस्या प्रस्तुत फ़िल्म के माध्यम से समाज के सामने रखी गई है। छोटू को पढ़ने की इच्छा है, लेकिन पैसा कमा कर परिवार चलाना भी उसके लिए अत्यावश्यक है। भूतपूर्व राष्ट्रपति कलाम साहब का भाषण सुनकर वह प्रभावित होता है और शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह अपने सारे बंधन तोड़ देता है।

"चिल्लर पार्टी"इस हिंदी सिनेमा में खेलने कूदने की उम्र में बच्चों का शोषण अभिभावक द्वारा कैसे होता है, यह दिखाया गया है। राजनीतिक लोग अपने स्वार्थ के लिए बच्चों का खेलने कूदने का मैदान हड़प लेते है। व्यक्तित्व विकास के साधन मैदान होता है, लेकिन उस पर नेता अतिक्रमण करता है। बच्चें संगठित होकर संविधान का उपयोग करके मैदान पुनः प्राप्त कर लेते हैं।

"पाठशाला"इस फ़िल्म में अध्यापकों से संबंधित समस्याओं का चित्रण किया गया है। स्कूल के ट्रस्टी और शासन द्वारा अध्यापकों का किस प्रकार शोषण किया जाता है और उसे किस प्रकार दबोचा जाता है इसका सुंदर चित्रण किया है। स्कूल का एक अध्यापक राहुल अपने सहयोगियों की मदद से व्यवस्थापन के विरोध में वातावरण तैयार करता है और उसे विजय प्राप्त होती हैं।

"इंग्लिश विंग्लिश"फ़िल्म में अंग्रेजी भाषा का अवास्तव महत्व दिखाया गया है। भारतीय संविधान के अनुसार प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में देना अनिवार्य है। लेकिन आज सभी ओर केजी से लेकर पीजी तक अंग्रेजी का ही उपयोग किया जाता है। इस कारण अंग्रेजी की डर से बहुत से बच्चें स्कूल छोड़ देते हैं। अंग्रेजी न आने के कारण फ़िल्म की मुख्य अभिनेत्री शशि को समाज और अपने परिवार द्वारा अपमानित और प्रताड़ित होना पड़ता है।

"नीलम बटे सन्नाटा"इस फ़िल्म में सामाजिक विषमता का चित्रण किया गया है। इस फ़िल्म की नायिका चंदा एक श्रमजीवी महिला है, जो परिश्रम करके अपनी बेटी को पढ़ा लिखा कर बड़ा आदमी बनना चाहती हैं। लेकिन उसकी बेटी अपेक्षा बहुत निराशावादी है। अपेक्षा की सोच है कि,"जब डॉक्टर के संतान डॉक्टर बनती है, तो बाई (कामवाली) की संतान भी बाई ही बनेगी।"शिक्षा के प्रति भ्रष्टाचार करने वाले और शिक्षा के मत्तेदारों को यह जबरदस्त तमाचा है।

"हिंदी मीडियम"यह कॉमेडी फ़िल्म जरूर है, लेकिन कॉमेडी के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था पर जबरदस्त व्यंग कसा गया है। भारतीय संविधान के अनुसार निर्मित आरटीआई कानून के अनुसार आर्थिक दुर्बल, पिछड़े ,गरीब बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था की गई है। लेकिन इन आरक्षित जगहों पर अपने बच्चों को प्रवेश प्राप्त करने के लिए अमीर लोग अनेक प्रकार के झूठे कागजात तैयार करके अनेक प्रकार के बहाने बना कर गरीब बच्चों का अधिकार छीन लेते हैं। प्रस्तुत फिल्म का नायक राज बत्रा व्यापारी होकर भी अपनी बेटी को आरक्षित लड़कों की जगह पर प्रवेश दिलाने का प्रयास करता है।

"आरक्षण"इस फ़िल्म में आरक्षण के नाम पर घिनौना राजकरण करने वाले लोगों के गाल पर जबरदस्त तमाचा लगाया गया है। प्रस्तुत फ़िल्म में दलित वर्ग का उपयोग केवल अपनी राजकीय रोटी सेखने के लिए ही किया जाता है। शैक्षिक योग्यता होने के बावजूद भी केवल दलित होने के कारण दीपक कुमार को अध्यापक पद से हटाया जाता है। तो दूसरी ओर अधिक अंक होने के

बावजूद भी केवल आरक्षित जगह होने के कारण कम अंक वाले को अवसर दिया जाता है। आरक्षण का समर्थन करने के कारण कॉलेज के प्रिंसिपल डॉक्टर आनंद को अपने प्राचार्य पद की बलि देनी पड़ती है।

संक्षेप में अगर कहा जाए तो, स्वतंत्रता पूर्व काल में सामाजिक और जातीय विषमता के कारण आदिवासी, पिछड़े वर्ग, गरीब छात्र शिक्षा के प्रवाह से हेतु पुरस्कर बाहर रखे गए थे। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल में और लोकतंत्र, संविधान प्रधान देश होकर भी सामाजिक, राजकिय, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक विषमताओं के कारण होनहार बच्चें शिक्षा प्रणाली से बाहर हो रहे हैं। शिक्षा से संबंधित समस्याएं दिन-ब-दिन विकृत रूप धारण कर रही है। छात्र, अभिभावक, अध्यापक, शासन, संस्था चालक, अभ्यासक्रम, अध्ययन पद्धतियां, तंत्रज्ञान, शैक्षिक स्पर्धा आदि के कारण निर्माण समस्याओं का चित्रण हिंदी सिनेमा द्वारा किया जा रहा है। समाज परिवर्तन की ताकत हिंदी सिनेमा में है। स्पष्ट और सत्य निष्ठता से अगर समस्याओं को निरूपित किया गया तो इस देश के सच्चे मालिक मूल निवासियों को समानता का न्याय सम्मान से मिल सकता है और संविधान का भी मान रखा जा सकता है, इसी में लोकतंत्र की यशस्विता और सफलता है।

निष्कर्ष:--

१) भारतीय संविधान केवल कानून का दस्तावेज न होकर भारतीय लोगों का जीने का अधिकार है।

२) हिंदी सिनेमा द्वारा संविधान में निर्देशित शिक्षा का अधिकार और उनसे संबंधित संघर्ष प्रभावी ढंग से समाज के सामने रखा गया है।

३) हिंदी सिनेमा शिक्षा में बाधक न होकर दिशा दर्शक समाज प्रबोधन का माध्यम है।

४) भारत के कोने-कोने में सिनेमा द्वारा संविधान का परिचय होता है और अपने अधिकार के प्रति जन सामान्य परिचित होते हैं।

५) हिंदी सिनेमा से प्रभावित होकर शिक्षा प्रवाह से बाहर निकाला गया समाज आज धीरे-धीरे शिक्षा प्रवाह में आने लगा है और उनका स्तर निरंतर बढ़ रहा है।

संदर्भ:--

१) विकिपीडिया
२) युटुब
३) सिनेमा से संबंधित वेबसाइट
४) "भारतीय जन-जीवन और हिंदी सिनेमा"-डॉ.जयकृष्णन जे.,अमन प्रकाशन, कानपुर।
५) "इक्कीसवीं सदी का आदिवासी हिंदी साहित्य"-संपादक, प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली
६) "भारतीय सिनेमा का साहित्यिक सौंदर्य"-संपादक, प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'
७) "साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा"-डॉ. सुनील बापू बनसोडे,शुभम पब्लिकेशन, कानपुर
८) सिनेमा से संबंद्धित पत्रिकाएं
९)सदी का हिंदी सिनेमा और साहित्य:-संपादक प्रो.डॉ शशिकांत 'सावन',माया प्रकाशन कानपुर

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

प्रसाद साहित्य में नारी : परंपरा और आधुनिकता के संदर्भ में

डॉ. प्रीति एस.सोनी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
भाषा अध्ययन प्रशाला एवं अनुसंधान केंद्र
क.ब.चौ.उ.म.विश्वविद्यालय, जलगांव

सारांश :

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के महान और गौरवशाली साहित्यकार हैं। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि सभी विधाओं में समान रूप से विकसित हुई है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में उन्होंने खड़ी बोली काव्य को रसात्मक माधुर्य और गहन भावात्मकता प्रदान की। उनके साहित्यिक युग में नारी की सामाजिक स्थिति दयनीय थी, किन्तु प्रसाद जी ने नारी को करुणा की पात्र नहीं, बल्कि शक्ति, स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता से युक्त व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया। प्रसाद के काव्य में नारी पवित्र सौन्दर्य, आत्मिक उजास और प्रेरणा का स्रोत है, जैसा कि 'आँसू' में दिखाई देता है। वहीं 'कामायनी' की श्रद्धा आदर्श भारतीय नारी के रूप में दया, ममता, त्याग, सेवा और विश्व-कल्याण की भावना का प्रतीक है। वह मनु के जीवन में आशा, साहस और कर्मशीलता का संचार करती है। प्रसाद जी ने भाव-सौन्दर्य को स्थूल सौन्दर्य से अधिक महत्त्व देकर नारी की गरिमा और श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार उनका नारी-चित्रण हिन्दी साहित्य में नारी-विमर्श को एक मानवीय, गरिमामय और सशक्त आधार प्रदान करता है।

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के गौरवशाली एवं महान साहित्यकार हैं। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का व्यापक प्रसार कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध तथा आलोचना जैसे विविध साहित्यिक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है। छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में जयशंकर प्रसाद का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी कविता में छायावाद की सशक्त स्थापना की, जिसके माध्यम से खड़ी बोली काव्य को न केवल रसात्मक माधुर्य प्राप्त हुआ, बल्कि जीवन के सूक्ष्म तथा व्यापक आयामों के गहन चित्रण की क्षमता भी विकसित हुई।प्रसाद जी के साहित्यिक युग में नारी की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। बहुविवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह जैसी अनेक कुप्रथाओं और रूढ़ियों ने नारी के जीवन और सम्मान को गम्भीर रूप से प्रभावित किया था। ऐसे वातावरण में जयशंकर प्रसाद के हृदय में नारी के प्रति सम्मान, करुणा और श्रद्धा का भाव जागृत होना स्वाभाविक था। अन्य छायावादी कवियों जैसे निराला, महादेवी वर्मा और सुमित्रानन्दन पन्त की भाँति प्रसाद जी ने भी नारी को शक्ति-स्वरूपा, प्रेरणास्रोत तथा पूजनीय रूप में प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में नारी पवित्र, स्नेहमयी, संवेदनशील एवं सहचरी के रूप में चित्रित हुई है। प्रसाद जी का कोमल और भावप्रवण हृदय विशेष रूप से नारी-प्रेम एवं सौन्दर्य जैसे सरस और आकर्षक विषयों में अभिरुचि रखता है। उनके काव्य की मूल चेतना प्रेम

और सौन्दर्य पर आधारित है। उनके साहित्य में नारी किसी भी प्रकार के बन्धन में बँधी हुई नहीं दिखाई देती। वह बुद्धिमती है और उन पुरुषों को उचित एवं सशक्त उत्तर देना जानती है, जो स्त्रियों को तुच्छ या हीन समझने का प्रयास करते हैं। छायावाद के आगमन के साथ नारी को दया का पात्र बनने के स्थान पर अपने अधिकारों की माँग करने का साहस और चेतना प्राप्त हुई। इस अधिकार-बोध ने स्त्री-पुरुष के मध्य समानता और सृजनात्मक स्पर्धा की भावना को जन्म दिया तथा नारी की अंतर्निहित शक्ति और व्यक्तित्व को पहचान दिलाई।जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के गौरवशाली साहित्यकार हैं। उनकी रचनात्मक प्रतिभा कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि सभी प्रमुख साहित्यिक विधाओं में समान रूप से विकसित हुई है। उनके साहित्य में नारी के प्रति विशेष आदर, श्रद्धा और सम्मान का भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। नारी के प्रति प्रसाद की यही उदार और संवेदनशील दृष्टि उनकी काव्य-चेतना को व्यापक बनाती है। उनके साहित्य में नारी, पुरुष के अंधकारमय जीवन का प्रकाश है। 'आँसू' में नारी का चित्रण वासना या ऐन्द्रियता के रूप में नहीं, बल्कि पावन सौन्दर्य और आत्मिक उजास के प्रतीक के रूप में हुआ है। नारी सौन्दर्य वहाँ आध्यात्मिक आलोक से मंडित दिखाई देता है-

"चंचला स्नान कर आवे
चन्द्रिका पर्व में जैसी,
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुरी थी ऐसी।"[1]

उसका जीवन संघर्ष, आत्मसम्मान और स्त्री-सशक्तिकरण का प्रेरक उदाहरण है।वह कहती है-

"जल उठा स्नेह, दीपक-सा,
नवनीत हृदय था मेरा
अब शेष धूमरेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा।"[2]

प्रसाद जी के साहित्य में नारी केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि स्वाभिमान, आत्मबल और आत्मनिर्भरता से युक्त एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित होती है। उनका नारी-चित्रण हिन्दी साहित्य में नारी-विमर्श को एक उच्च, गरिमामय और मानवीय आधार प्रदान करता है।नारी के गरिमामयी व्यक्तित्व पर अनायास निकल पड़ता है-

"हे सर्वमंगले तुम महिती,

सबका दुःख अपने पर सहती।

कल्याणमयी वाणी कहती,

तुम उमा नीलय में हो रहती।"[3]

नारी की गरिमा और श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से ही जयशंकर प्रसाद ने महाकाव्य **'कामायनी'** की रचना की है। इस कृति में उन्होंने भारतीय आदर्श नारी **'श्रद्धा'** का ऐसा सशक्त और प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है, जो शील, सेवा, लज्जा, दया, क्षमा, ममता, त्याग, समर्पण, वात्सल्य और उदारता जैसे अनेक उदात्त गुणों से सम्पन्न है। श्रद्धा का सौन्दर्य केवल बाह्य नहीं, बल्कि उसके अंतर्मन में निहित मानवीय संवेदनाओं और करुणा से परिपूर्ण हृदय में अभिव्यक्त होता है। उसका हृदय विश्व-कल्याण की भावना से ओतप्रोत है, जो दुःख और सुख दोनों अवस्थाओं में समान रूप से द्रवित रहता है। यहां पर कभी स्थूल सौंदर्य के स्थान पर भाव सौंदर्य को अधिक महत्व देते हैं।

श्रद्धा को प्रसाद जी ने मानवता का संदेश देने वाली आदर्श नारी के रूप में कामायनी में चित्रित किया है-

"दया, माया, ममता लो आज

मधुरिमा लो अगाध विश्वास ।

तुम्हारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ,

तुम्हारे लिए खुला है पास।

और क्या तुम यह सुनते नहीं,

विधाता का मंगल वरदान।

शक्तिशाली हो विजयी बनो,

विश्व में गूंज रहा जयगान।"[4]

देव-सृष्टि के विनाश से व्याकुल **मनु** के जीवन में श्रद्धा आशा का संचार करती है तथा उसे साहस, धैर्य और कर्मशीलता की ओर प्रेरित करती है। वह भावी मानव समाज के निर्माण और उसके कल्याण की प्रेरणा स्रोत बनती है। श्रद्धा का समर्पण भाव निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है—

"समर्पण लो सेवा का सार सजल संसृति का यह पतवार। आज से यह जीवन उत्सर्ग, इसी पदतल में विगत विचार।"[5]

श्रद्धा का त्याग और निःस्वार्थ प्रेम तब और अधिक उजागर होता है, जब वह अपने जीवन के समर्पण के बदले मनु से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करती -

"इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है। मैं दे दूँ और न फिर लूँ कुछ, इतना ही सरल हलकता है।"[6]

मातृत्व की सूचना प्राप्त होने पर मनु श्रद्धा को छोड़कर चला जाता है, किंतु श्रद्धा फिर भी उसे अपना सर्वस्व मानकर उसकी मंगलकामना में निरंतर लीन रहती है। उसका प्रेम स्वार्थरहित, स्थायी और करुणामय है।

यद्यपि परंपरागत समाज में नारी को पुरुष की अपेक्षा दुर्बल और असमर्थ माना गया है, परंतु प्रसाद जी ने **'कामायनी'** के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि नारी स्वयं अपनी कथित हीनता को दूर करने में सक्षम है और वह समाज के नव-निर्माण की आधारशिला बन सकती है-

"अंधकार को दूर भगाती, वह

आलोक किरण-सी।

मेरी माया बिंध जाती है

जिससे हलके घन-सी। [7]

श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद यह संकेत देते हैं की वह भावनात्मक संतुलन और जीवन मूल्यों की संरक्षिका है। इसके साथ ही प्रसाद की नारी चेतन और विवेकशील भी है। वह कामायनी की आधुनिक बौद्धिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो तर्क ,बुद्धि और स्वतंत्र विचार की समर्थक है। ईडा का चरित्र स्पष्ट करता है कि प्रसाद नारी को केवल भावनात्मक सत्ता तक सीमित नहीं रखते बल्कि उसे विचारशील और निर्णयक्षम व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। यह रूप नारी के आधुनिक पक्ष को उजागर करता है। प्रसाद की नारी अपने अस्तित्व के प्रति सजग है और परिस्थितियों को मोह स्वीकार करने के बजाय उन्हें समझने और आवश्यकता पड़ने पर उनका प्रतिकार करने का साहस रखती है। यह चेतना उसे पारंपरिक सीमाओं में बंधी निष्क्रिय नारी से अलग करती है-

"तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में

कुछ सत्ता है नारी की

समरसता है संबंध बनी

अधिकार और अधिकारी की।"8

प्रसाद की नारी की चेतना का मूल उसके आत्मबोध में निहित है। वह अपने अधिकारों, कर्तव्यों और मानवीय गरिमा के प्रति सजग है। ध्रुवस्वामिनी जैसी नायिका अन्यायपूर्ण दांपत्य जीवन को स्वीकार नहीं करती और अपने सम्मान की रक्षा के लिए निर्णायक कदम उठाती है। यहाँ नारी केवल सहनशीलता की मूर्ति नहीं, बल्कि सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाली जागरूक सत्ता बनकर सामने आती है। यह चेतना प्रसाद के नारी-चित्रण को आधुनिक दृष्टि प्रदान करती है।

प्रसाद की नारी का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष उसका आत्मसम्मान है। वह किसी भी प्रकार के अपमान, शोषण या अन्याय को अपने भाग्य का लेखा मानकर स्वीकार नहीं करती। उसके व्यवहार में आत्मगौरव और गरिमा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रसाद की नायिकाएँ संबंधों में समर्पण करती हैं, किंतु आत्मविस्मरण नहीं। वे प्रेम करती हैं, परंतु अपने व्यक्तित्व की अस्मिता को सुरक्षित रखती हैं। यही आत्मसम्मान उन्हें निर्बलता से सशक्तता की ओर ले जाता है।

" मानस जीवन वेदी पर

परिणय हो विरह मिलन का

दुख-सुख दोनों नाचेंगे

है खेल आंख का मन का।"9

प्रसाद की नारी विचारशील भी है। वह भावनाओं के आवेग में बहने वाली नहीं, बल्कि तर्क, विवेक और नैतिक चिंतन के आधार पर निर्णय लेने वाली है। कामायनी की इड़ा इस विचारशीलता का श्रेष्ठ उदाहरण है। इड़ा भाव के स्थान पर बुद्धि और विवेक को प्रधान मानती है और मानव-जीवन को संतुलित दृष्टि से देखने का आग्रह करती है। उसके चरित्र के माध्यम से प्रसाद यह स्पष्ट करते हैं कि नारी बौद्धिक दृष्टि से पुरुष से किसी प्रकार कमतर नहीं है।

इस प्रकार प्रसाद के साहित्य में नारी का रूप बहुआयामी और सशक्त है। उसकी चेतना उसे जागरूक बनाती है, आत्मसम्मान उसे गरिमा प्रदान करता है और विचारशीलता उसे दिशा देती है। प्रसाद की नारी न तो विद्रोह की अंधी प्रतीक है और न ही परंपरा की निष्क्रिय अनुयायी; वह संस्कारयुक्त आधुनिकता की प्रतिनिधि है। यही कारण है कि प्रसाद का नारी-चित्रण साहित्यिक ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक बन जाता है। और आधुनिकता एवं परंपरा का समन्वय स्थापित करता है।

संदर्भ सूची -

1.प्रसाद की साहित्य साधना, डॉ. शंभूनाथ पाण्डेय, सरस्वती पुस्तक -सदन,आगरा पृ.क्र.56
2.इरावती, जयशंकर प्रसाद,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.क्र.36
3.इरावती, जयशंकर प्रसाद,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.क्र.55
4. जयशंकर प्रसाद कामायनी श्रद्धा सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करणपृ.क्र.22
5.जयशंकर प्रसाद कामायनी श्रद्धा सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करणपृ.क्र.24

6.जयशंकर प्रसाद कामायनी श्रद्धा सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करण पृ.क्र.30
7.जयशंकर प्रसाद कामायनी संघर्ष सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करण पृ.क्र.80
8.जयशंकर प्रसाद कामायनी श्रद्धा सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करण पृ.क्र.38
9.जयशंकर प्रसाद कामायनी उड़ा सर्ग , मयूर पेपर बैक्स नोएडा सातवां संस्करण पृ.क्र.70

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

किन्नर समुदाय की नारकीय स्थिति दर्शाता उपन्यास : जिंदगी ५०-५०

डॉ. पंढरीनाथ शिवदास पाटिल,

गंगामाई महाविद्यालय
नगाँव, धुले, महाराष्ट्र ४२४००५

साहित्य वह है जिसमें सब कुछ समाहित है। इसे लेकर विद्वानों ने बहुत सारी स्थापनाएँ दी है। जैसे 'साहित्य समाज का दर्पण है, यह संचित ज्ञान राशि का कोष है', 'यह जनसमूह के हृदय का विकास है' एवं 'यह आगे चलने वाली मशाल है' इत्यादि। सचमुच में किसी भी समाज को सम्यक रूप से जानने के लिए साहित्य एक महत्वपूर्ण साधन है। हम अन्य विषयों से सिर्फ उस समाज के किसी एक खास चीज को ही जान सकते हैं। जैसे- इतिहास से हम उस समाज का इतिहास जान सकते हैं, भूगोल से वहां की भौगोलिक स्थिति को जान सकते हैं, अर्थशास्त्र से उसकी आर्थिक व्यवस्था को हम जान सकते हैं और इसी प्रकार राजनीति से हम वहां की शासन व्यवस्था एवं राजनीति को जान सकते हैं, लेकिन यदि समाज को उसके समग्र रूप में समझना और जानना है तो उसका सम्यक माध्यम केवल साहित्य हो सकता है। यह सिर्फ समाज की व्यवस्था को ही नहीं अपितु उसके पीछे काम करने वाली मानसिक वृत्ति को भी चित्रित करता है, इसीलिए इसका सरोकार वहत है।

साहित्य में साहित्यकारों की कसौटी सामाजिक सरोकार की प्रतिबद्धता है। समाज का हर बदलाव चाहे वह अच्छा हो या बुरा साहित्य में देखा व महसूस किया जा सकता है। इससे समाज का कोई भी पहलू अछूता नहीं रहता, इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है।" इन्हीं वृत्तियों का परिणाम है- विविध एवं विमर्श साहित्य। विमर्श साहित्य वह है- जहां समाज के दबे कुचले शोषित वर्ग की आवाज प्रतिध्वनित होती है। जिसके माध्यम से हाशिए के समाज की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। उनके दुख एवं पीड़ा को हम महसूस करते हैं। एक प्रतिबद्ध लेखक अपनी लेखनी के माध्यम से इस वर्ग के शोषण का विरोध करता है। उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत करता है तथा समाज में जागरूकता लाने का प्रयास करता है। हमारे समाज में स्त्री, दलित, आदिवासी एवं किसान आदि इसी तरह के वर्ग हैं जिन्हें हाशिए पर धकेल दिया गया है, परंतु अब इस हाशिए के समाज पर पर्याप्त विचार-विमर्श किया जा रहा। उनके अधिकारों एवं उनकी सुरक्षा पर लगातार बहसें हो रही हैं। अब धीरे-धीरे समाज की सहानुभूति उनसे जुड़ रही है लेकिन इन सबके अलावा भी इन सबके बीच में एक ऐसा वर्ग अभी है जिसे हाशिए के विमर्श में भी स्थान नहीं मिल पाया है। वह वर्ग है- किन्नर समुदाय । अब इधर के लेखकों का ध्यान भी उस समुदाय की तरफ जाने लगा है किन्तु वह अब भी एक विमर्श के रूप में उभर कर सामने नहीं आ पाया है।

लेखकों की उदासीनता इस वर्ग से अब धीरे-धीरे हट रही है अब यह भी धीरे- धीरे लेखन के केंद्र में आ रहे हैं। इसकी भी शुरुआत अन्य विमर्शों की तरह स्वानुभूति एवं सहानुभूति दोनों स्तरों पर हुई है। जो स्वागत योग्य है। इधर कुछ बरसों में प्रकाशित इस विमर्श से जुड़े ग्रंथ प्रचुर मात्रा में देखने को मिले हैं। जैसे अनुसूया त्यागी कि- 'मैं भी औरत हूँ, महेंद्र भीष्म की 'किन्नर कथा' एवं 'मैं पायल', चित्रा मुद्गल की- 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा', भगवंत अनमोल की- 'जिंदगी 50-50', नीरजा माधव की 'यमदीप', प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', निर्मला भुराड़िया की- 'गुलाम मंडी', विवेक मिश्र की- 'डामनिक की वापसी' एवं मनोज चोपड़ा की- 'प्रति संसार' आदि आस्वस्ति दायक संकेत है। मनुष्य सिर्फ उन्हीं से सरोकार रखता है जिससे उसका स्वार्थ सधता है। हमारे जीवन में, हमारे रोजमर्रा के जीवन में न जाने कितने लोग मिलते हैं और बिछड़ते हैं, लेकिन हमारे पास उनका कोई हिसाब-किताब नहीं होता है। हम उन्हें बहुत जोर देने पर याद कर पाते हैं। मनुष्य एक भुलक्कड़ कौम है। यह भुलक्कड होना भी कभी-कभी उसके जीवन के लिए एक अभिशाप एवं वरदान सिद्ध होता हैं।

हर चीज के दो पहलू होते हैं- एक अच्छा और दूसरा बुरा। हम जिसको देखते हैं हमें वही नजर आता है। हमारी नज़र स्वयं में स्वतंत्र नहीं होती। इसके साथ समाज की मान्यताएँ, स्थापनाएँ एवं अपने आसपास के लोगों के विचार भी शामिल होते हैं। कभी-कभी यह इतने प्रबल होते हैं कि हम स्वयं के मस्तिष्क को अपाहिज बनाकर उनकी मान्यताओं, स्थापनाओं एवं फिजूल के विचारों से अपने जीवन को चलाने लगते हैं। इस बात का हमें भान भी नहीं होता कि हमारा मस्तिष्क कुंद पड़ा हुआ है। सिर्फ हम बेचैन रहते हैं और जब वक्त निकल जाता है तो सिर्फ पछतावा हमारे हाथ लगता है। कहते हैं कि जीवन और समय एक बार हाथ से निकल गया तो वह दुबारा नहीं आता है, लेकिन सचमुच में जीवन इतना क्रूर नहीं होता है, वह अपनी हर गलती को सुधारने का एक मौका अवश्य देता है। जो सुधार लिया उसका जीवन सार्थक हो जाता है और जो चूक जाता है वह अपनी गलती पर जीवन भर पछताने के लिए अभिशप्त रहता है। ऐसे ही मौके के ताने बाने पर "जिन्दगी 50-50" उपन्यास लिखा गया है। जिसे पढ़कर किन्नर समुदाय के लोगों एवं उनके जीवन के प्रति जानने की मुझे जिज्ञासा बढ़ी |

जिंदगी 50-50 भगवंत अनमोल का एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें किन्नर समुदाय की नारकीय एवं यंत्रणापूर्ण जीवन को पूरी संवेदना के साथ चित्रित किया गया है। हमारे समाज में जिस प्रकार शूद्र हमेशा प्रताड़ित एवं उपेक्षित रहे हैं ठीक उसी प्रकार से किन्नर समुदाय भी उपेक्षित एवं उपहास के पात्र बने हुए हैं। दलित समुदाय को सामाजिक उपेक्षा और तिरस्कार जरूर मिलता है लेकिन कम से कम पारिवारिक प्रेम एवं सौहार्द का संबल उनके जीवन में बना रहता है, किन्तु किन्नर समुदाय का जीवन इन मामलों में दलितों से भी बदतर है। किन्नर समुदाय समाज के परिहास एवं तिरस्कार को तो झेलता ही झेलता है इसके साथ ही साथ व परिवार में भी घृणित एवं तिरस्कृत होता है। उसकी स्थिति एक पेंडुलम की भांति होती है जिसका कहीं ठिकाना नहीं होता। ना समाज में ना घर में। वह अपने द्वारा बनाए हुए समाज के अलावा कहीं सम्मान नहीं पाता। न तो हमारे सभ्य समाज में और ना ही अपने परिवार में।

यह एक विडंबना ही है कि हम जब भी मानवीय मूल्य एवं संवेदना की बात करते हैं तो उसमें जाति एवं धर्म आड़े आते हैं। हम सदैव एक जाति एवं धर्म निरपेक्ष समाज एवं राष्ट्र की आदर्शवादी कल्पना करते हैं। हम देश एवं समाज की बहुत सारी समस्याओं की जड़ में जाति एवं धर्म को ही पाते हैं। किन्नर समुदाय इनसे बिल्कुल मुक्त है। वह एकमात्र ऐसा समुदाय है जिसे धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है जहां पर किसी जाति या धर्म का कोई महत्व नहीं होता। किन्नर समुदाय अथवा बस्ती में किसी भी जाति या धर्म में पैदा हुए किन्नर व्यक्ति आकर रह सकते हैं और अपना जीवन बसर कर सकते हैं। "जिंदगी 50-50" उपन्यास में किन्नर के आदर्श एवं यथार्थ दोनों रूपों का एक साथ चित्रण किया गया है। हर्षा के माध्यम से किन्नर जीवन के यथार्थ एवं सूर्या के माध्यम से किन्नर जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। हर्षा उपन्यास नायक का भाई है। जिसकी भावनाएँ, जरूरतें, महत्त्वाकांक्षाएँ एक स्त्री की है लेकिन शरीर पुरुष का है। किसी भी इंसान के लिए ऐसी परिस्थिति बेहद दर्दनाक होती है। जिसमें जिंदगी जिंदगी नहीं, समझौता बनकर रह जाती है। ऐसा इंसान अपना दुख किससे कहे और कहे भी तो कौन सुनेगा ? ऐसे इंसान और उसके घरवालों को हर मुकाम पर समाज के दुर्व्यवहार, उपहास एवं जिल्लत का सामना करना पड़ता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र अनमोल इस बात को अच्छी तरह समझता है, क्योंकि उसका छोटा भाई हर्षा और उसकी एकमात्र संतान सूर्या दोनों किन्नर हैं। भाई को पल-पल घुटते एवं घर और बाहर से लगातार प्रताड़ित और अपमानित होते हुए देख अनमोल यह निश्चित करता है कि वह अपने बेटे को हर तरह से सक्षम बनाएगा। इसलिए आदर्शपरक रुख अपनाते हुए उसने अपने बेटे सूर्या को जीवन में पूरी तरह छूट दी। उसे एक प्राइवेट डिटेक्टिव बनाकर भरपूर जिंदगी जीने के काबिल बनाया। उसने अपने भाई हर्षा पर हुए अन्याय को छाया कभी सूर्या पर नहीं पड़ने दी।

सचमुच में सामान्य सी लगने वाली बात, जिसकी कभी मैंने नोटिस नहीं ली थी आज वह मेरे अंतर्मन को इतने भीतर तक कुरेद देगी, कभी सोचा ही नहीं था। "थर्ड जेण्डर" जिसको आम चलन भाषा में छक्का, हिजड़ा, नपुंसक, गे आदि नामों से पुकारा जाता है से किसकी मुलाकात नहीं होगी ! लेकिन कभी किसी ने उनके जीवन एवं तकलीफों को जानने की जहमत उठाई हो ? वह हमेशा मनोरंजन और भीखमंगे के तौर पर देखे व समझे जाते हैं। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि हमारी इस बड़ी दुनिया के वह

भी एक हिस्सा हैं। समाज में अपनी सम्मान जनक भागीदारी तो बहुत दूर की बात है यह आज भी संवेदना से ज्यादा तिरस्कार एवं उपहास के पात्र बनते हैं। यह सर्वथा उपेक्षित, तिरस्कृत एवं उपहास के विषय समझे जाते हैं। ऐसे में इनकी पीड़ा कौन समझने वाला है। यह अपना दुःख दर्द कहें तो किससे कहें? जो वाकई इनकी पीड़ा को समझे। सामान्य मनुष्य हमेशा उनसे कतराते रहते हैं। समाज में किन्नर सहज स्वीकार्य नहीं हैं। यह सच्चाई है; इसको झूठलाया नहीं जा सकता कि यह समाज से एक तरह से बहिष्कृत समुदाय है। इनकी अपनी दुनिया है, अपने लोग हैं, अपना समाज हैं। जो इस दिखावटी एवं मतलबी दुनिया से ज्यादा संवेदनशील हैं। वहाँ सचमुच का भाईचारा है। एक दूसरे का ख्याल है। एक-दूसरे के लिए कुर्बान होने का जज्बा है। एक दूसरे के रक्षार्थ उनका पूरा गैंग (संगठन) काम करता है। इस संदर्भ मे हर्षा और कस्तू कस्तूरी के संवाद को देखा जा सकता है- "सुख है। यहाँ हमारा गैंग है, किसी के मजाल नहीं है कौनो कुछ कह जाये।. ..अगर तुम्हें कबहु लागे, वहाँ तुम चैन से नहीं जी पा रहे हो तो हम तुम्हारी बहनें ही हैं। यह घर हमेशा तुम्हारे लिए खुला है। हम तुम्हें वैसे ही रखेंगे जैसे ये सब लोग रहती हैं।"2

संमाज में उनकी सम्मानजनक स्थिति ना होने के कारण ही उन्होंने अपना एक अलग समाज बना लिया है जो इस समाज से कहीं ज्यादा उनको प्रीतकर एवं सुखद लगता है। जहाँ वे खुलकर जीते हैं। यह उनकी जरूरत और विवशता दोनों ही होती है, क्योंकि हमारा तथाकथित सभ्य समाज उन्हें समझने की कभी कोशिश ही नहीं करता उन्हें जिस संवेदना की जरूरत होती है, जिस अपनेपन की जरूरत होती है, उसे समाज कभी नहीं दे पाता। वह हमेशा इस सभ्य समाज में घुटते और पिसते रहते हैं, इसीलिए वह एक दिन इस तथाकथित सभ्य समाज से मुक्त हो जाते हैं और अपनी जिंदगी जीना शुरू कर देते हैं। "जिंदगी 50-50" उपन्यास में भगवंत अनमोल ने उस दर्द को बखूबी चित्रित किया है जो प्रत्येक किन्नर के हृदय में बसा हुआ है। वह यह जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। वह इस जीवन का चुनाव खुशी-खुशी नहीं करता अपितु वह मजबूर है। उसके अंदर समाज छोड़ने की पीड़ा है, दर्द है लेकिन एक खुशी भी है की वह रोज-रोज के तानों उपहासों एवं सामाजिक बहिष्कारों से मुक्त हो जाता है। हर्षा खुशी-खुशी अपने पिता का घर नहीं छोड़ता वह मजबूर हो गया अपने समाज से, अपने परिवार से और उस परिवार में जो उसकी स्थिति है उन सब से। वह मुक्त होना चाहता था और इस मुक्ति का एकमात्र जरिया इस तथाकथित सभ्य समाज को छोड़ने में ही था। वह समझ चुका था कि उसे प्यार करना तो दूर उसे कोई समझने का भी प्रयास नहीं करता है। वह अब यह समझ चुका है कि इस तथाकथित सभ्य समाज को छोड़कर ही वह अपने मन के अनुसार हर्षा से हर्षिता बन सकता है और अपने अनुसार जी सकता है इसीलिए वह इस पुरुषवादी, वर्चस्वशाली समाज को लात मारकर उन्हें मुंह चिढ़ाता हुआ अलग होने का निर्णय ले लेता है। सचमुच में जो समाज हमारी परवाह नहीं करता हम उसकी परवाह कब तक करेंगे ? हर्षा से बनी हर्षिता की पीड़ा को जानकर किसकी संवेदना उससे नहीं जुड़ जाती हैं "इतने वर्षों में मैं यह समझ गई थी कि यह समाज मुझे प्यार तो छोड़ो मुझे समझने की भी कोशिश नहीं कर सकता। आखिर मेरी गलती क्या है ? मेरा एक अंग अविकसित है। बस इतनी सी ! शायद इस तथाकथित समाज में सारा फसाद सिर्फ इसी अंग को लेकर होता है। लड़ाई-झगड़ा, प्रेम, मारपीट सब इसी अंग के कारण तो होती है। मेरे शरीर का हर अंग आहत था चोट थी, मेरा शरीर टूट रहा था, हाथ-पैर से लेकर गुदा तक। मैं बिलख रही थी। मेरे आँखों के सामने अपने भविष्य का अंधकार मंडरा रहा था। मैं ऐसी कठपुतली बन गई थी, स्कूल से लेकर घर, बाहर हर कोई मेरा मजाक उड़ाता। गाहे-बगाहे मुझे हिजड़ा कहने से नहीं चूकता। खेलने-कूदने यहाँ तक कि लिखते-पढ़ते वक्त मुझ जैसों के लिए एक अलग ही कॉलम होता है। पुरुष, महिला या अन्य। हर वक्त मुझे यह एहसास दिलाया जाता है कि मैं हर किसी से अलग हूँ। रही सही कसर अगर बच जाती तो बाबूजी अपनी भड़ास निकाल कर पूरी कर लेते। जब मैं इतनी ही अलग हूँ तो इस सभ्य समाज ने मुझ जैसे अलग व्यक्ति को जन्म क्यों दिया ? आखिर इनकी ही गलती का परिणाम हूँ मैं ! अपनी गलती मुझ पर क्यों थोपते हैं। … अब मुझे समझ आ रहा था की कस्तूरी जैसे लोग समाज से बाहर अपने समुदाय में क्यों रहते हैं। मैंने भी ठान लिया कब तक इस समाज में मर-मर के जीती रहूँगी। भले ही अलग रहूँ लेकिन पल-पल मरते हुए जीना मुझे मंजूर नहीं।"3

सचमुच में कभी भी हमारा ध्यान इस तरफ जाता ही नहीं कि यह लोग रहते कहाँ है ? कहाँ से आते हैं ? और कहाँ चले जाते हैं ? सचमुच में बिना परिवार का जीवन कितना दर्द भरा होता है यह वही व्यक्ति जान सकता है जिसका अपना कोई परिवार ना हो। इससे भी ज्यादा विकट एवं दुखदाई स्थिति वह होती है जब परिवार रहते हुए भी परिवार का प्यार आपको ना मिले। वहां सिर्फ आपको तिरस्कार मिले और हद तो तब है जब आपको परिवार से निष्कासित कर दिया जाए एक तरफ से आपको कुल-खानदान के लिए अशुभ एवं कलंक मानकर निष्कासित कर दिया जाए। किन्नर समुदाय इस दंश को न जाने कितने सदियों से झेल रहा है। समाज तो उन्हें दुत्कारता ही दुत्कारता है उससे पहले उनका अपना परिवार उन्हें दुत्कार चुका होता है। आदमी पूरे समाज से जब लड़ता है तो परिवार उसके साथ रहता है और वह इस उम्मीद से अपने जीवन में हर लोहा लेता है किसका परिवार उसके साथ है परिवार का भरोसा- परिवार का प्यार, परिवार का सहयोग आदमी को हर असंभव कार्य को संभव बनाने के लिए पर्याप्त होता है। इस मामले में भारत देश की जितनी तारीफ की जाए कम है कि यहाँ के समाज में परिवार की अवधारणा बहुत मजबूत है लेकिन यह दुर्भाग्य है कि अब यह परिवार सिर्फ बेटा-बेटी तक है सीमित है। तृतीय लिंग के लिए उसमें कहीं कोई जगह नहीं हैं। शायद यही वजह है कि इनका एक अलग समुदाय है जो सचमुच में हम सबसे अलग, यह उनके प्रतिशोध का प्रतिफल है लेकिन धीरे-धीरे यह स्वरूप समाज में व्याप्त हो गया है। इस संदर्भ में मुझे कुंवर बेचैन साहब की वो पंक्तियाँ याद आ रही है जो हर मनुष्य के लिए एक संबल प्रदान करती हैं कि- "पूरी धरा साथ दे और बात है, तू जरा साथ दे तो और बात है। चलने को तो एक पाव से भी चल लेते हैं लोग, दूसरा साथ दे और बात है।।"

हर्षा उर्फ हर्षिता पूरे समाज से लड़ सकती थी और शायद वह सूर्या की भाँति अपने को स्थापित भी कर सकती थी लेकिन सबसे पहले उसके परिवार ने उसको तिरस्कृत किया, वह सबसे ज्यादा आहत अपने परिवार से हुई। अपने पिता से हुई। समाज में जो भी छेड़छाड़ की घटनाएँ उसके साथ होती थी उसका सारा का सारा दोष हर्षिता पर ही मढ़ दिया जाता था। जबकि वह बेबस और लाचार थी। जहाँ पर परिवार के सहयोग और संवेदना की जरूरत होती है वहां पर उसे उपेक्षित और तिरस्कृत किया गया। उसे दंडित किया गया। ऐसे में उसका जीवन धीरे-धीरे नारकीय होता चला गया। कोई भी परिवार अगर अपने बच्चे को समय नहीं देता, उसको समझने की कोशिश नहीं करता, उसके मनोभावों को समझने की कोशिश नहीं करता तो वह बच्चा धीरे-धीरे चिड़चिड़ा हो जाता है। वह पहले खुद से फिर परिवार से और एक न एक दिन समाज से बगावत कर बैठता है। ठीक यही स्थिति किन्नर समाज की भी है उनको यही लगता है कि यह समाज, यह परिवार उनको नहीं समझता तो इस समाज के तौर-तरीकों से अलग अपने तौर-तरीकों का इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं। कभी-कभी तो आपको उनका व्यवहार जातीय एवं अति लगेगा लेकिन यह जातीयता एवं अति भी उनका एक प्रतिशोध है। वह आपसे पहले खुशी-खुशी पैसे माँगते हैं और जब आप नहीं देते हैं तो आप से वह जातीयता भी करते हैं लेकिन इसका एक मुकम्मल कारण है वह भी हमारी तरह जीना चाहते हैं, वह भी हमारी तरह रहना चाहते हैं, लेकिन हम उन्हें अपने जैसा मानते ही नहीं इसीलिए वह हमसे भी सौतेला व्यवहार करते हैं वह अपने जीवन के लिए हमें ही दोषी मानते हैं और जिसको हम दोषी मानते हैं उसके साथ हम कैसा व्यवहार करते हैं यह सर्वविदित है। उस तुलना में वह हमसे ज्यादा सहिष्णु एवं संवेदनशील हैं। हर्षा उर्फ हर्षिता जब लोगों से पैसे माँगती है तो उसे इस बात की पीड़ा हमेशा रहती है कि उसकी जो यह दुर्दशा है इस सभ्य समाज के चलते ही है। उसकी बातों से इस बात की पीड़ा एवं पश्चाताप महसूस होता है "कोई कहता है हम बहुत गलत करते हैं आखिर तुमने अपने समाज से हमें निकाला है तो खाने का इंतजाम तुम ही करोगे ना। इसमें बताइए हम क्या गलत करते हैं? अच्छा खासा पढ़ रही थी। पढ़-लिखकर नौकरी करती। अब निकाल दिया अपने समाज से तो हमें खाने के लिए तो देना पड़ेगा ना। हम मुफ्त में थोड़ी ना कुछ लेते हैं आपको दुआएँ भी देते हैं।"

सचमुच में "जिंदगी फिफ्टी फिफ्टी" को पढ़ते हुए वह बहुत सारे दृश्य सामने प्रकट हो गए जब लोगों को मैंने बहाने बनाते हुए, उनसे मुंह छुपाते हुए, उनसे बचते हुए प्रत्यक्ष देखा है कि वह लोगों से पैसे ना मांग ले। सचमुच में जो समाज उन्हें पढ़ने एवं आजीविका के

लिए काम करने की आजादी ना देता हो तो ऐसे में यह समुदाय करें भी तो क्या करें ? सभ्य समाज की आड़ में छिपे हुए दरिंदे उन्हें रौदने के लिए हमेशा आतुर रहते हैं। उन पर अपनी वासना भरी निगाहें गड़ाए रहते हैं। हर्षा उर्फ हर्षिता इसकी शिकार बचपन में ही हो जाती है, लेकिन वह अपने पिता की इज्जत बचाने के लिए इस दंश को झेलती है। किन्तु क्रूर पिता अपनी संतान की उस पीड़ा को न समझ कर अपनी इज्जत पर बट्टा लगा समझ कर उल्टे उसकी निर्ममतापूर्वक पिटाई करना शुरू कर देता है। हर्षिता को जहाँ संवेदना मिलनी चाहिए वहां तिरस्कार मिलती है, मार पड़ती है। ऐसे में घर-परिवार और समाज को न छोड़े तो क्या करें? बहुत पहले मैंने एक पाकिस्तानी फिल्म बोल देखी थी। जिसमें तीन बहनों के बीच में एक किन्नर बच्चा पैदा होता है। बहने बहुत लाड-प्यार के साथ उसकी परवरिश करती हैं लेकिन उसकी भी दुर्दशा हर्षा जैसी ही होती है। वह भी पिता द्वारा लगातार प्रताड़ित होता रहता है। पीटता रहता है, लेकिन बहनों के प्यार से वह लगातार ऊर्जा प्राप्त करता रहता है। धीरे-धीरे वह समाज के सामान्य लोगों की तरह घर से बाहर निकलता है और कुछ काम सीखना शुरू करता है, लेकिन समाज में बैठे भेड़िए अपनी वासना की भूख उस बच्चे से मिटाते में नहीं चूकते हैं। अंततः वह बच्चा जीवन संग्राम में हार जाता है। क्या 21वीं सदी में भी हम इतने सभ्य नहीं हो पाए की अपने से भिन्न लोगों को अपने साथ रखकर अपने जैसा व्यवहार कर पाए। पशुओं का अपना एक खास समुदाय होता है। एक झुण्ड होता है। उनकी एक खास जाति होती है और वह अपने समुदाय और जाति से अलग नहीं रह सकते। वह जैसे ही दूसरे समुदाय और जाति को देखते हैं तो गुर्राने लगते हैं। मनुष्य तो पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है फिर ऐसा क्यों करता है ? किन्नर भी तो मनुष्य जाति का ही एक हिस्सा है। यह अपने को तथाकथित सभ्य समाज मानने वाले लोगों ने एक तरफ दिखावे के लिए बड़ी बड़ी बातें, बहुत सारे आदर्श, बहुत सारे नियम, बहुत सारे कायदे-कानून, धर्म, प्रवचन इत्यादि का जखीरा खड़ा कर दिए हैं वहीं दूसरी तरफ इतने घृणित कर्म करता है कि दूसरे को सुनकर ही शर्म आ जाए। बड़े-बड़े बंगलों एवं महँगी- महँगी गाड़ियों में चलने वालों की सच्चाई हर्षिता अपने डायरी के माध्यम से हम सबके सामने प्रस्तुत करती है। आर्थिक रूप से जो जितना सम्पन्न होता है वह नैतिक और चारित्रिक रूप से उतना ही दरिद्र हुआ करता है। सेक्स वर्कर बनना या धंधा करना किसी को अच्छा नहीं लगता। कोई इसे शौकिया नहीं करता। चाहे वह स्त्री हो या किन्नर।

किन्नरों के शारीरिक एवं मानसिक स्थिति विरोधी होते हैं। पुरुष शरीर में स्त्री मन होता हैं। उनकी चाल एवं बोली भाषा के पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण होता है। स्त्री मन के चलते ही उन्हें सजना-संवरना एवं स्त्री परिधान पहनना अच्छा लगता है। जिसको हम जाने बिना ही उन पर हँसते रहते हैं। दरअसल सच में हम अपनी अज्ञानता पर हँसते हैं। वह इसी को हमारे समक्ष मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह उनकी एक कला है। जिसके सहारे वह अपना जीवन यापन चलाया करते हैं। सचमुच में इनके साथ सदियों से कितना अन्याय हुआ है। यह उस जुर्म की सजा भुगत रहे हैं जो इन्होंने किया ही नहीं। हाशिए के समाज के लोगो की जब भी चर्चा परिचर्चा होती है उसमें दलित, स्त्री, आदिवासी एवं अल्पसंख्यक की तो खूब बात होती है लेकिन थर्ड जेण्डर की कोई सुध तक नहीं लेता। सचमुच में अगर कोई असल हाशिए पर है तो यह किन्नर समुदाय ही है। दलित, स्त्री, आदिवासी आदि की समस्याएँ कुछ अलग तरह की हैं। इनकी समस्या कुछ अलग तरह की है। वह समाज के हिस्से रहे हैं सिर्फ उन्हें वह अधिकार नहीं मिला था जिसके वह हकदार हैं किन्तु किन्नरों को तो अभी समाज के साथ रहने के लिए संघर्ष करना है। बराबरी, अधिकार एवं हिस्सेदारी तो बहुत दूर की चीज है। लोग इनसे दिन के उजाले में बात करने में अपनी इज्ज़त या तौहीनी समझते है लेकिन रात के अँधेरे में अपनी शान समझते हैं। ऐसा सौतेला व्यवहार सहकर भी यह घूम-घूम कर लोगों को दुआएँ देते रहते हैं। किन्नर विमर्श को साहित्य के केन्द्र में लाने के लिए कुछ कथाकारों ने पहल किया है। कुछ पत्रिकाओं ने विशेषांक भी निकाला पर अभी वह धार नहीं बन पायी है जो दलित और स्त्री विमर्श की बन गई है। यह मामला रुचि का भी है। इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि अभी भी हमारा मन सहज रूप से इन्हें स्वीकार्य नहीं कर पाता है।

"ज़िन्दगी 50-50" उपन्यास ने एक नई उम्मीद जगाया है। जो किन्नर समुदाय को समझने में काफी मदद करता है। हमें उनके प्रति संवेदनशील बनने की अपील करता हैं। उनकी भावनाएँ, उनकी जरूरत, पारिवारिक स्थिति, समाज का प्रभाव, संघर्ष और संभावनाएँ सब एक साथ इस उपन्यास में कड़ी-दर-कड़ी जुड़ते गए हैं। सचमुच में कितना कठिन है भावनाएँ, जरूरतें, महत्वाकांक्षाएं ये सब एक स्त्री की लेकिन शरीर पुरुष का। एक बेहद दर्दनाक परिस्थिति जिसमें जिंदगी, जिंदगी नहीं समझौता बनकर रह जाती है। वह अपना दर्द किससे कहें और उनके दर्द को सच में सुनेगा कौन? ऐसे इंसान और उसके घरवाले को हर मकाम पर समाज के दुर्व्यवहार और जिल्लत का सामना करना पड़ता है। कथा नायक अनमोल इस बात को समझता है। इस बात को पूरे समाज को समझने की जरूरत है। अनमोल की एक मात्र संतान सूर्या एवं छोटा भाई हर्षा दोनों किन्नर हैं। अपने छोटे भाई हर्षा को पल-पल पिसते, घर और बाहर प्रताड़ित और अपमानित होते हुए देख अनमोल यह दृढ़ निश्चय करता है कि वह अपने बेटे को अधूरी नहीं बल्कि पूरी जिंदगी जीने के लिए हर तरह से सक्षम बनायेगा और अंततः वह ऐसा कर दिखाता है। किसी भी समाज में परिवर्तन की शुरुआत एक व्यक्ति से एक परिवार से होती है। किन्नर समुदाय के जीवन एवं स्थिति में बदलाव लाया जा सकता है। यह बदलाव भगवंत अनमोल द्वारा अपने उपन्यास "जिंदगी 50-50" में बताए गए रास्ते से ही बेहतर हो सकता है।

संदर्भ :-

1.रामचंद्र शुक्ल, हिंन्दी साहित्य का इतिहास, (2009), प्रकाशन संस्थान, नईदिल्ली,पृष्ठ-05 ।
2. भगवंत अनमोल, "जिंदगी 50-50", (2008), राजपाल एण्ड संस प्रकाशन,नईदिल्ली,पृष्ठ-139।
3.वही,पृष्ठ-162।
4. वही, पृष्ठ-164।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

चिंतन के परिप्रेक्ष्य में अस्मितामूलक हिंदी साहित्य

डॉ.जयश्री गावित

नवापूर

वर्तमान संदर्भ में हम देखते है कि, विश्वपटल पर, सभा-संगोष्ठियों में हिंदी साहित्य के अस्मितामूलक साहित्य पर काफी गहराई से विचार-विमर्श जोर पकड रहा है!

हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर सौदर्य, शृंगार, भक्ति, श्रध्दा आदि जैसे विषयों पर कर्म महाकाव्य खण्डकाव्य लिखें गए है, उसी तूलना में आए दिन अस्मितामूलक साहित्य भी उभरकर मुख्यधारा में सक्रिय होने लगा है !

पहले साहित्य में, कथा-कहानियों के प्रमुख पात्र या नायक-नायिका राजा, रानी, राजपुत्र, जलपरी, मत्सपरी यहाँ तक की राक्षस- दानव हुआ करते थे जिन्को न पाठक ने कभी देखा- सूना होता था ! वास्तविक जगत से कोसों-दूर हुआ करते थे !

जीवन-जीने के संदर्भ बदले, देशकाल एवं वातावरण बदलता गया, समाज में परिवर्तन की लहरे बहने लगी तो जाहिर है साहित्य का रुख भी बदलने लगा, अब हमें कथा-कहानियों में घुटभर पानी के लिए तरसती गंगी देखने मिली, एक गरीब मजदूरन बुधिया की संर्घषगाथा कहानी के माध्यम से हमने समझ ली तो कही शहरी पत्थर तोडती मेहनकश महिला के बहते पसीने ने हमें अंदर तक भिगोया अर्थात अब साहित्य के नायक-नायिका वे बने- जो आजतक हाशिए पर थे, उपेक्षित थे ! उन सबकी संर्घषगाथा इस अस्मितामूलक साहित्य का मुख्य अंश बना, केंद्र बिंदू बना-और आदर्शवादी हिंदी साहित्य में 20 वी सदी के उत्तरार्ध में साहित्यजगत मे अस्मितामूलक साहित्य की सशक्त धारा में अपनी बुनियाद रखी.

आज हम देखते है की, अस्तितामूलक विमर्श मे ना कि केवल स्त्री, दलित या आदिवासी जनजातियों की स्वर को हि वाणि दी जाती बल्कि इनके साथ-साथ वृध्द, किन्नर यहा तक की पर्यावरण एवं वह समस्त उपेक्षित, वंचित, पीडीत पिछडा वर्ग जो आजतक हाशिए पर था ! जिसे मनुष्य होने की हक-से, अधिकार से वंचित रख्खा गया था !

अर्थात हिंदी साहित्य में अस्मितामुलक विमर्श हमें आयामो मै फलता-फुलता दिखाई देता है ! यहाँ एक मानवीय विमर्श तथा दूसरा मानवेतर विमर्श मानवीय स्वरुप में स्त्री विमशे, आदिवासी एवं दलित विमर्श वृध्द विमर्श, किन्नर विमर्श तथा किसान मजदूर विमर्श आदि जैसे विमर्श और मानवेतर विमर्श में पर्यावरण पुश-पक्षी, सांस्कृतिक एवं भाषाई विमर्श पर प्रकाश डाला जा सकता है !

अस्मिता का तात्पर्य केवळ पहचान से नहीं बल्कि स्वाभिमान, आत्मचेतना एवं अधिकार बोध से है ! जब कोई व्यक्ति या समूदाय अपनी उपेक्षा शोषण या पीडा को समझकर उसके विरोध में विद्रोह करता है, तब अस्मितामूलक चेतना जन्म लेती है ! और यह चेतना जब साहित्य मे माध्यम से उभरती है, वह सबसे सशक्त

माध्यम बनता है, क्यो कि तब उपभोक्त, पीडित व्यक्ति अपने विद्रोह को, अपने अनुभव को तीखे प्रखर शब्दो में अभिव्यक्ति प्रदान करता है !

विद्रोह की यह अभिव्यक्ति दो दृष्टिकोणों से होती हुई दिखाई देती है- जिसमे प्रमुख है स्वानुभूति परक लेखन एवं दुसरा दृष्टिकोण है- सहानुभूती परक लेखन स्वानुभूति परक लेखन में लेखक स्वयं अपेक्षित, वंचित वर्ग से संबंधित होता है ! उनके स्वंय अन्याय, अत्याचार एवं शोषण की पीडा का शिकार होता है- अपनी व्यथा, वेदना व पीडा को वह जब अपने शब्दों मे अभिव्यक्त करता है तब उसका लेखन स्वानुभूति परक लेखन बन जाता है !

दूसरा लेखन सहानुभूति परक लेखन का माना जाता है, जिसमे संवेदनशील लेखक मानो परकाया प्रदेश करते हुए उपेक्षित, वंचित पीडित जगत के अंर्तमन में प्रवेश करते हुए उनके जीवन संघर्षो को पीडा को, व्यथा को अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है !

अर्थात अस्मितामूलक हिंदी साहित्य केवल् अनुभूति का साहित्य नही बल्कि चिंतन एवं वैचारिक प्रतिरोध का साहित्य है, विद्रोह के ! साहित्य है- जिसमे उपेक्षित वर्ग अपने अस्तित्व , अपना सन्मान , अपना स्वाभिमान और अपने अधिकारो की लढाई लढता है- ऍसी लढाई जिसमे हार या जीत का कोई सवाल ही उठता है ! उपर्युक्त तमाम अस्मितामुलक हिंदी साहिंत्य मुख्यत: स्वतंत्रता के पश्यात आकार लेता हुआ दिखाई देता है !

इन सभी विर्मशमूलक साहित्य की सबसे शशक्त धारा के रुप में दलित विमर्श का जिक्र किया जाता है- डॉ.बाबासाहेब अंबेडकर जी का चिंतन इस साहित्य की वैचारिक रीढ है इस दलित विमर्श में कई विद्रोही लेखकोंने उन्हे स्वंय जीवन जीने समय आनेवाले कई अपमान, अवमान, अन्याय, अत्याचारो का साहित्य के माध्यम से प्रखर वाणी दी है, और इस साहित्य लेखन के माध्यम से लेखक अपने प्रति पाठक के मन में करुणा निर्माण हो इस बात की इच्छा तो कतई नही रखता अपितु साहित्य लेखन के माध्यम से वह अपने आत्मगौरव, सन्मान, मनुष्य होने का बराबरी के हक की मांग करता है !

जितनी सुर्खियाँ दलित विमर्श ने बटोरी हैं, उतना ही सुर्खियों में हमेशा चर्चा में रहा है - 'स्त्री-विमर्श'। परंपरा में स्त्रियाँ मौन थीं, वह अपनी अस्मिता के प्रति विशेष आग्रही भी नहीं थीं। कहीं पर भी उसमें 'देह' से आगे बढ़कर 'मानव' बनने की ललक प्रखर नहीं दिखाई देती। निश्चित ही कुछ अपवाद हो सकते हैं, लेकिन अधिक संख्या में 'गोदान' की प्रमुख पात्र सिलिया जैसे ही थी।

देशकाल एवं वातावरण बदलता गया, कई संदर्भ बदले, कई घटनाएँ घटित हुई लेकिन मुख्यतः स्त्री आंदोलनों ने समस्त स्त्री जगत को खंगालकर रख दिया, नारियों के सुप्त मन में अस्मिता का अलख जगाया।

इस नवजागरण काल की स्त्रियों के आँचल में दूध तो था लेकिन आँखों में पानी नहीं दहकते अंगारे थे। अब वे न देवी, न दासी, न वस्तु बनकर जीना चाहती थी बल्कि एक मानव बनकर जीना चाहती हैं। अर्थात वह दकियानूसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देते हुए, ऐसी मानवीय व्यवस्था की पुनः स्थापना चाहती है, जिसमें स्त्री को मानवीय गरिमा प्रदान करते हुए उसे बराबरी का स्थान प्राप्त हो।

आज तक की पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने हर संभव कोशिश की थी कि स्त्री किस प्रकार शक्तिहीन और भीतर से रिक्त रहे, उम्र के हर पड़ाव पर किस प्रकार वह पुरुषों पर आश्रित रहे - स्त्री विमर्श के इसी मंच से स्त्रियों की ललकार इसी विरोध से सक्रिय हो उठी।

स्त्रीवादी वैचारिक आंदोलनों ने हजारों वर्ष पुरानी स्त्रियों की मानसिकता में मंथर गति से क्यों न हो, बदलाव आने लगा। शिक्षा-दीक्षा ने स्त्रियों के विचारों में, आचारों में, कुल मिलाकर सार्वजनिक जनजीवन में आमूलग्र बदलाव परिलक्षित होना दिखाई देने लगा। शिक्षा के कारण स्त्रियों का आत्मविश्वास बढ़ने लगा, इच्छाशक्ति प्रबल होती गई और बढ़ते आत्मबल के कारण वह अंदर-बाहर से सशक्त, सक्षम बनती गई।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'चीफ की दावत' कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श

प्रा.डॉ.भारती मधुकर पाटील
एस.पी.डी.एम महाविद्यालय,शिरपूर
सहाय्यक प्राध्यापक

सारांश-

वृद्ध व्यक्ति ज्ञान का भंडार होता है। अपने ज्ञान से वह हमें सभ्यता,संस्कृति,आचरण आदि का ज्ञान देता है। वृद्धों को केवल भोजन की आवश्यकता नहीं होती,उन्हें उचित सम्मान की आवश्यकता होती है, परंतु समाज उन्हें अनावश्यक वस्तू समझने लगा है। भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'चीफ की दावत' कहानी मध्यमवर्गीय समाज के दिखावे,स्वार्थ और ढोंग को उजागर करती है। जहा दिखावा और तरक्की के लिए अपनों को ही बोझ समझ लिया जाता है। 'चीफ की दावत' कहानी यह संदेश देती है कि, जिस मां ने संघर्ष कर अपने बेटे का भविष्य उजागर किया वही बेटा सफल होने पर बुढी मां की उपेक्षा करने लगता है। ऐसा बेटा जो अपने पदोन्नति के लिये अपनी मां का उपयोग करने से जरा भी नही हिचकिचाता है, लेकिन वह मां एक ऐसी गरीब और अनपढ वृद्धा है जो अपने बेटे के लिए सब कुछ करने को तैयार है। यह कहानी केवल शामनाथ की नहीं बल्कि समाज के उस स्वर्ग की है जो वृद्धों को अपनी उन्नति में बाधा मानते है। इस कहानी में वृद्ध विमर्श केंद्रीय विषय है, जो आधुनिक समाज में बुजुर्गों की स्थिति पर कडा प्रहार करता है। आधुनिक पिढी द्वारा पुरानी पिढी का अनादर कहानी में दिखाया गया है। इससे यह सार निकलता है की युवा पिढी के अंदर माता-पिता के प्रति कोई भावना,आदर, सम्मान दिखाई नहीं देता। मानवीय संवेदनाए लगभग समाप्त हो गई है।

प्रस्तावना-

वृद्ध वर्ग की समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वृद्धावस्था में वृद्धों को अकेलापन,बीमारी,आर्थिक अस्थिरता,सामाजिक उपेक्षा, आदि अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। मनुष्य जीवन की पांच अवस्था होती है शैशवावस्था, बाल्यावस्था,किशोरावस्था,प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। वृद्धावस्था तक पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति का शरीर थक जाता है। व्यक्ति इस स्थिति में दूसरे पर निर्भर हो जाता है। इसी कारण वह अपने आप को कमजोर महसूस करता है। वृद्धावस्था में वृद्धों की जरूरत खत्म होने के कारण वृद्धों को समाज भी उपेक्षित दृष्टि से देखता है, जिस कारण वृद्धों की स्थिती दयनीय हो रही है। परंतु वृद्ध व्यक्ति के पास अनुभव का ज्ञान होता है। इस ज्ञान के जरिए वह जीवन का योग्य पाठ युवा पीढ़ी को पढ़ा सकता है। यदि वृद्ध व्यक्ति को उचित सम्मान मिले तो वह समाज को एक नई दिशा दे सकता है और समाज के लिए एक मौल्यवान संसाधन बन सकता है। आज हमें वृद्धावस्था पर चिंतन करने की आवश्यकता है,क्योंकि इसके बिना उनकी दशा में सुधार नहीं हो सकेगा।

उद्देश्य -

1)वृद्धों की समस्याओं को समझना।

2)वृद्धों को सुविधाए प्रदान करना।

3)वृद्धों के अधिकारों की रक्षा करना।

4)वृद्धों के प्रति समाज की दृष्टि को बदलना।

परिकल्पना-

1)वृद्ध अपने परिवार और समाज के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दिखाई देते है।

2)वृद्ध अपने जीवन के अनुभव और ज्ञान समाज को देते है।

3)वृद्ध युवा पिढी को मार्गदर्शन और सलाह देते हुए दिखाई देते है।

4)वृद्ध सामाजिक कार्य में सहभाग लेते हुए नजर आते है।

अनुसंधान पद्धति-

प्रस्तुत लेख लिखने के लिए विविध संदर्भ पुस्तके और इंटरनेट का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण-

वृद्धावस्था का अर्थ -"वृद्धावस्था एक धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है, जो कि स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ हे-पका हुआ, परिपक्व होता है।" (1)

'चीफ की दावत' कहानी भीष्म साहनी द्वारा लिखित है। इसमें मध्यम वर्गीय समाज में वृद्धो की स्थिति का दयनीय चित्रण किया गया है। कहानी की कथावस्तु वृध्द विमर्श पर केंद्रित है। हमारी भारतीय संस्कृति में माता-पिता का सम्मान किया जाता है, परंतु आज की युवा पीढ़ी अपने इस कर्तव्य से दूर होती दिखाई दे रही है। कहानी का पात्र शामनाथ अपने निजी स्वार्थ के लिए प्रथम तो अपनी मां की उपेक्षा करता है और बाद में उसी मां का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करता है। शामनाथ के घर चीफ की दावत है उसी तैयारी में दोनों पति-पत्नी लगे हुए हैं। घर की सभी फालतू चीजे अलमारी और पलंग के नीचे छुपाते हैं। तभी शामनाथ के सामने एक समस्या खड़ी होती है और वह कहता है "मां का क्या होगा?" (2)

शामनाथ पत्नी से कहता है कि, मां जल्दी से खाना खाकर अपनी कोठरी में चली जाए परंतु श्रीमती को चिंता है कि, मां सो गई तो खर्राटे लेने लगेगी। फिर दोनों निर्णय लेते हैं की मां खाना खाकर सोए नहीं,बल्कि कुर्सी पर बैठी रहे।फिर उन्हें लगता है मां सो गई तो ? शामनाथ खीझकर बोलते हैं ," अच्छी भली वह भाई के पास जा रही थी, तुमने यूं ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टांग अड़ा दी।" (3)

मतलब मां के प्रति बेटे की ममता,प्रेम का विघटन होता दिखाई देता है। शामनाथ को लगता है की मां उसकी तरक्की में आडे ना आए, इसलिए वह कुर्सी पर कैसे बैठे, पैर नीचे ही रखें, नंगे पांव नहीं घूमे, खड़ाऊ न पहने,आदि हिदायतें मां को देता है जो बेचारी मां को रास नहीं आते। "नयी पीढ़ी पुराने परंपरागत मूल्यों का समर्थन नहीं करती और पुरानी पीढ़ी नये मूल्यों को अपनाना नहीं चाहती यही से मूल्य संघर्ष शुरू होता है।" (4)

शामनाथ को चिंता थी कि, अगर चीफ सामने आ जाए तो कहीं लज्जित ना होना पड़े, इसलिए वह मां को सफेद कमीज पहन कर दिखाने को कहता है। साथ ही चूड़ियां पहनने को कहता है। मां कहती है,"चूड़ियां कहां से लाऊं बेटा?तुम तो जानते हो सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए"। (5) इस बात पर शामनाथ क्रोधित हो जाते हैं।

शामनाथ के चीफ दावत पर आते हैं। चीफ बरामदे में जाते हैं, तो मां उन्हें खर्राटे लेती दिखाई देती है। उसके दोनों पाव कुर्सी की सीट पर और सिर इधर-उधर झूल रहा था। शामनाथ को बहुत ही क्रोध आता है। लगता है, "मां को धक्का देकर उठा दे और उन्हें कोठरी में धकेल दे मगर ऐसा करना संभव न था, चीफ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।" (6)

चीफ मां से हाथ मिलाते है। मां इसके बारे में अनजान थी,इस कारण वह बाया हाथ आगे कर देती है। इस पर भी शामनाथ क्रोधित हो जाता है। चीफ मां को गीत गाने को कहता है। गीत सुनकर चीफ खुश हो जाता है। मां के हाथों से बनी हुई फुलकारी भी देखते है और ऐसी ही फुलकारी अपने लिए बनाने को कहते है। शामनाथ की मां बुढी है उन्हें ठिक से दिखाई नही देता, परंतु फिर भी शामनाथ मां को फुलकारी बनाने के लिए आग्रह करते है, क्योंकि फुलकारी न बने तो कहीं उनकी पदोन्नती न रुक जाये। मां शामनाथ से कहती है कि उसे हरिद्वार भेज दे, परंतु बेटा मां से कहता है," तुम चली जाओगी तो फुलकारी कौन बनायेगा?" (7)

शामनाथ साहब को फुलकारी देने का वादा कर चुका था।

'चीफ की दावत' कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श के बिंदु -

1) आधुनिकीकरण -

शामनाथ जैसा मध्यम वर्गीय व्यक्ति अपनी तरक्की के लिए आधुनिकीकरण की आड़ में अपनी मां के प्रति संवेदनहीन हो जाता है। पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण में लोग अपने संस्कार और रिश्तो नातों को भूल रहे हैं। चीफ को खुश करने के लिए घर और खुद को सजाते हैं और जन्म देने वाली मां को छुपाते हैं। कहानी में खुद को आधुनिक दिखाने की अत्यधिक लालसा दिखाई देती है।

2) मां की अपेक्षा -

शामनाथ चीफ के लिए दावत रखता है, तब मेहमानों के सामने अपनी मां को लाने से शर्मिंदगी महसूस करता है। मां को फालतू सामान समझ कर मेहमानों से दूर रखना चाहता है, कि कहीं उसकी छवि खराब ना हो

जाए। यह स्थिति युवा पीढ़ी द्वारा बुजुर्गों की उपेक्षा को दर्शाता है। कहानी में दिखाई देता है कि, कैसे युवा पीढ़ी अपने माता-पिता को बोझ और समस्या समझने लगते हैं और उनके प्रति संवेदनहिन हो जाते हैं। इस कारण वृद्ध अकेलेपन और मानसिक पीड़ा को सहते रहते हैं।

3) बेटे का कठोर व्यवहार -

शामनाथ मां को गहने पहनने के लिए कहता है, तो मां कहती है बेटा,जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बेच दिए। शामनाथ इस पर क्रोधित होकर कहता है, मां सीधा कह दो नहीं है जेवर। इससे पढ़ाई-वढाई का क्या ताल्लुक है? बेटे की लापरवाही दिखाई देती है। मां ने ममता, स्नेह से पाला,बेटे की शिक्षा के लिए निरंतर प्रयत्न किए और अपना तन, मन, धन सब अर्पन कर दिया। गहने तक बेच डाले ताकि शामनाथ का सामाजिक,आर्थिक स्तर बढ़ा सके, लेकिन उसे सब उपकारों के विपरीत बेटे का कठोर व्यवहार ही मिलता है।

4) मां का बेटे के प्रति त्याग -

मां अपने बेटे के भविष्य के लिए अपनी इच्छा का त्याग करती है। हरिद्वार जाना चाहती है, पर फुलकारी बनाकर बेटे को खुश करने की चाह वह रखती है। बेटे के रूखे, अमानवीय व्यवहार से निरंतर दुखी रहने वाली मां अपने पुत्र को चिरायु होने और तरक्की पाने की कामना करती है यह एक मां का त्याग ही है।

5) मानवीय मूल्यों का घटना -

कहानी में परिवार,रिश्तो में मानवीय मूल्यों का विघटन होता दिखाई देता है। पारिवारिक रिश्ते-नाते खोखले हो गए हैं।

ममता,स्नेह,प्रेम,आत्मीयता,वात्सल्य यह मानवीय मूल्य कम होते दिखायी दे रहे हैं। डॉ. मेहर दत्ता कहती है कि "पुराने मूल्य विघटीत होकर नये मूल्य का निर्माण करते है किंतू पुराने मूल्यों की आत्मा नये मूल्यों में कुछ न कुछ अंश तक समायी अवश्य रहती है।" (8)

6) वृद्धों की दयनीय स्थिति-

कहानी में बुढी मां की झुरियों भरी कमजोर आंखे और फुलकारी बनाने में असमर्थता के बावजूद बेटे की इच्छा पूर्ण करने के लिए मां तयार है। यह मां की शारीरिक और मानसिक कठिनाइयों और दयनीय स्थिति को दर्शाता है।

7) बेटे के आदेश का पालन -

कहानी मे शामनाथ का हर उचित-अनुचित आदेश का पालन मां करती है। चाहे जल्दी न सोने का हो,कुर्सी पर बैठने का तरीका हो, कपडे पहने का हो,चीफ के अभिवादन का हो, या गीत गाने का हो इसके साथ ही क्षीण ऑखों ,कापते हाथों से बेटे की तरक्की के लिए फुलकारी बनाना हो यह सब मान लेती है। मां को आदर

सन्मान की अपेक्षा शामनाथ से सिर्फ आदेश ही मिलते है। इससे पता चलता है कि, उसमें मानवीय संस्कार और भावनाएं लुप्त हो गई है।

निष्कर्ष -

'चीफ की दावत' कहानी में मध्यमवर्गीय समाज के दिखावटीपन को दर्शाया गया है। कहानी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उस समय थी, क्योंकि वृद्धों को जो आदर मिलना चाहिए वह आज भी नहीं दिखाई देता है यह खेद की बात है। समाज में वृद्धों के प्रति सम्मान केवल उनकी उपयोगिता पर आधारित रह गया है, इसलिये बुजुर्गों की दुरावस्था का चित्र देखने को मिलता है। भौतिकवादी युग में मानवीय रिश्तों की महत्ता कम हो रही है। वृद्धों के प्रति खोया हुआ आदर,प्रेम फिर से लाने के लिए वृद्ध विमर्श की आवश्यकता है। इससे मानवीय मूल्य समाज में वापिस लौट सकते है। हमे वृद्ध लोगों के प्रति हमारे दृष्टिकोन में बदलाव लाना बहुत जरुरी है।

संदर्भ -

1) लोकभारती राजभाषा शब्दकोश (हिंदी-अंग्रेजी)- डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.466 लोकभारती प्रकाशन
2) हिंदी की कालजयी कहानिया- संपा.सुनील कुलकर्णी,मनीषा महाजन, पृ.155, राजकमल प्रकाशन,पहला संस्करण 2022
3) वही, पृ.156
4) प्रतिनिधी कहानिया- हिंदी विभाग, एस.एन.डी.टी वुमन्स युनिव्हर्सिटी, मुंबई, पृ. 13 ,जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2009
5) हिंदी की कालजयी कहानिया- संपा.सुनील कुलकर्णी,मनीषा महाजन, पृ.157, राजकमल प्रकाशन,पहला संस्करण 2022
6) वही, पृ.158
7) वही, पृ.162
8) साठोत्तरी हिंदी महिला कथा लेखन में आधुनिकता बोध-डॉ. सौ. मेहर दत्ता पाथरीकर, पृ.43, शैलजा प्रकाशन, कानपूर, पहला संस्करण 2007

"Affiliated to K.B.C. North Maharashtra University, Jalgaon"
"NAAC Reaccredited A+ Grade with (CFPA 3.52) (Cycle IIIrd),
UGC Honored College with Potential For excellence (CPE)"

IJMRT

TARAN PUBLICATION

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359
Peer Reviewed Journal
Impact Factor 6.325

www.ijmrtjournal.com